ओ३म्

सामवेद प्रकाश

मेला राम वेदी
बी० ए०
प्रधान आर्य समाज
देवनगर, नई दिल्ली-५

प्रकाशक :
वेदी प्रकाशन ट्रस्ट
१७ बी/२४ देव नगर,
नई दिल्ली ५

प्रथम संस्करण
विक्रमी संवत २०२३
सन् १९६६

मूल्य दो रुपये

मुद्रक :
रसिक प्रिंटर्स
करौल बाग,
नई दिल्ली-५

ओ३म्

सूची पत्र

ओ३म्

भूमिका

जगत् प्रसिद्ध चारों वेदों में तीसरा वेद सामवेद है। साम का अर्थ है गीति या गायन प्रकार। साम का ज्ञाता उद्गाता है। सामवेद में ऋचाओं में आश्रय पाये हुए साम का ही गान किया जाता है। इसलिये गायन विद्या के मर्म के आश्रय भूत मन्त्रों की संहिता सामसंहिता है।

सामवेद के तीन भाग है:—

(१) पूर्वार्चिक (२) उत्तरार्चिक (३) महानाम्नी आर्चिक

पूर्वार्चिक के चार भाग है:—आग्नेय काण्ड, ऐन्द्र काण्ड, पावमान काण्ड, आरण्यक काण्ड। यह चारों काण्ड छः प्रपाठक में बंटे हुए हैं। प्रपाठकों में अर्द्ध प्रपाठक और दशतियां हैं।

इसी प्रकार उत्तरार्चिक में प्रपाठक है। इन प्रपाठकों के भी अर्द्ध प्रपाठक है, पर इन में दशतियों का विभाग नही है, सूक्तों का विभाग है।

पूर्वार्चिक मे ६ प्रपाठक, ११ अर्द्ध प्रपाठक और ६४ दशतियां है और मन्त्रों की संख्या ६४० है। उत्तरार्चिक में ९ प्रपाठक २२ अर्द्ध प्रपाठक और ४०२ सूक्तियां है और मन्त्रों की संख्या १२२५ है। महानाम्नी आर्चिक में केवल १० मन्त्र हैं। इस प्रकार सामवेद के मन्त्रों का योग १८७५ है। इन मन्त्रों में से केवल सामवेद के ७५ मन्त्र है और शेष समस्त मन्त्र ऋग्वेद से ही संगृहीत हैं, अतः इनका ग्रहण ऋग्वेद से ही हो जाता है।

उत्तरार्चिक में बहुत सी पूर्वार्चिक की ऋचायें पुनर्वार आई हुई हैं। इसका कारण यह है कि पूर्वार्चिक में गायनग्रन्थ के साम सिद्ध होने के लिये एक २ ऋचा आई थी, परन्तु उत्तरार्चिक मे स्तोमों की सिद्धि के लिये दो ऋचाओं के द्विऋच और तीन ऋचाओं के तृच आदि सूक्तों के प्रकार से कहने की आवश्यकता थी। दूसरा कारण यह भी है कि जिन २ अक्षर, पद, वाक्य, मन्त्र या

सूक्त का जितनी बार प्रयोजन आता है, उतनी बार उस २ अक्षर, पद, वाक्य, मन्त्र या सूक्तादि को पुनः पुनः एक ही वेद या दूसरे वेदों में प्रयुक्त किया गया है ।

परमेश्वर के अनेक सामर्थ्य हैं । इन सामर्थ्यों को ही देख कर ऋषियों ने अनेक नामों से प्रभु की स्तुतियां की हैं । चूंकि प्रभु सब पदार्थों में समान रूप से व्यापक है, प्रभु को अनेक नामों से पुकारा जाता है, अर्थात् यह सब वेद ऋचा समूह उस महान आत्मा का ही वर्णन करता है ।

सामवेद में भिन्न-भिन्न स्थानों पर सोम, इन्द्र, आदित्य, विष्णु, राजा आदि नामों से प्रभु का उल्लेख आता है, परन्तु जहां ये सांसारिक पदार्थों के गुणों को दर्शाते हैं, वहां उनसे उस महान आत्मा की ओर भी ध्यान को ले जाता है । वही उनका उत्पादक है और वही उन में उन गुणों का संचार करता है । इसलिये जब हम इन पदार्थों के गुणों का वर्णन करते हैं, तब मानो हम उस महान् शक्ति के साक्षात स्वरूप को दर्शाते हैं ।

प्रत्येक हिन्दू कहता है कि वेद मेरा धार्मिक ग्रन्थ है । मगर वेद में क्या लिखा है, इस से साधारण जनता अनभिज्ञ है । महर्षि दयानन्द सरस्वती की प्रेरणा से कुछ लोगों को वेद (ज्ञान) सुनने या पढ़ने का अवसर मिला है, परन्तु अब भी बहुतेरे मनुष्य ऐसे हैं, जिन्होंने वेद को देखा तक नहीं । चूंकि वेद की भाषा संस्कृत है और उसका समझना आसान नहीं, इसलिये मेरी इच्छा हुई कि वेदों का प्रकाश सरल भाषा हिन्दी में किया जाये । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह सामवेद प्रकाश प्रस्तुत किया जा रहा है । इस में केवल भावार्थ दिये गये हैं, वे मेरे अपने नहीं—श्री स्वामी तुलसीराम जी के भाष्य के ही हैं । जहां-जहां मुझे विचारों को स्पष्ट करने की आवश्यकता पड़ी है, वहां कुछ भेद अवश्य है । विद्वानों से मेरा यह निवेदन है कि मेरे इस प्रयास में जो त्रुटियां वे पावें, मुझे स्वयं जता कर अपनी महानुभावता प्रकट करें । इससे आगामी संस्करण में उन त्रुटियों को दूर कर मैं उनके ऋण से उऋण हो सकूंगा ।

मेला राम वेदी

परिचय

श्री मेलाराम वेदी बड़े प्रसन्नचित्त, मिलनसार, उदार और कर्मठ व्यक्ति हैं । आपके जीवन का मुख्य उद्देश्य वेद का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना और उसमें बताई गई बातों पर आचरण करना रहा है । समाज सेवा के कार्यों में भी आप सदैव तत्पर रहते हैं । आपके व्यक्तित्व में एक सच्चे आर्य की झलक मिलती है ।

आपका जन्म १८९६ ई० में पंजाब प्रान्त में जिला गुजरात के एक गांव ककराली में हुआ था । आपके पिता महाशय ठाकुरदास जी गांव में एक बड़े जमींदार थे, किन्तु उनका देहान्त आपकी शैशवावस्था में ही हो गया । पालन-पोषण माता जी ने किया । वह बड़ी सादा और धार्मिक विचारों वाली भारतीय आदर्शों पर चलने वाली स्त्री थीं । धार्मिक विचारों की छाप आपने उनसे ही ग्रहण की । माता जी ने आपकी शिक्षा-दीक्षा की ओर भी विशेष ध्यान दिया । आपने डी० ए० वी० कॉलिज लाहौर से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की । वहां आपको महात्मा हंसराज जैसे आर्य नेताओं के सम्पर्क में आने का अवसर प्राप्त हुआ ।

पढ़ाई समाप्त कर, आप सेना के लेखा विभाग में क्लर्क भर्ती हो गये और उन्नति करते करते डिप्टी असिस्टेंट कण्ट्रोलर के पद पर पहुंच कर सेवा कार्य से निवृत्त हुए । इस दीर्घ सेवाकाल में, आपको क्वेटा, लाहौर, स्यालकोट, पूना, अम्बाला, मथुरा, आदि स्थानों पर रहने का अवसर प्राप्त हुआ । आप जहां भी रहे, वेद के संदेश और आर्य समाज के प्रचार को अपने साथ ले गये । आपने क्वेटा में डी० ए० वी० हाई स्कूल के प्रबन्धक के रूप में सहयोग दिया । स्यालकोट में आर्यसमाज कॉलिज संस्थान की स्थापना की । पूना में आर्यसमाज को पुनः जीवित किया । मथुरा में आर्यसमाज का भव्य मन्दिर बनवाया ।

आजकल आप दिल्ली में रह रहे हैं । यहां भी आप ने आर्यसमाज देवनगर के भवन निर्माण की नींव रखी । आप इस समाज के प्रधान हैं । बच्चों और

आदि प्रकाशक लोक भी प्रकाशित होते हैं। सूर्य का प्रकाश अत्यन्त है, सूर्य से दिन बनता है।

इन गुणों के साथ अग्नि को जानने का परमात्मा उपदेश देते हैं, गुणों का वर्णन स्तोत्र कहाता है। प्रकाश अग्नि का गुण है और प्रकाश से चेत होता है। इसलिये अग्नि को चेतने वाला कहा है। जिस प्रकार अमर जीवात्मा एक देह से दूसरी देह को धारण करती है, मरती नहीं; इसी प्रकार अग्नि एक काष्ठ आदि से निकल कर अन्य पदार्थों में प्रवेश करता है, मरता नहीं। इसलिये नित्य अग्नि तत्व को अमर कहा गया है। जब तक देहादि में अग्नि रहता है तब तक देहादि का नाश नहीं होता, इसलिये इसको बल का रक्षक कहते हैं। कर्म काण्ड को उपयोगी होने से 'यज्ञ का सुधारने वाला' कहा है।

जिस प्रकार वन के काष्ठ में अदम्य रूप में अग्नि वर्तमान है, और वे वन अग्नि को माता के समान गर्भ में ले रहे हैं, और मनुष्य लोग उस छुपी अग्नि को मन्थन द्वारा प्रकट करके प्रदीप्त कर लेते हैं, इसी प्रकार परमात्मा रूप महान अग्नि देह रूप अरण्य भावी वनों में व्याप रहा है, इसे योगी लोग अपने हृदय की भूमियों में प्रकाशित पाते हैं। मनुष्य लोग यज्ञादि कार्यों में मथकर प्रदीप्त कर लेते हैं, और वह प्रदीप्त होकर हवन किये द्रव्यों को वायवादि देवों में पहुँचता है।

पृथ्वी में जो एक प्रकार की गर्मी है, जो पृथ्वी से निरन्तर निकलती रहती है और द्युलोक में स्थित हो जाती है। यही अग्नि दिव्य लोक से नीचे और पृथ्वी के ऊपर तिलों को पुष्ट करती और पुष्ट करती है। यह अग्नि कार्यरूप से फिर कारण रूप विद्युत् की ओर दौड़ती है।

अग्नि में तीक्ष्णता है। इससे अस्त्रादि बनाओ। संसार के सभ्य परोपकारक नीतिमान पुरुषों का विरोध नहीं करना, किन्तु दुष्ट हिंसक परपीड़क शत्रु का ही निग्रह करना है क्योंकि अपने सुख भोग के लिये पराया राज्यादि धन हरण नहीं करना, किन्तु परायी रक्षार्थ।

अग्नि महान् है। इसे यज्ञ और शिल्प कार्यालय स्थल में स्थापित करें तो सुख होगा।

अग्नि दिव्य गुण युक्त देव और शिथिलता रहित एवं अजर है।

उससे सिद्ध हुए अस्त्रों द्वारा अन्यायियों का दमन और धर्मात्मा की रक्षा होती है।

अग्नि सेवन योग्य है। यज्ञ और शिल्प द्वारा प्रजा की पालक है। अग्नि सदा ऊपर को उठती है और मेघों को बरसाती है। अग्नि पवित्रता करने के योग्य है। प्रथम स्वयं पवित्र होकर अग्नि का आधान और गुण वर्णन करने वाले मन्त्रों का पाठ करें। ऐसा करने से दहकती हुई शोधक अग्नि उसके वर्णन को अंगीकार करती है अर्थात् उसके जाने तथा वर्णन किये अनुसार काम देने लगती है। सूर्य रूप अग्नि वृष्टि द्वारा अन्न का पति है और प्रकाश द्वारा तमो गुण की निवृत्ति और बुद्धि तत्व की वृद्धि करने से बुद्धि तत्व वाला है। सूर्य अपनी किरणों से हमें व्यापता, प्रकाश करता, जगा कर ज्ञान को उत्तेजित करता और सर्व वस्तुओं को दिखाता है।

सूर्य मेधावी है, सत्य धर्मा है, उसके उदय-अस्त नियमबद्ध होते हैं। वह प्रकाशक होने से देव है। उसके प्रकाश के साथ गरमी फैलती है, गरमी से वायु बहती है, वायु बहने से सड़न निवृत्त होती है। सड़न रोगों की उत्पादक है; इसलिये सूर्य रोग-निवारक है।

अग्नि मित्र के समान हितकारक है, इसलिये सब मनुष्यों को उससे अत्यन्त प्रीति करनी चाहिये। वह अतिथि के समान एक स्थान में स्थित नहीं रहता। उसका स्वभाव सदा चलने का है, इसी से वायु चलती और आंधी आती है।

लौकिक वैदिक वाणी अग्नि ही की सहायता से बोली जाती है, क्योंकि वाक् इन्द्रिय का अग्नि देवता है। वाक् इन्द्रिय अग्नि का प्रधान कार्य है। शब्द, स्पर्श और रूप अग्नि के तीन गुण हैं। यह अग्नि यज्ञों में बढ़ता है। इस लिये यज्ञानुष्ठान से वागेन्द्रिय का सुधार भी होता है, क्योंकि वाणी आदि सब इन्द्रियाँ अपने २ नियम अनुकूल निज २ अग्नि आदि भौतिक देव को ग्रहण करते रहते हैं और इसी से समस्त व्यवहार की सिद्धि है। वाणी आग्नेय है और वह वायु के आधार पर एक मनुष्य से उच्चारित हुई दूसरे मनुष्य के श्रोत्र द्वारा उसे प्राप्त होती है।

अग्नि ही की सहायता से मन-रूपी बिजली हृदय से सम्पूर्ण शरीर में फैलती है और उसी से सब कोई बोल सकता है। इसलिये प्रत्येक बोलने वाले

युवकों के लिए आपके हृदय में विशेष प्रेम है। आर्यसमाज देवनगर में बालक-बालिकाओं को धर्म शिक्षा देने के लिए आपने आर्यकुमार सभा की स्थापना करवाई। धर्म शिक्षा का कार्य अपने ऊपर लिया। इस समय आप 'विवाह सुधार सभा' का भी बहुत कार्य कर रहे हैं। इस पर भी आप अपना अधिक समय वेद प्रचार के लिए देते हैं। 'वेद प्रचारक' मासिक पत्र का सम्पादन भी आप द्वारा किया गया। लेखन कार्य की ओर आपकी रुचि दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। आपकी ब्रह्मप्रसाद तथा मुक्तिपथ दो पुस्तकें प्रकाश में आ चुकी है।

आजकल आप चारों वेदों का स्वाध्याय कर, उनका हिन्दी रूपान्तर तैयार कर रहे हैं। आपने मन्त्रों को विषय अनुसार संकलित किया है, जोकि इस दिशा में एक नया प्रयास है। आपके इस प्रयास से सर्वसाधारण को भी हिन्दी भाषा में वेद को समझने में आसानी रहेगी। वेद के लिए किया जाने वाला आपका यह कार्य स्तुत्य है।

वेदी प्रकाशन ट्रस्ट की ओर से 'सामवेद प्रकाश' सरल हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किया जा रहा है। मुझे पूर्ण विश्वास है, वेद प्रेमी इस से लाभ उठावेंगे।

हर प्रकाश 'बन्धु'
मन्त्री
वेदी प्रकाशन ट्रस्ट

६०/१३ रोहतक रोड
नई दिल्ली-५

विषय प्रवेश

सामवेद के पूर्वार्द्ध के "आग्नेय काण्ड में अग्नि का अर्थ परमेश्वर किया गया है, परन्तु अग्नि से भौतिक अग्नि भी ली जा सकती है। भौतिक अर्थों के अनुसार इस काण्ड का भाव निम्नलिखित है :—

अग्नि आदि जड़ पदार्थों की स्तुति का यह लाभ है कि जिस प्रकार परमेश्वर की स्तुति अर्थात् गुणानुवाद करने से उनमें श्रद्धा उत्पन्न होती है, उसी प्रकार अग्नि आदि जड़ पदार्थों के गुण वर्णन करने से उन गुणों द्वारा उपकार लेने की श्रद्धा उत्पन्न होती है अर्थात् होम आदि करने का क्या लाभ है, शिल्पादि में अग्नि क्या काम देती है इत्यादि विदित होता है, इसलिए अग्नि का गुण कीर्तन व्यर्थ नहीं है।

उपनिषद् के अनुसार मनुष्य को योग्य है कि वह अपनी देह को अधर अणि और प्रणव ओंकार को उत्तर अरणि का स्थान रूप निर्मथन को रगड़ रगड़ कर ज्योति स्वरूप देव प्रकाश स्वरूप आत्मा का दर्शन करें। इसी अग्नि के प्रकाश को मानो सविता ने इस पृथ्वी आदि देह में छिपाया हुआ है।

परमात्मा ने अग्नि को आकाश में उत्पन्न किया है और यह आकाश सब का धारण करता है तथा आकाश ही प्रकाश को एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँचाता है।

मनुष्य सूर्य की किरणों की सहायता से अग्नि को प्रदीप्त करता है। जब शीत ऋतु में सूर्य की किरणें अधिक तीव्र नहीं होती हैं, तब उतना ही अग्नि का बल घट जाता है। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की प्रचण्डता के साथ आहवनीयादि अग्नि में कैसी तीव्रता हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि अग्नि को प्रदीप्त होने के लिये सूर्य किरणों की सहायता अपेक्षित है।

जिस प्रकार सोना, चाँदी, पीतल आदि पदार्थ सूर्य की ज्योति की सहायता से प्रकाशित होते हैं, वैसे ही सूर्य स्वयं भी परमात्मा की ज्योति से प्रकाशित होता है अर्थात् कारण रूप अग्नि तत्व जो नित्य है, उसी से सूर्य

को आग्नेय वाणी इन्द्रिय का उपयोग अच्छी प्रकार करना चाहिये । आत्मा बुद्धि से मिल कर अर्थों के बोलने की इच्छा से मन को प्रेरित करता है और वायु उर: स्थान में विचरता हुआ मन्द स्वर को उत्पन्न करता है ।

अग्नि से बड़ी रक्षा और सुख सम्पादन करना चाहिये । अग्नि ही से नेत्रेन्द्रिय की उत्पत्ति से देखने का काम सिद्ध होता है । इससे यज्ञ वा शिल्पकर्म से सुख में निवास करना चाहिये ।

अग्नि को सब धनों वाला कहा गया है, इसलिये कि स्वर्णादि समस्त धन आग्नेय हैं । इसी से स्वर्ण, रत्न, मणि आदि सब रत्न चमकीले और देखने में रमणीय हैं । स्वर्णादि सूर्य की किरणों से ही उत्पन्न होते हैं ।

अग्नि शुचि है अर्थात् स्वयं मलिनतादि दोष रहित है और अपने संसर्ग से अन्य पदार्थों की मलिनता आदि दोषों को दूर करने वाला है । यह अन्तरिक्ष में वायु के समान व्याप रही है । जब हम कहीं अग्नि जलाते हैं, तो थोड़ी देर में भस्म शेष रह जाती है और अग्नि गतिशील होने से आकाश में फैल जाती है । इस प्रकार अग्नि की अदृश्य अवस्था होती है और वह आकाश में फैल जाता है, व्यापी रहता है ।

मनुष्य अग्नि को प्राप्त होता हुआ कर्म को प्राप्त होती है और अन्धकार में सब कर्म बन्द हो जाता है । रात्रि को काम करने वालों को अग्नि के प्रकाश की आवश्यकता होती है ।

अग्नि ही वृष्टि आदि द्वारा रस को फैलाने वाला, वसुसंज्ञक देव है; वही यजन करने से हमको चारों वेदों में लिखे अनुसार फल देता है । जो अग्नि विद्या द्वारा अग्नि से उपयोग लेना जानते हैं, वे अनुवा व राजा होते हैं ।

अग्नि के ही प्रभाव से सूर्य से उषा उत्पन्न होती है, जो लाल-लाल वस्त्र को धारण करती हुई अपने चित्र को दिखाती है और जिसके प्रभाव से मनुष्यों के रात्रि में मृतप्राय ज्ञानेन्द्रिय फिर जागती हैं । यह उषा सब का पोषण करती है । उषा चेतना देव और बुद्धियों को बढ़ाती है इसलिये परमात्मा का उपदेश है कि अग्नि का सदुपयोग करो ।

अग्नि आठ वसुओं में एक विशेष वसु है, जिसके प्रभाव से मनुष्य अपनी रक्षा और शत्रुओं की पराजय कर सकता है ।

अग्नि (आग्नेय विद्या और यज्ञ द्वारा स्तुत्य) धाता अर्थात् जगत का धारता है, वही पवित्र जल वर्षाता, अन्न उपजाता और कीर्ति बढ़ाता है । क्योंकि अन्तरिक्ष में फैले हुए जल को अप् और तनु कहते हैं, उन जलों का पौत्र अग्नि को इस कारण माना है कि जल से ओषधि वनस्पति, और ओषधि वनस्पति से काष्ठों में से अग्नि उत्पन्न होता है ।

अग्नि स्तुतियोग्य है अर्थात् वेदोक्त रीति से वर्णन करने के योग्य है । इसके गुणों को बुद्धि से बढ़ावें अर्थात् थोड़ा वेद से सुन कर फिर अपनी बुद्धि और अनुभव से ज्ञान बढ़ावें ।

जैसे प्रत्यक्ष सूर्य प्रकाशमान हो रहा है, प्राण को दे रहा है, सूर्य द्वारा ही प्राणवायु का संचार होता है, धारण-आकर्षण आदि पुरुषार्थ युक्त है, मनुष्यों का मोदजनक अनुमोदन योग्य है, अत्यन्त बलवान है । और जैसे सूर्य के प्रशंसाई स्वाभाविक कर्म हैं, वैसे ही अग्नि के गुण कर्म भी कामना करने योग्य हैं ।

अग्नि अमर देव है और सब मनुष्य उसकी अपेक्षा मरण-धर्मा हैं । अग्नि ही सूर्यादि को प्रकाशित कर रहा है । अग्नि तेज धारण करता है, मेधावी होत्रादि ऋत्विजों में तेज धारता है, घट पटादि समस्त पदार्थों में जो तेज है, वह अग्नि का ही है । इसलिये अग्नि का वर्णन किया करो । प्रकार यह है :—

हे अग्ने ! आप हमारे यज्ञ में अर्थात् ज्ञान यज्ञ रूप ध्यान में प्राप्त हूजिये । आप सब पदार्थों के दाता हैं, आप हृदय में प्रकाश करते और भक्ति का फल देते हैं ।

हे अग्ने ! तुम सब कर्म यज्ञों में होम करने वाले विद्वान ऋत्विजों द्वारा यजमान के यहाँ स्थापन किये जाते हो । तुम यज्ञ के दूत हो, तुम वायु आदि देवों को बुलाते हो । जब कुण्ड में अग्नि स्थापित करके हवन करते हैं, तो अग्निकुण्ड के ऊपर का वायु और वायु के अन्तर्गत अन्य ३३ में कई भौतिक देवों को आहुति पहुँचा कर अग्नि अपनी उष्णता से हलका कर देता है, तब हलकी वस्तु स्वाभाविक रीति से (जल पर तैल के समान) ऊपर को उठ जाती है और उसका स्थान खाली हो जाता है । परन्तु चारों ओर से वायु और उसके

अन्तर्गत अन्य देव फिर उस स्थान को भर देते हैं। अग्नि फिर उन्हें भी अपनी उष्णता से हलका करके हटा देता है। इस प्रकार अग्नि दूत है। अग्नि में प्रकाश है और प्रकाश ज्ञान का साधन है। वेदोक्त मन्त्रों से अग्नि का कीर्तन करना चाहिये। इससे होम के साथ मन्त्र पढ़ने का तात्पर्य है, जिससे अग्नि के गुण ज्ञात होकर उससे उपयोग की शिक्षा मिले।

अग्नि सब ओर से वृत्र अर्थात् अन्धकारों, दुःखदायक रोगों और अनावृष्टि आदि दुःखों का हनन करता है। इसलिये मनुष्यों को यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये।

अग्नि में अन्न यवादि औषधियों का होम करना चाहिये, जिससे इन औषधियों की वृद्धि हो।

यह अग्नि यज्ञ को साधने वाला और रुद्र अर्थात् अनाहिताग्नि उन लोगों को जो हवन नहीं करते हैं पीड़क प्रतीत होता है, तथा दुष्ट शत्रुओं का आग्नेयास्त्रादि में प्रयुक्त होकर रुलाने वाला है। इसलिये हमको योग्य है कि हम कुण्ड के समीप बैठ कर पुष्कल मनोहर अग्नि देवता वाले मन्त्रों का पाठ करें। कर्म यज्ञ का साधक अग्नि सुन्दर यज्ञकुण्ड में स्थापित किया जाता है, और वह स्थापित होते ही अपने मित्र वायुओं को प्रेरित करता है, और वायु आदि में रहने वाले दोषों या कीड़ों को निवृत करता है।

अग्नि मेघमण्डलादि दूरवर्ती स्थानों में हमारे इष्ट साधक यज्ञ को फैलाता है, शिल्पविद्या में प्रयुक्त होकर अनेकशः कार्यों को साधता तथा युद्धादि में आग्नेयास्त्रादि द्वारा सहस्रों लक्षों मनुष्यों का काम करता है।

अग्नि में होम करने से (१) वायावृदि की शुद्धि (२) अन्नादि भोज्य पेय पदार्थों का शोधन (३) शरीरस्थ बुद्धितत्व का परिशोधन, वृद्धि और आप्यायन होता है।

परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो! जिस अग्नि में तुम सुगन्ध मिष्ट पुष्ट रोगनाशकादि नाना पदार्थों को होमते हो, और उन पदार्थों को यथास्थान वायु बादल औषधि वनस्पति आदि में पहुँचाता है, और तुम्हें आनन्द देता है, तुम उस अग्नि के गुणों को जानो और अग्नि के गुण वर्णन वाले मन्त्रों का पाठ भी करते जाया करो।

यज्ञकर्ता को अग्नि का स्थापन करना चाहिये, जिससे प्राणिमात्र का उपकार हो। और हम उसके तेज से तेजस्वी, महात्मा, धनी हो जावें। यह भौतिक अग्नि कुण्डादि में उच्च भाव से सूर्य के समान प्रदीप्त किया जाना चाहिये। अग्नि पृथ्वी से हव्य लेकर ऊपर द्युलोक को जाता, वहाँ जाकर वायु, जलादि की पवित्रता द्वारा मनुष्यों का हित करता, उत्पन्न होकर प्रकाश से दिखाने का काम करता, स्वयं प्रकाशित करता, सदा ऊपर को चलता ही रहता, प्राणियों की रक्षा करता, और वायवादि देवों का मुख है। यह अग्निहोत्र रोगनाशक होने से वायवादि की शुद्धि करके मृत्यु से बचाने वाला है। इसे प्रातःकाल उठते ही करना चाहिये, जिससे वायु जल घर बाहर को पवित्र शुद्ध स्वच्छ करे।

प्रभु की यह भी शिक्षा है कि सम्पूर्ण दुष्ट प्राणियों वा अप्राणियों से जो वायु में विकार होकर रोग और मृत्यु का कारण होते हैं, उनसे बचने के लिये परमेश्वर की प्रार्थना और अग्नि में होम करो। जो निरन्तर होम करे, वह वीर हो जाये।

जब हम होम करते है, तब अग्नि जल सूर्यादि को अपने अनुकूल करते हैं और परमात्मा की आज्ञा के पालन से उसे भी प्रसन्न करते हैं। जब होम की लपटें आकाश में पहुँचती हैं, तो सूर्यादि द्युलोकस्थ देवों की अनुकूलता कराते हैं। हव्य को जलती अग्नि में डालें, जिससे तत्काल अग्नि उसमें व्याप सके और द्युलोक को ले जावें।

होम करने से निम्न देवता अनुकूल हो जाते हैं :—

८ वसु + ११ रुद्र + १२ आदित्य + इन्द्र + प्रजापति।

आठ वसुओं के नाम हैं :—अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्र और नक्षत्र।

ग्यारह रुद्र :—प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और आत्मा।

बारह आदित्य :—बारह मास—चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन।

इन्द्र :—बिजुली।

प्रजापति :---यज्ञ (यज्ञ भी प्रजापति है, क्योंकि प्रजा का पालन इन्हीं से होता है) ।

यही ३३ देवता हैं । जो होम करने से अनुकूल हो जाते हैं ।

अग्नि धन-धान्यादि और पशुओं का स्वामी है, क्योंकि अग्नि से होम द्वारा जलवायु की शुद्धि, वृष्टि, धन-धान्यादि की वृद्धि होकर पशु बढ़ते हैं ।

अग्नि में जो सात प्रकार की लपटें हैं, उनसे एक ऐसा वायु शोधने वाला उत्पन्न होता है, जो हवन जन्य गुणों को लिये हुए मनुष्यों के बुद्धितत्व की वृद्धि चाहता है अर्थात् उससे बुद्धि तत्व में भी पवित्रता उत्पन्न होती है । जिससे धन आदि के लिये स्थिर विचार हो सकता है और सुख मिलता है और मनुष्य दुष्ट शत्रुओं के वश में नहीं जाता ।

प्रभु कृपा करें कि हम इस काण्ड के भौतिक अर्थ को ग्रहण करके, हवन करते हुए उसके सच्चे भक्त हों ।

ओ३म्

सामवेद पूर्वार्चिकः

आग्नेयकाण्डम्

प्रथमोऽध्यायः

प्रथमो प्रपाठकः

परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना

(१) प्रभु ! आइये कल्याण का मार्ग दिखाने के लिए, हृदय के अंधकार को मिटाने के लिए, कर्म बन्धनों के उच्छेद के लिए और कृपा-पात्र बनाने के लिए । महान् प्रेरक प्रभु ! आप इस हृदय में जहाँ से अन्धकार नष्ट हो गया है, निरन्तर विराजमान हों ।। प्र० १ (१) दशति १ (१)

(२) प्रभु ! आप सब श्रेष्ठतम कर्मों के होता हैं, आप दिव्य गुणों के द्वारा दयालुता से युक्त प्राणी में प्रतिष्ठित होते हैं ।। प्र० १ (१) द० १ (२)

(३) जब हम प्रभु को दूत, सम्पत्तियों का देने वाला और सम्पत्तियों का मालिक समझ कर वरते हैं, तो वह प्रभु इस जीवन के उत्तम कर्त्ता होते हैं ।। प्र० १ (१) द० १ (३)

(४) प्रभु, उस जीव की वासनाओं को नष्ट करता है, जो धन को प्रभु अर्पित करता है, जो प्रभु स्तुति करता है, जो प्रभु को हृदय में दीप्त करता है, जो प्रभु प्राप्ति के लिए लगा रहता है और जो अपने आप को उसके समर्पण करता है ।। प्र० १ (१) द० १ (४)

(५) प्रभु कान्तिमान है, दीप्ति वाला है, तुम्हारा तो मेहमान की तरह, मित्र के समान तृप्त करने वाला है । प्रभु रथ की तरह जानने योग्य है । जिस प्रकार रथ से यात्रा की पूर्ति में सहायता मिलती है, उसी प्रकार इस जीवन की यात्रा भी प्रभु रूपी रथ पर आरूढ होने से ही होगी ।। प्र० १ (१) द० १ (५)

(६) प्रभु ! आप हमें सब अदान की भावना से बचाओ और द्वेष से जो मनुष्यों में हो जाता है, अपने तेज के द्वारा बचाओ । अर्थात् हम दान करें और किसी से वैर न करें ॥ प्र० १ (१) द० १ (६)

(७) प्रभु ! मेरे हृदय में आइए, क्योंकि आपके समीप होने से सामान्य व्यवहार की बातों को भी सत्य ही बोलता हूं, ऐसे ही सत्य बोलने वाले लोगों का जीवन आपकी महिमा को प्रकट करता है, और ऐसे पुरुषों से आपकी लोगों में ख्याति होती है ॥ प्र० १ (२) द० १ (७)

(८) प्रभु ! तेरा प्यारा (सदा सत्य बोलने वाला) सबसे अच्छे मोक्ष से भी अपने मन को काबू करता है अर्थात् अपने मन से उस मोक्ष लोक की प्राप्ति की कामना को भी नहीं करता, इसलिए मैं यह चाहता हूं कि हे प्रभु ! मैं तुम्हें वाणी से चाहूँ, आप सत्य स्वरूप हैं, मैं वाणी से सत्य ही बोलूँ ॥ प्र० १ (१) द० १ (८)

(९) प्रभु ! आपको निश्चल वृत्ति वाला पुरुष इस हृदय देश में जान [illegible] है । प्रभु के ज्ञान का मन्थन मस्तिष्क से होता है, यह मस्तिष्क सारे [illegible]ण्ड के ज्ञान को धारण करने वाला है ॥ द० १ (८)

(१०) प्रभु निश्चय से देव हैं । आप हमारे लिए ज्ञानी पुरुष को प्राप्त कराइये ताकि हम अपनी रक्षा कर सकें । आप हमें तेज दें ताकि हम आपका साक्षात कर सकें ॥ द० १ (१०)

(११) प्रभु हम तेरे लिए नमस्कार करते हैं, ताकि हमें बल प्राप्ति हो । कृषि करने वाले मनुष्य तेरी सच्ची आराधना करते हैं । प्रभु हम शारीरिक शक्तियों से शत्रु को नष्ट करने वाले हों ॥ द० २ (१)

(१२) प्रभु तुम सब भक्तों के दूत हो, सम्पूर्ण धनों वाले हो, अच्छे व्यक्ति को अपने समीप ले जाने वाले हो, सच्चे भक्तों को जन्म-मरण से मुक्त कराते हो और अधिक से अधिक अपने साथ संगत करने वाले हो । हम आपकी अपनी वाणी से आराधना करते हैं ॥ द० २ (१)

(१३) दानशील मनुष्य की तेरे समीप गति करने वाली वाणियाँ उसको वायु के समान शक्ति में स्थित करती हैं । शक्ति बढ़ाने का केवल एक ही तरीका है । "शरीर से काम करो और मन से प्रभु स्मरण ॥" द० २ (३)

(१४) दोषों को दूर करने वाले प्रभु ! हम तेरे भक्त प्रतिदिन तेरे समीप ज्ञानपूर्वक कर्म से विनय का सम्पादन करते हुए आएँ ॥ द० २।४

(१५) प्रभु जीव से कहते हैं कि बुढ़ापे में चेतने वाले कि "मनुष्य जन्म का लक्ष्य क्या है" "तू प्रत्येक प्राणी में संगति करने में मेरे लिए अधिक से अधिक हितकर हो" प्रभु का अर्चन लोक हित के कर्मों से होता है ॥ प्र० १ (१) द० २।५

(१६) उस करने के योग्य यज्ञ में प्रभु ही हम से पुकारे जाते हैं प्राणों की साधना से आप आइए । अर्थात् इन्द्रियों की रक्षा के लिए प्राणों की साधना ही उपाय है ॥ प्र० १ (१) द० २।६

(१७) उस प्रभु को हम नमस्कारों से वन्दन के लिए प्रवृत्त हुए हैं, वह प्रभु सब यज्ञों का सम्राट है । अर्थात जैसे उत्तम घोड़ा शत्रुओं पर आक्रमण करके उनको दूर भगा देता है, उसी प्रकार वह प्रभु भी सब बुरी वृत्तियों को दूर करके यज्ञ को निर्विघ्न पूरा किया करता है ॥ प्र० १ (१) द० २।७

(१८) प्रभु निर्मल हैं, उनकी उपासना अत्यन्त उदार हृदय से होगी । प्रभु ज्ञान अग्नि के पुञ्ज हैं, उनकी उपासना ज्ञानी बनने से होगी । प्रभु आनन्दमय हैं, उनकी उपासना क्रियामय जीवन वाला बनने से होगी । ऐसा बनने से ही प्रभु की सच्ची उपासना है ॥ प्र० १ (१) द० २।८

(१९) मनुष्य मन के द्वारा प्रभु को दीप्त करके ज्ञानपूर्वक कर्म का सेवन करे । वह प्रभु सत्संग से दीप्त होता है ॥ प्र० १ (१) द० २।९

(२०) जिस दिन प्रभु दीप्त किया जाता है, ठीक उसी दिन सनातन शक्ति को बसाने वाली ज्योति दीखती है ॥ प्र० १ (१) द० २।१०

(२१) प्रभु की ओर चल, वह तुम्हारे जीवन को बढ़ाने वाला है, हिंसा-रहित शुभ कर्मों को पूर्ण करता है, गिरने नहीं देता, बलवान बनाता है ॥ प्र० १ (१) द० ३।१

(२२) वह प्रभु अति तीक्ष्ण ज्ञान की दीप्ति से हमारे अन्दर प्रवेश कर जाने वाले सब शत्रुओं (काम, क्रोध, लोभ) का नियन्त्रित करने वाला है । वह प्रभु ही सब धनों को प्राप्त कराने वाला है ॥ प्र० १ (१) द० ३।२

(२३) प्रभु तू महान है, हमें सुखी कर, तू दिव्य गुणों को चाहने वाले मनुष्य का कल्याण करता है, तू शुद्ध हृदय में बैठने के लिए आता है ॥ प्र० १ (१) द० ३।३

(२४) प्रभु ! तू पाप से हमारी रक्षा कर, हिंसा करने वाले शत्रुओं से एक-एक से बचा, तपस्वी जीवन से तू न जीर्ण होता हुआ काम, क्रोध, आदि को भस्म कर डाल ॥ प्र० १ (१) द० ३।४

(२५) प्रभु ! जो तेरी यात्रा को सिद्ध करने वाले घोड़े हैं, उन्हें ही हमारे रथ में जोड़िए, जो तेज तथा सुन्दर रथ का वहन करने वाले हैं । रथ= शरीर, घोड़े=इन्द्रियां ॥ प्र० १ (१) द० ३।५

(२६) प्रभु ! हम आपका इन इन रूपों में ध्यान करते हैं :— प्रजाओं का पालक, प्रकाश देने वाला, उत्तम वीर, सबका हित करने वाला, आगे ले जाने वाला, सब पदार्थों को देने वाला ॥ प्र० १ (१) द० ३।६

(२७) वह जीव ज्ञान की चोटी पर पहुँचता है, जो इस मिट्टी के शरीर का पति बनता है और जल देवता के अंशावतार वीर्य शक्ति से अपने शरीर को प्रीणित करता है अर्थात ब्रह्मचर्य को धारण करता है ॥ प्र० १ (१) द० ३।७

(२८) प्रभु ! आप अपनी कृपा से हमारी आँख आदि अंगों में इस दान, अर्चना (पूजन) और स्तुति का निश्चय से अच्छी तरह प्रवचन कर दें ॥ प्र० १ (१) द० ३।८

(२९) अंग-अंग में बल का संचार करने वाले प्रभु ! अपनी इन्द्रियों को पवित्र करने वाला व्यक्ति ही वाणी (कीर्तन से) से आपके दर्शन का अधिकारी बन सकता है । आप पवित्र करने वाले हैं, मेरी भी प्रार्थना को सुनिए ॥ प्र० १ (१) द० ३।९

(३०) सब अन्नों का पति क्रान्तदर्शी प्रभु शुभ पदार्थों को चारों ओर से प्राप्त कर रहा है । जो भी व्यक्ति दान देता है, वह उसको उत्तम पदार्थों को देता है ॥ प्र० १ (१) द० ३।१०

(३१) जिसने चारों वेदों को रचा है उस देवों के देव, चराचर जगत के संचालक परमात्मा को विश्व विद्या की प्राप्ति के लिए हम उपासना करते

हैं । वेद की श्रुतियां और विविध जगत के पृथक-पृथक रचना आदि नियामक गुण तर्क के साथ उसे जतला रहे हैं और उस प्रभु की प्राप्ति भी कराते हैं ॥ प्र० १ (१) द० ३।११

(३२) इस हिंसा रहित जीवन यज्ञ में प्रभु की समीप से स्तुति करें अर्थात प्रभु को सदा समीप समझ कर नीरोगता, प्रकाश और सत्य को धारण करें और क्रान्तदर्शी हों ॥ प्र० १ (१) द० ३।१२

(३३) सर्व प्रकाशक, सर्वव्यापक परमेश्वर लौकिक सिद्धि के लिए और पूर्ण आनन्द (मोक्ष की) की प्राप्ति के लिए कल्याणदायक सुख की सब ओर से वर्षा करें ॥ प्र० १ (१) द० ३।१३

(३४) प्रभु ! निश्चय से आप सुख की, पालन और पूर्ण करने वाली बुद्धियों को देते हो । आपकी वेद वाणी ज्ञान रस से भरी है ॥ प्र० १ (१) द० ३।१४

(३५) हम अमर, सर्वत्र व्यापक प्रभु की प्यारे मित्र की तरह स्तुति करते हैं और खूब स्तुति करते हैं । हम यज्ञों से अपनी उन्नति साधें और वेद वाणी से अपने ज्ञान को बढ़ाएँ । प्र० १ (१) द० ४।१

(३६) प्रभु ! ऋग रूपी प्रथम वाणी और यजुरूपी द्वितीय वाणी से हमारी रक्षा कीजिए । प्रभु ! पहली दो वाणियों के साथ तृतीय सामरूप वाणी से भी रक्षा कीजिए । हे निवासक प्रभु ! हमारी प्रथम तीन के साथ चौथी अथर्व रूप वाणी से भी रक्षा कीजिए ॥ प्र० १ (१) द० ४।२

(३७) वृद्धि करने वाली पूजाओं से और ज्ञान से दिदीप्यमान प्रभु ! तीव्र ज्ञान की दीप्ति से अपने में शक्ति को भरने वाले में प्रकाशित होते हुए आप सर्वदा उत्तम ज्ञान धन सम्पन्न पवित्र करने वाले दीप्त हूजिए । पवित्र मन से, दीप्त मस्तिष्क से व शक्ति सम्पन्न शरीर से ही प्रभु का प्रकाश प्राप्त होता है ॥ प्र० १ (१) द० ४।३

(३८) प्रभु ! अपने आप को जीवों के हित के लिए आहुति देने वाले मनुष्य तुम्हें प्रिय हों, विद्वान स्वाध्यायशील पुरुष आपको प्रिय हों, मन को वश में करने वाले जो मनुष्यों में इन्द्र बनते हैं और इन्द्रियों को सुरक्षित रखते हैं, आप को प्रिय हों ॥ प्र० १ (१) द० ४।४

प्रभु पापों को जीर्ण करने वाले हैं, सब प्रजाओं के पालक हैं,
(३९) प्रभु पापों को जीर्ण करने वाले हैं, सब प्रजाओं के पालक हैं,
राक्षसों के आसुर भावनाओं के नाशक हैं। अपने शरीर रूपी घर के रक्षक
जीव ! तू अन्यत्र न भटकता रह, तू महान है, अपनी दिव्यता की रक्षा कर,
अपने इस मिट्टी के घर को पृथक करने वाला बन अर्थात् मोक्ष को समर्थ हो ॥
प्र० १ (१) द० ४।५

(४०) प्रभु समरणधना हैं, सर्वज्ञ हैं, अज्ञान के नाशक हैं और ज्ञान
के दायक हैं। मुझे समर्पण करने वाले के लिए बह्मरूप धन को प्राप्त कराइये।
आप आज ही जागरणशील विद्वानों को प्राप्त कराइये ॥ प्र० १ (१) द ४।६

(४१) सब को बसाने वाले प्रभु ! आप हमें रक्षा के हित से ज्ञान
देते है। आप ज्ञान रूप धन को हमें प्राप्त कराइये, इस धन के तो आप प्रभु ही
रखी हैं अर्थात् वह धन तो केवल आप ही देने वाले हैं, आप हमारी सन्तानों को
भी गम्भीर ज्ञान प्राप्त कराइये ॥ प्र० १ (१) द० ४।१

(४२) प्रभु ! आप ही विस्तार करने वाले, त्राण करने वाले, सत्य
स्वरूप, कान्तदर्शी हैं। आप ज्ञान से दीप्त हैं, ज्ञान ज्योति से जगमगा रहे हैं,
आप को विशेष रूप से ज्ञान के द्वारा अपना कार्य पूर्ण करने वाले मेधावी लोग
ही पूजते हैं। ज्ञानी बन कर स्वकर्म करना ही सच्ची प्रभु भक्ति है ॥ प्र० १
(१) द० ४।८

(४३) प्रभु ! आप हमें ज्ञान धन को चारों ओर से प्राप्त कराइये।
ज्ञान आने बढ़ाने वाले, पवित्र करने वाले, और समीप रह कर मति देने वाले
हैं। आप जीवन को उन्नत करने वाले, प्रशंसा के योग्य, पूर्ण पालन करने वाले,
उत्तम मार्ग पर ले जाने वाले और उत्तम यश के कारण है ॥ प्र० १ (१)
द० ४।९

(४४) जो दाता सब निवास के साधन भूत पदार्थों को देता है, वह
मनुष्यों का आह्लाद करने वाला है। उस परमात्मा के लिये सब से पहले अतिथि
को दिये जाने वाले जल के पात्रों की तरह स्तुति प्राप्त होती है अर्थात् मनुष्य
को प्रतिदिन प्रातः सब से पहले प्रभु स्तुति करनी चाहिए ॥ प्र० १ (१)
द० ४।१०

(४५) तुम सब के प्रभु को मैं इस नम्रता के द्वारा पुकारता हूं, क्योंकि

वह प्रभु शक्ति को गिरने नहीं देता, भक्त का मन प्रसन्नता से भरा रहता है,
उसे ज्ञान प्राप्त कराता है, उसकी विषयों में प्रीति नहीं रहती, वह भक्त हिंसा
शून्य कर्मों में लगा रहता है, क्योंकि प्रभु आसुरी वृत्तियों को भगाने वाला है
और मोक्ष दिलाता है ॥ प्र० १ (१) द० ५।१

(४६) प्रभु विजयशील पुरुषों में, निर्माण करने वालों में, शयन करते
हैं। जो धन व समय का ही नहीं, अपितु अपने प्राणों का भी त्याग करते हैं,
वह ही प्रभु को दीप्त करते है अर्थात् उन में ही प्रभु का प्रकाश होता है। इन
अपने जीवन को हवीरूप बनाने वालों को बिना आलस्य के देने योग्य पदार्थों को
देते हैं और इन देवों में निश्चय से शोभायमान होते हैं ॥ प्र० १ (१)द० ५।२

(४७) प्रभु को हमारी वाणियाँ प्राप्त हों, वह प्रभु उन्नति के मार्ग
में नियमपूर्वक चलने वाले को उत्साहित करने वाला है और समीप में उत्तम
प्रकार से प्राप्त होने वाला है। उस प्रभु की प्राप्ति के लिए व्रतों को धारण
किया जाता है। उस प्रभु को वही देखता है, जो देव मार्ग पर चलने वाला
है ॥ प्र० १ (१) द० ५।३

(४८) इस प्रकार स्तुति करने से प्रभु सामने हो जाता है अर्थात दिव्य
चक्षु से साक्षात हो जाता है। हिंसा रहित यज्ञों (उत्तम कर्मों) में इन्द्रियां रूप
आदि विषयों का ज्ञान देती हैं और खूब वृद्ध होती है। मधुर भाषण से मनुष्य
वरणीय रक्षण को प्राप्त करता है। हे प्राणो ! हे ज्ञान के पति ! हे प्राकृतिक
शक्तियो व विद्वानो ! हमारी रक्षा करो ॥ प्र० १ (१) द० ५।४

(४९) रक्षा के लिये उस प्रभु की गायन के द्वारा स्तुति कर, वह प्रभु
जिसकी ज्ञानाग्नि की ज्वालायें हैं। धन की खूब वर्षा कर, दान दे और धन
प्राप्ति के लिये उस प्रभु की स्तुति कर। हे मनुष्य ! सुन, वह प्रभु दान देने
वाले के लिये आश्रय है, रक्षण स्थान है ॥ प्र० १ (१) द० ५।५

(५०) हे ज्ञान के देने वाले प्रभु ! हे दिव्य गुणों से युक्त स्नेह के
देवता, दान के देवता, हिंसा की भावना से शून्य देव ! मेरे हृदय में विराज-
मान हो जाओ ताकि मैं दिव्य भावनाओं से युक्त हो जाऊं, जो प्रभु के समीप
ले जाने वाली, साथ-साथ चलने वाली और सवेरे-सवेरे प्राप्त करने के योग्य
है ॥ प्र० १ (१) द० ५।६

(५१) जीव पृथ्वी पर रहने के पश्चात् लौट जाता है और मोक्ष सुख में ठहरता है । इसलिये तुम प्रभु के दास बनो, आगे ले जाने वाले, दिव्य गुणों वाले ऐश्वर्यवान प्रभु के समान बनो और उस में लीन हो जाओ ॥ प्र० १ (१) द० ५।७

(५२) हे उत्तम योनि में उत्पन्न हुआ जीव । तू उत्तम कामों को करके सुखी हो, मेरी वेद वाणी द्वारा इस शरीर से बढ़, पृथ्वी के ऊपर तथा विशाल द्युलोक के ऊपर ॥ प्र० १ (१) द० ५।८

(५३) हे जीव ! तू ज्ञान को चाहता हुआ हिंसक कर्मों को प्राप्त हो रहा है, याद रख इस तेरे लौट आने को मैं नहीं क्षमा करता हूं, जो तू बहुत आगे बढ़ने वाला हो कर फिर उन्हीं काम्य कर्मों में रह गया, यह ठीक नहीं है ॥ प्र० १ (१) द० ५।९

(५४) हे जीव ! तुझे तो ज्ञानी प्रभु ने अनेक क्रियाओं को करती हुई प्रजाओं के लिये ज्योति के रूप में रखा था, तू तो चमकता था, मेधावी था, ऋत से पैदा हुआ था, करुणामय था, तुझ को तो सब लोग नमस्कार करते थे । यदि तू लौट पड़े और संसारी बन्धनों में फिर पड़ जाये तो ठीक नहीं ॥ प्र० १ (१) द० ५।१०

(५५) अपने हृदय को दया की भावना से इतना सींचो कि वह दया तुम्हारे हृदय से बाहर प्रवाहित होने लगे और वह दुखियों के पास जाकर उन को सुखी बना दे । इसके बाद प्रभु तुम को अवश्य ही प्राप्त होंगे । वह प्रभु दया की भावना को पूर्ण सींचना चाहते हैं । प्रभु ही धन दाता हैं, इस धन को उस प्रभु की प्रजा के कल्याण में लगा दो ॥ प्र० १ (२) द० ६।१

(५६) ज्ञान का पति प्रभु हमें प्राप्त हो, उत्तम दुःखों को दूर करने वाले दिव्य गुण प्राप्त हों । विद्वान लोग ऐसी व्यवस्था करें कि हमारी जीवन की ओर ऐसी सन्तान प्राप्त हो जो लोकहित करने वाली और सब पंक्तियों के हित करने वाली हो ॥ प्र० १ (२) द० ६।२

(५७) प्रभु दाता की तरह हमारी उत्तम रक्षा के लिये खड़ा है अर्थात् तैयार ही तैयार है । वह शक्ति का देने वाला शक्ति देने को तैयार है । ज्योंही हम ज्ञानी के साथ विशेष रूप से बातें करते हैं और किसी विषय का स्पष्टी-

करण चाहते हैं और आगे बढ़ते हैं तो वह हमारी रक्षा करता है ॥ प्र० १ (२) द० ६।३

(५८) जो मनुष्य धन के लिये औरों को भी ले चलना चाहते हैं, जो प्रभु को आत्म समर्पण करते हैं, जो स्तुतियों द्वारा प्रभु का पूजन करते हैं, जो अपने द्वारा हज़ारों का पोषण करते हैं, उनको वे प्रभु पुत्र देते हैं ॥ प्र० १ (२) द० ६।४

(५९) जो मनुष्य अपना पालन करते हैं, दूसरों के दुःखों को दूर करते हैं, दिव्य गुणों को अपनाने की इच्छा करते हैं, वह प्रभु को ही खूब पुकारते हैं, किसी और की पूजा नहीं करते । इस प्रभु को मधुरता से बोले गए वचनों से पुकारते हैं । इसी प्रभु को दूसरे लोग जप आदि द्वारा दीप्त करने में लगे रहते हैं ॥ प्र० १ (२) द० ६।५

(६०) यह जीव निश्चय से उत्तम वीर्य का ईश है, उत्तमता सौंदर्य का भी ईश है, देने योग्य धन का भी ईश है, उत्तम सन्तान का भी ईश है, गोमानों का ईश होता है और वासनाओं के मारने वालों का भी ईश होता है ॥ प्र० १ (२) द० ६।६

(६१) हे जीव ! तू गृह का पति है, तू हमारे हिंसा रहित कर्मों में आहुति देने वाला है, तू अपने को पवित्र बनाता है, सब का प्यारा बनता है, अपने को यज्ञरूप बना डालता है और मोक्ष को प्राप्त करता है, विद्वान बनता है ॥ प्र० १ (२) द० ६।७

(६२) प्रभु ! तेरा सखा बन कर तुझे वरते हैं, रक्षा के लिये हम मर्य शुभ देव को वरते हैं । आप शक्ति को नष्ट नहीं होने देते, आप सुन्दरता को देते हैं, आप उत्तम कर्मों में प्रेरित करते हैं, अज्ञान को नष्ट करते हैं और पवित्र बनाते हैं । प्र० १ (२) द० ६।८

(६३) सर्वशः आहुति देने वाले बनो, हवी द्वारा अपना मार्जन करो, अपने अन्दर होतृत्व की भावना को गृह पति की भावना को धारण करो, अपनी वाणी से उस प्रभु की पूजा करो जो पवित्र पदार्थों को देने वाला है और सब घरों के साथ संगति करने वाला है ॥ प्र० १ (२) द० ७।१

(६४) प्रशंसनीय ही है वह बच्चा, जो वासनाओं को तैर कर अपना

विकास करता है, गृहस्थ में पालन-पोषण के लिए वह माता-पिता के पीछे नहीं जाता, जो निजू घर के बिना अपने को कर लेता है अर्थात् वानप्रस्थ बन जाता है और फिर सन्यासी बन शीघ्र ही महान दूत के कर्म को करता हुआ वेद ज्ञान को सर्वत्र ले जाता है ।। प्र० १ (२) द० ७।१

(६५) हे जीव ! यह शरीर में होने वाली चमक ! तेरी प्रथम ज्योति है । तेरी इस ज्योति से अधिक उत्कृष्ट मानस ज्योति है । अब तू तीसरी ज्योति के साथ आनन्द लेने वाला बन, यह तृतीय ज्योति मस्तिष्करूप द्युलोक की ज्योति है । इन तीनों ज्योतियों वाला होकर सुन्दर तन वाला हो, इस परम विकास वाला होने पर ही तू विद्वानों में प्रिय होता है ।। प्र० १ (२) द० ७।३

(६६) हम इस स्तुति को प्रशंसनीय प्रभु के लिए बुद्धि से संस्कृत करते हैं, वह प्रभु प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान है, उसके समीप बैठने से हमारी बुद्धि निश्चय से कल्याण वाली शुभ विचारों वाली बनती है । हे प्रभु ! हम तेरी मित्रता में मत हिंसित हों ।। १ (२) द० ७।४

(६७) ज्ञान वाले पुरुष को प्राकृतिक शक्तियाँ विकसित करती हैं, इस को पार्थिव भोगों में प्रेम नहीं रहता, वह लोकहित का जीवन बनाता है, सदा सत्यवादी, प्रगतिशील, क्रान्तदर्शी, नियमित जीवन वाला होकर मनुष्य के सम्पर्क में रहता हुआ सदुपदेशों से उनका कल्याण करता है ।। प्र० १ (२) द० ७।५

(६८) हे प्रभु ! स्तुतियों के द्वारा आप से दिव्य गुण विशेषरूप से प्राप्त होते हैं । जैसे पर्वत पृष्ठ से जल अवतीर्ण हुआ करते हैं, वैसे ही हम उत्तम स्तुतियों से आपको प्राप्त करते हैं । स्तुतियों को धारण करने वाला भक्त घोड़ों की तरह जीत जाता है उस संग्राम का जो देवासुर होता है ।। प्र० ८ (२) द० ७।६

(६९) तुम्हारे हिंसारहित यज्ञों को दीप्त करने वाला प्रभु है, उसने यज्ञों का वेदवाणी द्वारा उपदेश दिया है । यज्ञों को कर सकने के लिये सब साधन भी दिये हैं । वह सत्य का अनुष्ठान करने वाले का आदर करता है । द्युलोक और पृथ्वी लोक के मध्य में सभी सत्य का अनुष्ठान करने वालों का आदर करता है । वह आगे ले जाने वाला है । हमें चाहिये कि आने वाली मृत्यु से पूर्व ही

यत्न करें कि वह प्रभु जो ज्योतिमय है, उसे अपनी रक्षा के लिये जान लें ।। प्र० १ (२) द० ७।७

(७०) आगे जाने वाला भक्त बड़ा नियमित, इन्द्रियों का स्वामी, नम्रता वाला होता हुआ चमकता है, उसके अंग-प्रत्यंग दीप्ति से आहुत होता है । यह भक्त औरों को आगे ले चलने वाला बनता है और तन-मन-धन की आहुतियों से उपासना करता है, बल युक्त होकर उषाकाल के पूर्व ही अपनी कमियों का पश्चाताप करता है ।। प्र० १ (१) द० ७।८

(७१) जो वृद्धि करता हुआ नीरोगता के साथ उत्तम प्रकार से जीवन धारण करता है, वह द्युलोक से पृथ्वी लोक तक सब के लिए सुखों की वर्षा करने वाला होकर खूब उपदेश करता है, ज्ञान के परले सिरों को तथा समीप के सिरों को व्याप्त करता है, अर्थात् विज्ञान और ब्रह्म ज्ञान को अपना कर कर्मों की गोद में आगे-आगे बढ़ता है और पूजनीय होता है ।। प्र० १(२) द० ७।९

(७२) हे मनुष्यो ! तुम ज्ञान और भक्ति की अरणियों की दीप्ति से प्रभु का साक्षात करो, इससे तुम धन को त्यागोगे, उत्तम जीवन बनेगा, दूरदर्शी होगे, घर के मालिक बनोगे और गमनशील बनोगे ।। प्र० १ (२) द० ७।१०

(७३) ब्रह्मचारी ज्ञान रूपी समिधाओं से अग्नि के रूप में प्रबोध किया जाता है, फिर गृहस्थ में उसे मनुष्यों की प्रत्येक आने वाली उषा काल में धेनु के समान होना है, फिर वानप्रस्थ में, जैसे बड़े पक्षी शाखा को छोड़कर आगे चले जाते हैं, घर, बाहर को छोड़ना है और सन्यास में ज्ञान ज्योति से (दीप्त) सूर्य के समान मोक्ष की ओर अग्रसर होना है ।। प्र० १(२) द० ८।१

(७४) प्रभु का कौन प्यारा है ? वह जो अपने प्राणों को विजय करने वाला है, जो अपने हृदय को विशाल बनाता है, जिसकी बुद्धि मेधावी है, जो मूर्खों के साथ मूर्ख नहीं बनता, जो तीनों पुरों में विदारण करने वाला है, जिस की स्तुति वाली और विनय वाली बुद्धि होती है, जो औरों के दुःखों को हरण करता है, जो धन को कमाता है केवल शरीर का कवच बनाने के लिए । [तीन पुरी :—(१) उत्तम (२) मध्यम (३) अधम] ।। प्र० १(२) द० ८।२

(७५) उस प्रभु के प्यारे का चमकता हुआ रूप विलक्षण है, उसका

मेल वाला रूप अजीब है, वह कई प्रकार के रूपों वाला दिनरात के समान, द्युलोक के समान है, वह इन सब धनों को बांट देता है, वह अपना ही धारण कर रहा होता है और पूषन है। हे पूषन ! तेरा यह दान कल्याणकर हो ॥ प्र० १(२) द० ८।३

(७६) हे प्रभु ! तुझे पुकारने के लिए मेरी वाणी सदा सिद्ध हो, अर्थात् मैं तेरी वेद वाणी को समझ सकूँ। वेद वाणी पूरक और पालक कर्मों का उपदेश करती है, ज्ञान देने वाली है। हमारे पुत्र भी सब प्रकार की उन्नति करने वाले हैं। प्रभु ! तेरी अच्छी मति हमारे में सदा बनी रहे ॥ प्र० १(२) द० ८।४

(७७) प्रभु का प्यारा वह बनता है जो हृदय को विशाल करता है, सब का हित करता है, द्युलोक को प्राप्त करने वाला है, वह सब कार्यों को करता हुआ लोगों में रहता है, कर्मों के चक्कर में रहता है, जगत को धारण करने के हेतु इस उत्पन्न जगत में धारित होता है, अन्नों को नियमित करता है, शरीर में उत्तम रत्नों को स्थिर करता है। इस प्रकार प्रभु की उपासना करता है ॥ प्र० १(२) द० ८।५

(७८) प्रभु का प्यारा यह कामना करता है कि मैं जीवन को नियमित बनाऊँ, उदारमन वाला होऊँ, श्रमशील मनुष्यों की प्रसन्नता में प्रसन्न होने वाला बनूँ; इन्द्र की तरह प्रबल शक्ति वाले अच्छे कर्म के द्वारा स्तुति के योग्य होऊँ। इस प्रकार वह मन इन्द्रियों को वश में करे ॥ प्र० १(२) द० ८।६

(७९) प्रभु ज्ञान और भक्ति की अरणियों में रखा हुआ है, प्रभु गर्भिणी माता से उत्तम प्रकार से पोषित गर्भ की तरह ही है। गर्भ जैसे माता के ही रस-रुधिरादि से पोषित होता है, उसी प्रकार प्रभु का दर्शन भी अन्तर ज्ञान व भक्ति के विकास से ही होता है। प्रभु की प्रतिदिन उपासना होनी चाहिए, किन से ? जागने वालों से, हवी रूप बनने वालों से, मननशील बनने वालों से ॥ प्र० १(२) द० ८।७

(८०) प्रभु सदा से राक्षसी वृत्तियों को कुचलते हैं, प्रभु ! आपको मनुष्यों के हृदय में देवासुर संग्रामों वाली अशुभ वृत्तियां नहीं पराजित कर सकीं, आप इन वृत्तियों को जड़ समेत जला दीजिये। आपके प्रकाशमय हनन

साधन से कोई भी अशुभ वृत्ति मत छूटे ॥ प्र० १(२) द० ८।८

(८१) हे आगे ले जाने वाले प्रभु ! हमें ज्ञान रूप धन जो शक्तिशाली बनाने वाला है प्राप्त कराइए, हमें स्तुति धन के लिए ले चलिए और त्याग के लिए मार्ग को तैयार कर दीजिये ॥ प्र० १(२) द० ९।१

(८२) अगर मरने वाला मनुष्य वीर होना चाहे तो प्रभु को अपने अन्दर दीप्त कर ले, अपने जीवन को हवी रूप बना ले और निरन्तर प्रजापत्य यज्ञ में आहुति दे, तब वह प्रकाशमय सुख को अनुभव करेगा ॥ प्र० १(२) द० ९(२)

(८३) हे प्रभु ! तेरी प्रकाशमय दीप्ति चमकते हुए हृदय में काम-क्रोधादि वासनाओं पर आक्रमण करती है, यह दीप्ति उत्तम गतिशील विस्तार वाली है। निश्चय से पवित्र करने वाले प्रभु ! आप ही तो चमकते हैं ज्योति से, शक्ति से। प्रभु को हृदय में प्रतिष्ठित करने से ही ज्योति और शक्ति मिलती है ॥ प्र० १(२) द० ९।३

(८४) हे प्रभु ! आप निश्चय से निवास और गति वाले प्राणों के मालिक हैं जैसा कि सूर्य। हे सर्वद्रष्टा सर्वज्ञ प्रभु ! आप ज्ञान का हमारे अन्दर निवास कराते हो और पुष्टि का भी, आप हमें प्राप्त हो जाइये ॥ प्र० १(२) द० ९।४

(८५) हे मनुष्यो ! प्रातःकाल प्रभु की स्तुति करो, जो पालन और पूरण करने वाला है, जो जीवों के हित के लिए निरन्तर गतिशील है, जिसे न मरने वाले में सब मरने वाले मनुष्य मन को दीप्त करते हैं ॥ प्र० १(२) द० ९।५

(८६) हे ज्ञान को ही धन समझने वाले जीव ! तू जो अत्यन्त चंचल मन है, उसको प्रभु के लिए अर्पित कर, इसे विशाल बना और प्रभु की सच्ची आराधना कर और गृह-पत्नी के समान धनों व अन्नों का विभाजक बन ॥ प्र० १(२) द० ९।६

(८७) वे प्रभु, प्रत्येक प्रजा के अतिथि हैं अर्थात् निरन्तर प्राप्त होने वाले हैं, अन्न देने वाले, पालन करने वाले तथा तृप्त करने वाले हैं, आगे से

जाने वाले, मोक्ष तक पहुँचाने वाले हैं। उस सुख के धाम प्रभु को हम मन के साथ स्तवन करें ॥ प्र० १(२) द० ६१७

(८८) उस स्तुति के योग्य दिव्य गुणों के दाता परमेश्वर के लिये अपने इस जीवन को निश्चय से अर्पित करो। उस प्रभु को करने वाले मनुष्य मित्र की तरह उत्तमता के लिए सामने स्थापित करते हैं॥ प्र० १(२) द० ६१८

(८९) प्रभु काम क्रोधादि को नाश करने वाला है, सबसे महान और उत्साहित करने वाला है। उसे वह ही प्राप्त होता है, जो दीप्त होता है और यह दीप्ति उस मनुष्य में आती है, जो मस्तिष्क को ज्ञान की ज्योति से रोशन करे, जिसकी वाणी सदा स्तुति रूप वचनों को बोले और जो बड़ा बलवान हो॥ प्र० १(२) द० ६१९

(९०) हे जीव! चूँकि तू सर्वोत्कृष्ट धर्म के द्वारा पैदा हुआ है, चूँकि यज्ञों के साथ तूने अपने जीवन को युक्त किया है, इसलिए तुझ ज्ञानी का प्रभु रक्षक ही है। तू सत्य का ही धारण करने वाला हो, निर्माण करने वाला बन और क्रान्तदर्शी ज्ञानी हो॥ प्र० १(२) द० ६११०

(९१) सोम के साथ अपने जीवन को प्रारम्भ कर, नियमितता से, श्रेष्ठता से ऊँचे लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अपने जीवन को चला, दोषों को छोड़, और विशाल मनोवृत्ति वाला होकर सूर्य की भाँति श्रद्धा के साथ ऊँचे शिखर पर पहुँच॥ प्र० १(२) द० १०११

(९२) जो व्यक्ति उत्तम गुणों को धारण करते हैं, इस पृथ्वी पृष्ट से ऊपर चढ़ते हैं, द्युलोक के पृष्ठों पर आरूढ़ होते हैं। प्राणों को धारण करने वाला, अपने मार्ग का उल्लंघन न करने वाला, विषयों से ऊपर उठने वाला व्यक्ति द्युलोक को प्राप्त होता है॥ प्र० १(२) द० १०१२

(९३) हे प्रभु! आपको धन के लिए, महान बनने के लिए, दिल खोलकर दान देने के लिए, हम दीप्त करते हैं। सब धनों की वर्षा करने वाले प्रभु! महान द्युलोक से पृथ्वी लोक तक ऐश्वर्य के होने के लिये हम आपकी स्तुति करते हैं॥ प्र० १(२) द० १०१३

(९४) जो मनुष्यप्रभु का स्मरण 'ब्रह्म' रूप में या 'वे' रूप में करते हैं,

वह प्रभु निश्चय से उनको धारण करता है। जिस प्रकार पहिये के चारों ओर परिधि होती है, और पहिया उसी के कारण स्थिर रहता है, ठीक उसी प्रकार सब ज्ञानों और आनन्दों के चारों ओर वह प्रभु हैं; परिधि हटी कि पहिया टूटा, प्रभु हमसे दूर हुए कि हमारा जीवन नष्ट हुआ॥ प्र० १(२) द० १०१४

(९५) प्रभु क्रोध को हरण करने वाले हैं, मेरे क्रोध को सब ओर से नष्ट कर दीजिये। पीड़ा को दूर करने वाले प्रभु! काम के बल को झुका दीजिए। अपने रक्षण के लिए औरों के क्षय की वृत्ति की शक्ति को भी कुचल दो। प्रभु! काम, क्रोध और लोभ को समाप्त कर रक्षा करो॥ प्र० १(२) द० १०१५

(९६) प्रभु! आप इस मानव जीवन में बसाने वालों, ज्ञान देने वालों, आदित्यों, अपने जीवन को हिंसा-रहित करने वालों, पैदा करने वालों, ज्ञानियों और जो ज्ञान अग्नि से दोषों को जला देते हैं, उनके साथ मेल करते हैं॥ प्र० १(२) द० १०१६

द्वितीय प्रपाठकः

(९७) अपने आपको प्रभु के अर्पण करने वाला मैं आपकी बहुत स्तुति करता हूं। प्रभु! तेरा ही सब ओर से भक्त बनता हूं। आदरणीय प्रेरक के समान जो आप हैं, आप ही की शरण में आता हूं॥ प्र० २(१) द० ११

(९८) प्रभु के लिए स्तुति वचन का अच्छी तरह सम्पादन करो, यह स्तुति वचन पूर्ण तथा पालन करने वाला होगा, वृद्धि करेगा, होता बनाएगा। मेधातिथियों के लिये प्रकाश को धारण करते हुए हम स्तुति वचन को धारण करें॥ प्र० २(१) द० ११२

(९९) प्रभु! प्रशस्त इन्द्रियों वाले बल को हमें दीजिए। आप स्वामी हैं। हे महान प्रभु! हमें सहन शक्ति दीजिए। सर्वज्ञ प्रभु! हमें प्रशंसनीय उत्तम कर्म प्राप्त कराइये॥ प्र० २(१) द० ११३

(१००) प्रभु! आप हिंसा रहित यज्ञ रूप उत्तम कर्मों में सर्वोत्तम संगत करने वाले हैं, दिव्य गुणों की प्राप्ति की इच्छा वाले मुझ में दिव्य गुण प्राप्त कराइये। प्रभु का आदेश : जीव तू दान देने वाला, प्रशंसा वाला,

शोभा वाला, हानि पहुँचाने की भावनाओं से परे हो, तब तू दिव्य गुण प्राप्त कर सकेगा ॥ प्र० २ (१) द० १।४

(१०१) प्रभु सात मञ्जिलों द्वारा जाने जाते हैं (यम, नियम, आसन, प्राणयाम, प्रत्यहार, धारणा, ध्यान) अपने जीवन को श्री सम्पन्न बनाने के लिए मेधा बुद्धि मांगो, वह प्रभु सब प्रकार की सम्पत्तियों का पवित्र स्थान है। वह प्रभु ऐसा ही जाना गया है ॥ प्र० २ (१) द १।५

(१०२) प्रभु! हमें वह विचारशीलता प्राप्त हो जो रक्षा के लिये होती है, जो प्रकाशमय है, अहिंसा का कारण है, सुख करती है, हानि पहुँचाने की वृत्तियों से दूर करती है ॥ प्र० २ (१) द० १।६

(१०३) निश्चय से कामादि पर आक्रमण करने वाले प्रभु की स्तुति कर, सर्वज्ञ प्रभु की पूजा कर, वह प्रभु क्रिया के स्वभाव वाले, सब बुराइयों को दूर करने वाले, सदा ज्योति वाले और पवित्र हैं। प्र० २ (१) द० १।७

(१०४) जो मनुष्य उत्तम विचारों के देने वाले प्रभु के लिये अपने को दे देता है, उस का नाश करने वाला 'काम' अपनी पूरी माया के द्वारा भी उस का मालिक नहीं बन पाता ॥ प्र० २ (१) द० १।८

(१०५) सज्जनों के रक्षक प्रभु! हमारे मार्ग को सरल करिये। इस विघ्न को दूर से दूर फेंकिये जो विघ्न अत्यन्त सुन्दर है, पर भ्रष्ट करने वाला, पाप से मार देने वाला है, जिस का वश करना कठिन है। प्रभु! आप ही इस काम को हम से दूर करें ॥ प्र० २ (१) द० १।९

(१०६) हे वीर रक्षा करने वाले प्रभु! मेरी क्रियामय स्तुति को सुनिये। इन मायावी राक्षसी वृत्तियों को तप के द्वारा भस्म कर डालिये ॥ प्र० २ (१) द० १।१०

(१०७) सब से अधिक दानशील, यज्ञ के स्वामी, सत्य, प्रकाशमय, महान, दिदीप्यमान, कान्ति से युक्त, ज्ञानी परमेश्वर के लिये हम सब लोग परस्पर समीप बैठ कर उत्तम रूप से उसी की स्तुति करें ॥ प्र० २ (१) द० २।११

(१०८) जो मनुष्य प्रभु को प्राप्त कर लेता है, वह शक्ति सम्पन्न हो कर अन्न के उत्पादन और ज्ञान से सब कार्मों को कर के विघ्नों को पार कर जाता है ॥ प्र० २ (१) द० २।१२

(१०९) हे मनुष्य! तू उस प्रभु परम देव की स्तुति कर, उस के गुणों का गान कर, सब विद्वान लोग उस प्रभु को अपना सर्वज्ञ स्वामी स्वीकार करते हैं। वह सब को ज्ञान और शक्ति देता है ॥ प्र० २ (१) द० २।१३

(११०) हे मनुष्य! तू उस देव के प्रति कभी अनादर न कर, वह बहुत आदर योग्य और पूजनीय है, वह सब के अन्दर विराजमान और ज्ञान देने वाला है, वह सब पदार्थों का दाता, उपदेशकर्त्ता और श्रेष्ठ कार्मों को करने वाला है ॥ प्र० २ (१) द० २।१४

(१११) कल्याणकारी भगवान हमारा कल्याण करे; ऐश्वर्यवान परमेश्वर! हमारा दिया हुआ दान हमारा सुखकारी हो, हमारा हिंसारहित यज्ञ कल्याण करे; सुख शान्ति और ऐश्वर्य का देने वाला हो; हमारी स्तुति भी शान्ति देवे ॥ प्र० २ (१) द० २।१५

(११२) हम उस प्रभु का वरण करते हैं जो दानादि करने हारा है, जो देवों का देव है, जो सब कुछ देने हारा है, और जो हमारे यज्ञों को सफल करता है ॥ प्र० २ (१) द० २।१६

(११३) प्रभु! हम उस धन को प्राप्त करें, जो हमारे घर में हर किसी प्रकार के पाप भोगी, चोर और सर्वसाधारण जन के क्रोध के पात्र दुष्ट पुरुष को नष्ट करे ॥ प्र० २ (१) द० २।१७

(११४) मन्यु और न्याययुक्त व्यवस्था के भंग होने पर तीक्ष्ण दण्ड देने वाला, प्रजाओं का पालक प्रभु जब मनुष्यों पर प्रसन्न होता है, वह अग्नि स्वभाव, पापों का दाहक तेजस्वी सब राक्षसों को दूर करता है ॥ प्र० २ (१) द० २।१८

इत्याग्नेयं काण्डम्

सामवेद के पूर्वार्चिक का दूसरा भाग ऐन्द्र काण्ड (इन्द्र का पर्व वा काण्ड) है, अर्थात् इस भाग में विशेष करके इन्द्र का वर्णन है। इन्द्र का अर्थ परमेश्वर (ऐश्वर्यवान प्रभु) है। परन्तु इन्द्र के गौणार्थ देवताविषयक अर्थात् अन्तरिक्षस्थ विद्युद्विशेष भी है। इन्द्र अन्तरिक्ष स्थान देवता है। इसलिये ऐन्द्र काण्ड में इन्द्र के दोनों अर्थ लग सकते हैं :—(१) परमेश्वर (२) विद्युद्विशेष।

द्वितीय अध्याय

ऐन्द्र काण्डम्

(११५) मनुष्यों को योग्य है कि शत्रुविनाशक इन्द्र (अर्थात् परमेश्वर राजा, सूर्य) के लिये उन के गुणों का पालन मिलजुल कर करें ॥ प्र० २ (१) द० ३।१

(११६) प्रभु ! जो आप का अतिशयित आनन्द वा प्रकाश है, उस से हम को भी आनन्दित वा प्रकाशित करें ॥ प्र० २ (१) द० ३।२

(११७) हे वाचा ! यज्ञकुण्ड के समीप प्रभु का वर्णन कर, जिस से यज्ञ की भूमि वेदपाठ के प्रवाह वाली हो और दोनों कान प्रकाशमय हो जावें ॥ प्र० २ (१) द० ३।३

(११८) परमात्मा का उपदेश है कि हे वेद को बगल में रखने वालो ! तुम शिष्य पुत्र आदि सब मिल कर परमेश्वर के स्वरूप का पूरा पूरा वर्णन करो। उस के विज्ञान से फल प्राप्त करो ॥ प्र० २ (१) द० ३।४

(११९) मनुष्यों को वर्षा के निमित्त इन्द्रयाग करना चाहिये । इन्द्र नामक विद्युद्विशेष को यज्ञ भाग द्वारा बलिष्ठ करने से वह मेघ को वर्षाता है ॥ प्र० २ (१) द० ३।५

(१२०) बल ओज: और सह: ये बल के तीन भेद है । परमेश्वर का बल ओज: और सह: सब से अधिक है । यह बल कामनाओं का सींचने वाला सर्वोत्तम है ॥ प्र० २ (१) द० ३।६

(१२१) आकाश में फैलाव करता हुआ यज्ञ जो वृष्टिकर्ता को बढ़ाता है, सो पृथ्वी को सुयुत करता है ॥ प्र० २ (१) द० ३।७

(१२२) तात्पर्य यह है कि यज्ञ से इन्द्र नामक विद्युद्विशेष का ऐश्वर्य आकाश में बढ़ता है और उस से पृथ्वी का ऐश्वर्य बढ़ता है और यज्ञकर्ता उससे गवादि धन और पृथ्वी के मित्र बनते हैं ॥ प्र० २ (१) द० ३।८

(१२३) सोम एक राजा औषधि है, जिस से भले प्रकार सम्पादन करके होम करने से वृष्टिहेतु और राजादि क्षत्रियवर्ग का प्राप्त करने से रक्षा भी श्रेष्ठ प्रकार प्राप्त करनी चाहिये ॥ प्र० २ (१) द० ३।९

(१२४) हे बसाने वाले इन्द्र ! यह सम्पादित सोम वाला अन्न तेरे लिये देते हैं, उसे तुम भर पेट छको, अर्थात् यज्ञ द्वारा अन्तरिक्ष में पहुँचाते हैं ॥ प्र० २ (१) द० ३।१०

(१२५) इन्द्र अर्थात् देव विशेष को सूर्य और राजा को परमात्मा ही प्रकाशित और अभ्युदित करता है ॥ प्र० २ (१) ४।१

(१२६) परमात्मा और सूर्य के प्रकाश से समस्त ब्रह्माण्डवर्ती पदार्थ प्रकाशित हैं इसलिये वे सब उसके धारण और आकर्षण से तदधीन हैं ॥ प्र० २ (१) ४।२

(१२७) मनुष्यों को योग्य है कि जो बली इन्द्र उन मनुष्यादि को भी जो दूरवर्त्ती हैं, वा अज्ञान में डूबे होने से दूर हैं, वश में ले आता है और कृपा करके उपासक बना लेता है, उसको अपना मित्र बनावें ॥ प्र० २ (१) द० ४।३

(१२८) प्रभु की कृपा से काम, क्रोधादि शत्रुगण प्रथम तो इन पर आक्रमण ही नहीं कर सकते । यदि करें भी, तो परमात्मा की सहायता से ध्वस्त कर सकते हैं ॥ प्र० २ (१) द० ४।४

(१२९) परमेश्वर की कृपा और सहायता की अपेक्षा करते हुए राजा को प्रजा की रक्षा के लिये पुष्कल धन तथा सेना भरती करनी चाहिये ॥ प्र० २ (१) द० ४।५

(१३०) जहाँ अल्प वा महान संग्राम हो, वहाँ प्रजा को योग्य है कि दुष्ट शत्रुओं के निवारक परमात्मा वा राजा को पुकार करें ॥ प्र० २ (१) द० ४।६

(१३१) सोमादि वृक्ष वनस्पति जब तक कच्चे रहते हैं, तब तक तो इन्द्र उनका रस बढ़ाता है, और जब पक कर, पीले हो जाते हैं, तब उन का रस खींच लेता है वा पी लेता है। उसी से वर्षा होती है । राजा भी पका हुआ सोम रस पान करके, उसके बल से पुरुषार्थ करे ॥ प्र० २ (१) द० ४।७

(१३२) परमैश्वर्य वाले इन्द्र ! हम तेरा यजन चाहते हैं और सब ओर से तेरा वर्णन करते हैं। कामनाओं के वर्धक ! हम को प्राप्त हो और जान ॥ प्र० २ (१) द० ४।८

(१३३) जो लोग याज्ञिक हैं, वे बीच में अग्नि मिलगा कर चारों ओर आसन बिछा कर इन्द्रयाग करते हैं जिस से वृष्टिकर्त्ता उन के अनुकूल होकर बरसता है ॥ प्र० २ (१) द० ४।९

(१३४) राजा का धर्म है कि सज्जनों की रक्षा के लिये दुष्टों की सेनाओं का छेदन, भेदन, शत्रुओं का नाश, और धन को लेकर न्याय कार्य्य में लगावे ॥ प्र० २ (१) द० ४।१०

(१३५) जब हम दो आपस में वार्त्तालाप करते हैं, तो अपने से भिन्न देशवर्त्ती दूसरे का शब्द हम को ऐसे सुनाई देता है जैसे कोई कान से कान लगा कर कहे। इस से जाना जाता है कि इस बोलने और सुनने का आश्चर्यजनक मार्ग की डोर वायु के हाथों में है अर्थात् वायु के आधीन बोलना और सुनना है ॥ प्र० २ (१) द० ५।२

(१३६) वायु इन्द्र के मित्र हैं, वे सोम की लताओं में से दोष कर, और हवन किये हुए सोमों को ले कर इन्द्र को ऐसे उपस्थित होते हैं, जैसे पशु के पोषण करने वाले घास आदि उत्तम चारा लेकर गवादि को उपस्थित होते हैं ॥ प्र० २ (१) द० ५।२

(१३७) परमेश्वर का तेज सब तेजों को दबाने वाला सर्वोपरि है, इसलिये सब लोग उसके सामने नम्र हो जाते हैं ॥ प्र० २ (१) द० ५।३

(१३८) इन्द्र वायु जलादि देवताओं की जो बड़ी रक्षा है, उसको हम लोग बचने के लिये स्वीकार करते हैं ॥ २ (१) द० ५।४

(१३९) प्रभु ! मैं दो मेधावी विद्वानों का पुत्र हूं, उस मुझको सब प्रकार की सोमौषधियों का सुन्दर बनाने वाला कीजिये ॥ प्र० २ (१) द० ५।५

(१४०) प्रभु हमारी इस प्रर्थना को सुन कर हमारे मन में ज्ञान दे, जिस से हम सोमों के अच्छे बनाने वाले हो जावें ॥ प्र० २ (१) द० ५।६

(१४१) परमेश्वर ! अब हमारे लिये सुसन्तानयुक्त शोभन धन दीजिये, और दारिद्रय को दूर कीजिये ॥ प्र० २ (१) द० ५।७

(१४२) इस मन्त्र में दो प्रश्न हैं (१) इन्द्र का स्थान कहां है और (२) किस प्रकार विद्वान यज्ञ करें। उत्तर अगले मन्त्र में है ॥ प्र० २ (१) द० ५।८

(१४३) मेघों के प्रान्त और नदियों के संगम में इन्द्र का स्थान है। जो बुद्धि से प्रसिद्ध होता है, वह इस इन्द्र का यजन करता है ॥ प्र० २ (१) द० ५।९

(१४४) मनुष्यादि के राजा, स्तुतियोग्य नायक, मनुष्यों को न्याय व्यवस्था में रखने वाले, भारी दाता, परमेश्वर को वेदवाणियों से वर्णित करो ॥ प्र० २(१) द० ५।१०

(१४५) शीघ्रगामी इन्द्र चतुर होता के यव के साथ पकाये भोज्य मिले सोम का पान करता है अर्थात् यज्ञकर्त्ता के दिए हुए यवमिश्रित सोम औषधि को इन्द्र पान करता है ॥ प्र० २(२) द० ६।१

(१४६) जिस में गुण अधिक होता है, उसकी प्रशंसा में वाणी ऐसे पहुँच जाती है जैसे दुधालु गायें चारों ओर जंगल में विचरती हुई सायंकाल प्यारे बछड़ों ही के पास आती हैं ॥ प्र० २(२) द० ६।२

(१४७) परमेश्वर का उपदेश है कि हे मनुष्यो! सूर्य की किरण चन्द्रमा को प्रकाशित करती है। यह जानो तथा मानो ॥ प्र० २(२) द० ६।३

(१४८) जब कि अत्यन्त वर्षा का कर्त्ता इन्द्र भारी मूसलाधार जल वर्षाता है, तब सूर्य की पुष्टिकारक किरण वृक्ष वनस्पति आदि का पोषण करने में सहकारी होती हैं, वही किरण शुष्क होने में नाश करती हैं और वर्षा में मिल कर पुष्टि करने से पूषा देवता कहाती हैं ॥ द० ६।४

(१४९) जब इन्द्र और पूषा वर्षा और पुष्टि करते हैं, तब पृथ्वी वायुओं को साथ घुमाती हुई उस वृष्टि पुष्टि को धारती है और उस से अन्न होता है ॥ प्र० २(२) द० ६।५

(१५०) आनन्दों के पति परमात्मा ! हम में से आप के स्तोता को व्यापक गुणों से प्राप्त होइये ।। प्र० २(२) द० ६।६

(१५१) हे मनुष्यो ! यज्ञ में बल से वृष्टिदेव को बढ़ाते हुए तुम मन चाही आहुतियाँ छोड़ो, तब यज्ञान्त स्नान की ओर प्राप्त हो ।। प्र० २(२) द० ६।७

(१५२) जो मनुष्य पिता परमात्मा से सत्यवेद विद्या का ग्रहण करते हैं, वे ही सूर्यवत संसार भर को ज्ञान से प्रकाशित करते हैं ।। प्र० २(-)द० ६।८

(१५३) परमेश्वर के प्रसन्न रहने तथा अनुकूल रहने पर सब प्रजा को उत्तम धनधान्य शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक बल की प्राप्ति हो, जिस से हम लोग आनन्द में रहें ।। प्र० २(२) द० ६।९

(१५४) सब देवताओं में पुष्टिकर्ता सूर्य और चन्द्रमा चेताते हैं और समस्त पृथिव्यादि लोकों के हितकारक हैं ।। प्र० २(२) द० ६।१०

(१५५) हे मनुष्यो ! तुम्हारे भोजनादि की रक्षा करते हुए सर्वोपरि विराजमान अनन्तकर्मा वा अनन्तज्ञानी पुरुषों के पूजनीय परमेश्वर को गाओ ।। प्र० २(१) द० ७।१

(१५६) मित्रो ! तुम हरणशील और व्यापक गुणों वाले सौम्य भक्तों के रक्षक परमेश्वर के लिए श्रेष्ठ गान करो ।। प्र० २(२) द० ७।२

(१५७) हे परमेश्वर ! मित्र मेधावी लोग तेरा वेद मन्त्रों से पूजन करते हैं और तुझे चाहते हुए अनन्य भक्त हम भी तुझे ही पूजते हैं ।। द० ७।३

(१५८) स्तुतिकर्ता लोग पूजनीय परमेश्वर की स्तुति करें और हमारी वाणियाँ हर्षशील इन्द्र के लिए सम्पादित सोम को सर्वतः वर्णित करें ।। प्र० २(२) द० ७।४

(१५९) जब मनुष्य वृष्टि के हेतु, सोम को तैयार करें, तब प्रथम परमेश्वर की स्तुति करके फिर अग्नि में सोम का हवन करें, जिससे इन्द्र नामक अग्नि दौड़ आवे और उसे शोषण कर वर्षा का हेतु हो ।। प्र० २(२) द० ७।५

(१६०) जैसे गाय दुहने वाले के लिये प्रतिदिन दुधारु गौ को उपस्थित करते हैं, जिस से वह दूध दुहकर हमें देवे, उसी प्रकार अकाल अवर्षणादि से रक्षित रहने के लिए इन्द्र के निमित सोम उपस्थित करना चाहिए जिस से

वह जल वर्षा कर सुवर्ष करे ।। प्र० २(२) द० ७।६

(१६१) इन्द्र वर्षा करता है । इसलिए उसकी तृप्ति अर्थात् वृद्धि पुष्टि के लिए सम्पन्न होने पर सोम का हवन करना चाहिए ।। प्र० २(२)द० ७।७

(१६२) यजकर्ता को योग्य है कि चमू नामक पात्रों में प्रथम सोम का अभिषव करें, फिर चमस नामक पात्रों द्वारा इन्द्रादि देवों वा राजा आदि के लिए दें, और वे उसे शीघ्र पान करते हैं वा करें । क्योंकि वे ही औषधि वर्ग के अधिष्ठाता है । उनके अनुकूल्य से उनकी उत्पत्ति आदि का व्यवहार अच्छा बनता है ।। प्र० २(२) द० ७।८

(१६३) मनुष्यों को परस्पर मित्र होना चाहिए तथा योगानुष्ठान के शत्रु काम क्रोधादि से बचने को परमात्मा, और लौकिक कार्यों के शत्रु दस्यु आदि से लड़ाई के समय राजा की सहायता ग्रहण करनी चाहिए ।। प्र० २(२) द० ७।९

(१६४) हे मित्रो! स्तुति का प्रवाह चलाते हुए आओ, आओ, बैठो और परमेश्वर का कीर्त्तन करो ।। प्र० २(२) द० ७।१०

(१६५) मनुष्यों को योग्य है कि राजा के लिए सोम रस सिद्ध करके अर्पित करें, और राजा उस का पान करे और प्रजा को जीविका तथा रक्षा का दान करे ।। प्र० २(२) द० ८।१

(१६६) राजा को उचित है कि वह महान, बलवान, शस्त्र-अस्त्र वाला और न्याय प्रकाश वाला हो ।। प्र० २(२) द० ८।२

(१६७) हे राजन! तू आजानुबाहु अर्थात् बड़े हाथों वाला, अपने दाहिने हाथ से हमारे भोजनीय अन्न से युक्त, विविध न्यायोपार्जित धन का संग्रह कर ।। प्र० २(२) द० ८।३

(१६८) हे मनुष्यो! राजा सज्जनों का तथा सब प्राणियों का रक्षक है और सत्य न्याय का पुत्र अर्थात् सन्तान के समान सेवक है । तुम वाणी से उस की प्रशंसा करो, परन्तु जैसा जानते हो वैसा ही (खुशामद नहीं) ।। प्र० २(२) द० ८।४

(१६९) हे राजन ! किस रीति से तू हमारा मित्र होवे ? उत्तर, रक्षा से । किस कर्म से वा वृत्ति से विचित्र गुण कर्म स्वभाव होवे ? उत्तर, प्रज्ञा-

युक्त से। इस प्रकार सर्वदा बुद्धि युक्त होवे ॥ प्र० २(२) द० ८।५

(१७०) हे मित्र ! तू रक्षा के लिए उस राजा को बुलाओ जो राजा सब प्रकार से स्तुति किया जाता है ॥ प्र० २(२) द० ८।६

(१७१) जो मनुष्य परमात्मा की उपासना करते है, वे तथा जो सभापति राजा का निर्वाचन करते हैं, वे उत्तम बुद्धि बल आरोग्यादि द्वारा सुख को प्राप्त होते हैं ॥ प्र० २(२) द० ८।७

(१७२) परमात्मा वा सूर्य कृत प्रेरणा से वायु बहता है, जिससे भूमंडल के निवासी एक दूसरे का शब्द सुनते हैं ॥ प्र० २(२) द० ८।८

(१७३) परमेश्वर ! हमारे लिए अच्छे-अच्छे अन्न और रस को प्राप्त कराइये, जिस से हम को सुख हो ॥ प्र० २(२) द० ८।९

(१७४) हे परमात्मा ! यह सोम सिद्ध है, स्वयं प्रकाश, वायु वा प्राण इस सोम को पान करें और दिन रात्रि वा द्यौ और पृथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा सब पान करें ॥ प्र० २(२) द० ८।१०

(१७५) अच्छे शुभ कर्मों को चाहने वाले और पुरुषार्थ करने वाले पुरुष हृदय में साक्षात हुए परमेश्वर की उपासना करते हैं ॥ प्र० २(२) द० ९।१

(१७६) उपासक लोग हिंसा न करें, अज्ञानयुक्त हों तो भी किसी की हिंसा न करें, और वेदोक्त कर्मों का अनुष्ठान सदैव करें ॥ प्र० २(२) द० ९।२

(१७७) साम के गान करने वाले, अथर्व वेद के ज्ञाता, प्रकाशयुक्त ज्ञान वाले ब्राह्मण ! तू जब रात्रि आवे तब सर्वोत्पादक परमात्मा की स्तुति कर ॥ प्र० २(२) द० ९।३

(१७८) वही नवीन प्यारी, पीली रोशनी द्यौलोक से फैलती है अर्थात् प्रातः हो गया है। इसलिए हे पढ़ने-पढ़ाने वालो ! तुम बहुतायत से परमात्मा की स्तुति करो ॥ प्र० २(२) द० ९।४

(१७९) आत्मा ध्यान द्वारा प्राप्त करने योग्य परमात्मा की तमो नाशक शक्तियों द्वारा किसी से भी पराजित न होकर ८१० ज्ञान के आवरण करने वाले विघ्नों को नाश करता है। प्रकृति के तीन गुण सत्व, रजस्, तमस् तीन कालों के भेद से नौ प्रकार की हुई। प्रभाव, उत्साह और मन्त्र तीन शक्तियों के भेद से सत्ताईस प्रकार की हुई। फिर सत्विक आदि तीन गुणों के सम विषम होने से ८१ प्रकार की, दस दिशाओं के भेद से ८१० प्रकार की हो जाती है। इतनी प्रकार की शक्तियों से वह इतनी ही व्युत्थानः वृत्तियों पर विजय करता है ॥ प्र० २(२) द० ९।५

(१८०) राजा को योग्य है कि सोम में पके अन्न खा कर बलवान हृष्टपुष्ट शत्रु दमन कर्त्ता हो ॥ प्र० २(२) द० ९।६

(१८१) हे राजन बड़ी रक्षा आदिकों सहित बड़े आप हमारा ऋद्धि को प्राप्त कराइए और हमको प्राप्त होइए ॥ प्र० २(२) द० ९।७

(१८२) जब परमात्मा और पूर्ण बलिष्ठ राजा न्याय परायणता से प्रजा की रक्षा के लिए अपने बल का प्रकाश करते हैं, तब द्युलोक और पृथ्वी लोक चर्म (ढाल) के समान बचाने वाले बन जाते हैं अर्थात् पृथ्वी कोई बाधा नहीं डालती ॥ प्र० २ (२) द० ९।८

(१८३) कबूतर स्वाभाविक अत्यन्त कामी होता है। जैसा कबूतर को कबूतरी में अत्यन्त अनुराग होता है, वैसे ही न्याय परायण राजा में प्रजा को अत्यन्त अनुराग होना चाहिये, तब राजा अवश्य पुकार सुनता है ॥ प्र० २(२) द० ९।९

(१८४) राजा के सुप्रबन्ध और परमात्मा की कृपा से वायु की शुद्धि द्वारा मनुष्यों को औषधि तुल्य वायु सेवन करने से बल, नीरोगता, दीर्घ आयुष्मतः और सुख प्राप्त होता है ॥ प्र० २ (२) द० ९।१०

(१८५) हे परमात्मन! जिस जन की महा ज्ञानी वरणीय सुहृद न्यायकारी रक्षा करते हैं, वह जन नहीं मारा जाता ॥ प्र० २ (२) द० १०।१

(१८६) मनुष्यों को परमात्मा की सेवा भक्ति से गौ, घोड़े, रथ, धन धान्य आदि सर्व सुख भोग की इच्छा पूरी करनी चाहिये ॥ प्र० २(२) द० १०।२

(१८७) परमेश्वर ! तेरी रची हुई यह जल को बढ़ाने वाली किरणें इस टपकने वाले जल को बरसाती हैं ॥ प्र० २(२) द० १०।३

(१८८) जब परमात्मन प्रत्येक सौम्य पुरुष पर कृपा करते हुए साक्षात

होते हैं, तब वह बुद्धि और गौ आदि धन की इच्छा से भरपूर होता है ॥ प्र० २(१) द० १०।४

(१८९) हे परमात्मन! हमारी ज्ञान युक्त वाणी पवित्र उपदेशकों और अन्न आदि से युक्त हो तथा शुद्ध कर्म वा प्रज्ञा के साथ बताने वाली अग्नि होत्र आदि यज्ञ को चाहने वाली हो ॥ २(२) द० १०।५

(१९०) परमात्मा ऐसी कृपा करे कि वृष्टिकारक विद्युत सोम से तृप्त अर्थात् पूर्ण आप्यायित हो, जिससे वह वृष्टि द्वारा धन आदि का वर्धक हो ॥ प्र० २(२) द० १०।६

(१९१) यज्ञ कर्ता जब सोम रस तैयार करके यज्ञ में होम करते हैं तो इन्द्र नाम विद्युत उसे सब ओर से आकर शोषण करता है, तब उत्तम वर्षा होती है ॥ प्र० २(२) द० १०।७

(१९२) हे परमात्मन ! मित्र, वरणीय और न्यायकारी, इन तीनों विशेषणों वाले पूज्य ईश्वर की हुई बड़ी प्रदीप्त, जिसे कोई न दबा सके, ऐसी रक्षा हो ॥ प्र० २(२) द० १०।८

(१९३) मनुष्य आदि के अधिष्ठाता, उत्तम नेता, मार्गदर्शक परमात्मन ! हम लोग आप समान स्वामी के ही हैं ॥ प्र० २(२) द० १०।९

तृतीय प्रपाठकः

(१९४) चराचर के गृहीता सूर्य आदि वाले सौम्य उपासक लोग आपको ही प्रसन्न करें, विद्यादि धन दीजिए । वेद-शास्त्रादि के शत्रुओं को दूर कीजिये ॥ प्र० ३(१) द० ११।१

(१९५) हे वाणी से भजनीय परमात्मन ! हमारे मध्य में स्तोता की रक्षा कीजिए । मधुर आनन्द की धाराओं से आप सरोमन हैं, जल अन्न व धन सब आपका ही है ॥ प्र० ३(१) द० ११।२

(१९६) जो पुरुष परमेश्वर को निर्भय प्रकाशक जानकर भक्ति से उसका वरण करते हैं, उनके हृदय में सदा समीपता से वर्तमान परमेश्वर उनको अपने समीप उत्कर्षित करता है, मोक्ष देता है ॥ प्र० ३(१) द० ११।३

(१९७) परमात्मन मन की वृत्तियाँ आप में लगें जैसे नदियाँ समुद्र को । आप से कोई बढ़कर नहीं है ॥ प्र० ३(१) द० ११।४

(१९८) साम के गाने वाले उद्गाता लोग परमेश्वर की ही बहुत स्तुति करते हैं । मन्त्र वाले होता लोग परमेश्वर की ऋग्वेद मन्त्रों से स्तुति करते हैं । शेष अध्वर्यु लोग परमेश्वर की यजुर्वेद की वाणियों से स्तुति करते हैं ॥ प्र० ३(१) द० ११।५

(१९९) दयालु परमात्मा शरीर के पोषणार्थ अन्नादि और आत्मा के पोषणार्थ अपना ज्ञान देवें । यही प्रार्थना है ॥ प्र० ३(१) द० ११।६

(२००) परमात्मा कृपा करके मुमुक्षु के संसरण भय को दूर करता और ज्ञान से मुक्ति देता है । सूर्य भी अन्धकार भय को हटा कर सब को दिखाता है और अपनी परिधि में स्थिर है ॥ प्र० ३(१) द० ११।७

(२०१) जैसे गौवें प्यार के वशीभूत हुई जंगल में जहाँ-तहाँ घूम कर जब दूध देने का समय आता है, तब-तब बछड़े के ही समीप पहुँचती है, उसी प्रकार अनन्त आनन्द का सागर होने से प्रीतिपात्र परमात्मा को प्रत्येक मनुष्य की वाणी पुकारने लगती है जब-जब कि वह एकान्त बैठ, राग-द्वेष आदि छोड़ हृदय में सौम्य शान्त भाव उत्पन्न करता है ॥ प्र० ३(१) द० ११।८

(२०२) हम धन, अन्न और बल के दान के लिए, कल्याण के लिए और मित्रता के लिए ऐश्वर्यवान और पुष्टिकर्ता को सत्कृत करें ॥ प्र० ३(१) द० ११।९

(२०३) हे परमैश्वर्य वाले ! तुझ से श्रेष्ठ कुछ नहीं, न तुझ से बड़ा है । मेघविनाशक के समान अविद्यादि नाशक ! जैसे कि तू उपकार करता है वैसे अन्य कोई नहीं ॥ प्र० ३(१) द० ११।१०

(२०४) हे मनुष्यो ! तुम्हारे मनुष्यों के तारने वाले गवादि पशुयुक्त अन्न-धन के प्रेरक एक रस की ही स्तुति करें वा करो ॥ प्र० ३(१) द० २।१

(२०५) परमेश्वर ! आप को वेद वाणी को मैं साथ सेवन करता हुआ वर्णन करता हूँ । वे वेदवाणियाँ आप को उच्च भाव से प्राप्त कराती हैं, जो कि आप धर्मार्थ काम-मोक्ष के बतलाने वाले और पालन कर्त्ता है, उन को ॥ प्र० ३ (१) द० २।२

(२०६) निश्चय जिस की द्रोहरहित वायु या विद्वान लोग रक्षा करते हैं, जिस मनुष्य की परमात्मा वा न्यायकारी सुहृद रक्षा करता है, वह मनुष्य प्रशंसित है ॥ प्र० ३(१) द० २।३

(२०७) परमेश्वर ! जो धन बल पुरुषार्थ में है और जो धन स्थिर वस्तुओं में है, और जो धन मेघादि में है, वह प्राप्त कराइए ।। प्र० ३(१) द० २।४

(२०८) तुम मनुष्यों के बड़े धन के लिए दुष्टदमन विख्यात बल को उच्च भाव से आक्षिप देता हूँ ।। प्र० ३(१) द० २।५

(२०९) हे परमेश्वर ! आप सर्वशक्तिमान और अनन्त सामर्थ्य युक्त है। आप ही अपने तुल्य है। हम को ऐसा सामर्थ्य दीजिए जिस से आप के यश और ध्यान में तत्पर होकर मोक्ष को प्राप्त हों ।। प्र० ३(१) द० २।६

(२१०) जो मनुष्य प्रातःकाल उठ कर खील दधि सत्तु परोडाश (यज्ञार्थ पाक विशेष) पूड़े आदि उत्तम सात्विक पदार्थों से यज्ञ करते हैं, उनसे परमेश्वर प्रसन्न होता है ।। प्र० ३(१) द० २।७

(२११) परमेश्वर जलों की वृद्धि के सहित वर्तमान जल को न छोड़ने वाले मेघ को छिन्न करता है, जब कि समस्त स्पर्धा करने वाली सेना के समान मेघ की पंक्तियों को जीतता है ।।

पूर्व मन्त्र में जिसे यज्ञ का फल इस मन्त्र में वर्षा होना कहा गया है ।। प्र० ३(१) द० २।८

(२१२) हे परमात्मन ! हम मुमुक्षु और आप के जिज्ञासुओं ने यथा शक्ति अपने अपने मन अन्तःकरण शुद्ध किये हैं और करेंगे। इसलिए हम पर प्रसन्न होइये ।। प्र० ३(१) द० २।९

(२१३) प्रकाशघन परमेश्वर ! आप के लिए हम ने मन शुद्ध किए हैं और हृदय भूमि रूप आसन बिछाया है। परमैश्वर्यवन ! उपासकों के लिये सुख दीजिए ।। प्र० ३ (१) द० २।१०

(२१४) जैसे अन्न रस आदि देहपुष्टि के लिए कृषक लोग खेत को जल से सींचते हैं, उसी प्रकार आत्मा की पुष्टि के लिए पूजनीय अनन्त ज्ञान या कर्म वाले परमात्मा से हम को हृदय सींचने चाहियें। इसलिए परमात्मा ने मनुष्यों के हृदय को आत्मज्ञान का खेत बनाया है ।। प्र० ३(१) द० ३।१

(२१५) इसलिए ही हे परमेश्वर ! आप अनन्त बलयुक्त और

अनन्त आत्मिक अन्नयुक्त आनन्द रूपी रस के साथ हम को प्राप्त होइये ।। प्र० ३ (१) द० ३।२

(२१६) क्षत्रिय को योग्य है कि धनुर्वेद में निष्णात हो कर, धनुष्बान ले, प्रजा से विविध प्रकार पूछें कि उन्हें कौन उपद्रवी और विख्यात दस्यु जान पड़ते हैं ।। प्र० ३(१) द० ३।३

(२१७) तब प्रजा कहे कि हे राजन ! हम तो बड़े प्रशंसा योग्य प्रलम्बबाहु रक्षा के लिए साधन रूप धन को कर रूप में कमाने वाले आप को ही पुकार करती हैं ।। प्र० ३(१) द० ३।४

(२१८) फिर प्रजा इस प्रकार प्रार्थना करे कि सहर्ष वरण योग्य, मित्रता से वर्तने वाले, हमारी अवस्था के जानने वाले, न्याय करने वाले, और विद्वान मन्त्रियों से प्रीति रखने वाले आप हम को सरल नीति से शासित कीजिए ।। प्र० ३(१) द० ३।५

(२१९) सूर्य जैसे पदार्थों को दूर से ही समीप के तुल्य प्रकाशित करता है, वैसे ही हे राजन ! आप न्याय के प्रकाश को विस्तृत करें ।। प्र० ३(१) द० ३।६

(२२०) हे राजन ! मानुष प्रबन्ध से सुख देने के अतिरिक्त वरुण और मित्र का यज्ञप्रबन्ध कीजिए, जिससे पृथ्वी तल पर भली प्रकार वर्षा हो ।। प्र० ३(१) द० ३।७

(२२१) हे राजन ! यज्ञों का ऐसा प्रचार हो कि स्वाहान्त मन्त्रों की ध्वनि दिशाओं में व्याप जावे। जैसे बालक घुटनों के बल रबकते हैं ।। प्र० ३ (१) द० ३।८

(२२२) भले प्रकार अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में फैले और अपने अदृश्य स्वरूप को जगत के प्रत्येक परमाणु में पहुँचावे ।। प्र० ३(१) द० ३।९

(२२३) हे राजन ! तू वैमनस्य से रस खींचने वाले को त्याग दे, किन्तु अच्छा सोम खींचने वाले को पास रख, और अच्छे के संपादित सोम को देने पर पी ।। प्र० ३ (१) द० ४।१

(२२४) बड़े ज्ञानी राजा के लिए पूर्वमन्त्रोक्त वचन क्यों कहा जाता है ? उत्तर—क्योंकि वह वचन का वृद्धिकारक ही है ॥ प्र० ३(१) द० ४।२

(२२५) राजा स्पष्ट-वक्ता के कहे हुए स्तोत्र को और गाए हुए गायत्र नाम साम को न समझे सो नहीं किन्तु समझे ही ॥ प्र० ३(१) द० ४।३

(२२६) राजा अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट और बल अर्थात् सेनाओं का सेनापति घोड़े आदि का रखने वाला और पुत्र तुल्य प्रजाजनों का मित्र तुल्य सहायक प्रशंसा वचनों के साथ होवे ॥ प्र० ३(१) द० ४।४

(२२७) हे राजन ! युवती स्त्री वाले आप सेना बल के सहित वर्तमान हमको प्राप्त हूजिये, हमारी पुकार सुनिये, किसको कौन कहे ? पुत्र को पिता आदि बड़ों के समान । क्रोध न कीजिए ॥ प्र० ३(१) द० ४।५

(२२८) हे निवास करने वाले राजन् ! यदि कभी वर्षा का जल रुक जावे अर्थात् अनावृष्टि हो जावे तो जल के लिए नहर से वेद के चाहने वाले बड़े पुत्र तुल्य प्रजाजनों को रक्षित करो ॥ प्र० ३(१) द० ४।६

(२२९) हे राजन ! आप ज्ञानी ब्रह्मवेत्ता के द्वारा ऋतुओं के अनुसार औषधि विशेष को पीजिए । आपकी यह मित्रता अविच्छिन्न हो ॥ प्र० ३(१) द० ४।७

(२३०) वाणी से प्रशंसनीय राजन ! आप सोम के पीने व रक्षा करने वाले हैं और हम प्रजाजन आपके सत्कार करने वाले है । इसलिये आप भी हमको प्रसन्न रखिये ॥ प्र० ३(१) द० ४।८

(२३१) हे राजन ! व परमेश्वर ! किन्हीं सेना संग्रामों वा योग क्रियाओं में हमारे देहों में पुरुषार्थ युक्त बल वा योगबल को आधान कीजिए । क्योंकि आप सर्वदा बल से विजयी हैं ॥ प्र० ३(१) द० ४।९

(२३२) हे राजन ! आप वीरों को चाहने वाले निश्चय हैं । आप शूरवीर निश्चय है । आप दृढ़ भी हैं । अतः आपका हृदय प्रशंसा योग्य है ॥ प्र० ३(१) द० ४।१०

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

तृतीयो अध्याय

(२३३) विक्रमी परमेश्वर ! इस जंगम के प्रभु, और स्थावर के भी प्रभु, सूर्य को भी प्रकाशित करने वाले, आपको बिना दुही गौवों के समान अर्थात् जैसे बिना दुही गौवें बाल में दुग्ध भरा होने से नीहड़ी रहती हैं, ऐसे ही भक्ति से नम्र हुए हम लोग सर्वथा अत्यन्त नमस्कार करते हैं ॥ प्र० ३(१) द० ५।१

(२३४) जिस प्रकार सब दिशाओं में सज्जनों के रक्षक आप परमात्मन को, शत्रुओं की भीड़ पड़ने पर, बल प्राप्त करने के लिये, वीर पुरुष पुकारते हैं, इसी प्रकार हे भगवन ! हम भक्तजन भी काम आदि शत्रुगण की भीड़ में उनको परास्त करने के लिए बल का दान आप से मांगते हैं ॥ प्र० ३(१) द० ५।२

(२३५) जो विद्या आदि बहुत धनवाला परमेश्वर तुम स्तोताओं के लिये अनेक प्रकार से देता है, उस सुन्दर, विद्या आदि धन वाले परमात्मा को जिस प्रकार जानता हूँ, उस प्रकार सर्वतः अत्यन्त पूजता हूं ॥ प्र० ३(१) द० ५।३

(२३६) हे उपासको ! तुम्हारे काम आदि शत्रुओं के तिरस्कार करने वाले, उनका क्षय करने वाले, उस परमेश्वर को वेद-मन्त्रों से हम सर्वथा स्तुत करते हैं, पुकारते हैं, जैसे गौवें गऊगृहों में वासहेतु अन्न से मोदमान हृष्ट-पुष्ट बछड़े को देखकर हृदय की प्रीति से पुकारती है ॥ प्र० ३(१) द० ५।४

(२३७) हे मनुष्यो ! मैं तुमको पुकार कर कहता हूं कि ऋत्विज् लोग जिसमें सोम खींचा जावे, उस सोम यज्ञ में, यज्ञ रक्षार्थ बृहत नामक साम को बलों से अर्थात् ऊँचे स्वर से गाते हुये धन को लाभ कराने वाले परमेश्वर की स्तुति करें, जैसे हितकारी कुटुम्ब में पोषक पुत्र आदि को (पुत्र आदि पुकारते है) ॥ प्र० ३(१) द० ५।५

(२३८) सहवर्त्तिनी बड़ी चितौनी के साथ सूर्य, सोम अन्न को शीघ्र सेवन करता है। मैं उपदेष्टा तुम याज्ञकों को बहु-स्तुत परमेश्वर के प्रति, वाणी से नम्र कराता हूं, नमस्कार कराता हूं जैसे अच्छे ढुलने वाली पहिए की पुट्ठी को बढ़ई नम्र करता है ।। प्र० ३(१) द० ५।६

(२३९)हे परमेश्वर, जो लोग गौ आदि पशु वाले हैं और घृत आदि से यज्ञ करते हैं, जिनका मन रसिक है, ऐसी कृपा कीजिए कि उनका मन शुद्ध होके श्रद्धा भक्ति पूर्वक आपकी शरण ग्रहण करे। आप हम पर प्रसन्न हों, आप अन्तर्यामी रूप से हमारे को सुधारिए। ज्ञान दीजिये। आपका दिया बुद्धि का प्रसाद हमारी रक्षा करे ।। प्र० ३(१) द० ५।७

(२४०) हे परमेश्वर! ज्ञानी भक्तजन के लिए विद्या आदि धन दानार्थ आपही प्राप्त हूजिये और हे अनन्त विद्या आदि धन युक्त! इन्द्रिय वृत्ति निरोध रूप यज्ञ के लिए सींचिये, तर कीजिये। प्राण को योग यज्ञ के लिए सींचिए, योग ऐश्वर्य का लाभ कराइये ।। प्र० ३(१) द० ५।८

(२४१) योग ऐश्वर्य को प्राप्त हुई आत्मा कहती है कि हे प्राणो! आज हमारे कुछ कमी नहीं, जबकि हमने मन को जीतकर सींच लिया, आज सब काम पूर्ण हैं, अब तुम जितनी इच्छा हो उतना आनन्द अमृत पान करो ।। प्र० ३(१) द० ५।९

(२४२) मनुष्य मात्र को परमात्मा के स्थान में अन्य किसी की स्तुति नहीं करनी चाहिए, किन्तु परमात्मा की ही करनी चाहिये, तथा प्राणी मात्र की हिंसा न करनी चाहिए। परमात्मा के ही स्तोत्रों का पाठ करना चाहिये। प्र० ३(१) द० ५।१०

(२४३) जो पुरुष सर्वदा भक्तों की वृद्धि करने वाले समस्त संसार के स्तुति योग्य, महान, जिसके ऊपर किसी का अधिकार नहीं और अपने अनन्त बल से सब पर अधिकार रखने वाले परमेश्वर को योग आदि यज्ञों से उपासित करता है, उस पुरुष को कोई काम आदि शत्रु, प्रहार आदि से नहीं व्यापता, अथवा उसे कर्म-बन्धन नहीं होता, निष्काम होने से ।। प्र० ३(२) द० ६।१

(२४४) परमात्मा के कैसे आश्चर्यजनक काम हैं कि गर्भगत प्राणियों के ग्रीवा आदि अवयवों को चिपकाने के लिये जब तक रुधिर भी नहीं उत्पन्न होता है, तभी समस्त संधियों को बिना रस्सी आदि साधनों के जोड़ देता है, और जब चाहे तत्काल पुष्ट से पुष्ट बन्धनों को तोड़ बिछोड़ देता है ।। प्र० ३(२) द० ६।२

(२४५) जब मनुष्य सोम आदि औषधियों से यज्ञ करते हैं तो सूर्य के तेजोमय गोले में ब्रह्म की जोड़ी हुई उसकी किरणें औषधियों के हवन किये रस को खींचने के लिये सूर्य को प्राप्त करती हैं। सूर्य की रथी, गोले को रथ और किरणों को घोड़े की उपमा जानिए ।। प्र० ३(२) द० ६।३

(२४६) सूर्य! जैसे मयूर के पंखों में अनेक रंग हैं, ऐसे आनन्ददायक किरणों से आता है। तुझे कोई भी नहीं बांध सकता, प्रत्युत तू ही उन रोकने वाले अन्धकारादिकों को उल्लंघन करके आता है। जैसे पाशहस्त व्याध लोग पक्षी को निग्रह करते हैं, और धनुषधारी धनुष से शत्रु का निग्रह करता है तद्वत तू अन्धकारादि का निग्रह करता है ।। प्र० ३।२ द० ६।४

(२४७) प्यारे पुरुष! तू इस प्रकार प्रशंसा स्तुति कर कि हे अनन्त-धन! परमेश्वर! आप से भिन्न कोई मनुष्य का सुखदायी नहीं है। हे अनन्त बलवान! आपके लिए स्तुति वचन उच्चारण करता हूँ ।। प्र० ३(२) द० ६।५

(२४८) हे परमेश्वर! आप यशस्वी, समृद्ध बल के पति, मनुष्यों के धारक हैं, और बहुत से जिनका सामना करना कठिन है उन रोकने वाले कामादि शत्रुओं को अप्रेरित स्वयमेव बिना किसी की सहायता के आप नष्ट करते हैं ।। प्र० ३(२) द० ६।६

(२४९) हम यज्ञ के लिये परमेश्वर की ही पुकार करें। यज्ञ आरम्भ होने पर परमेश्वर की पुकार करें, यज्ञ समाप्ति या युद्ध में भी परमात्मा की सहायता मांगें। संविभाग करते हुये हम धन के दान मिलने के लिए परमेश्वर की सहायता मांगें ।। प्र० ३(२) द० ६।७

(२५०) हे बहुधन! परमेश्वर! जो भी वाणियें आप के प्रति हों,

वे वृद्धि को प्राप्त हों। और जो अग्नि सम तेजस्वी पवित्र विद्वान स्तोता, गीयगान स्तोत्रों से सब प्रकार की स्तुति करते हैं, वे भी वृद्धि को प्राप्त हों॥ प्र० ३(२) द० ६।८

(२५१) वे स्तोत्र अति मधुर वाणी उच्च भाव से चलती है, जैसे सदा विजयी धन के संविभाग कराने वाले अक्षय रक्षा वाले रथ बल वा वेग चाहते हैं तद्वत पादपूरणार्थ है :

जिस प्रकार संग्राम में विजय और धन के प्राप्त कराने वाले वेगवान रथ उमंग से चलते हैं, उसी प्रकार काम क्रोधादि शत्रुगण का विजय कराने वाले और अमूल्य ईश्वर धन का लाभ कराने वाले मधुर भजन और स्तोत्र उच्च भाव से उच्चारित होते है॥ प्र० ३(२) द० ६।८

(२५२) अब परमात्मा का स्तोत्र पढ़ता हुआ स्तोता यह भी कहे कि हे इन्द्र ! इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीवात्मन ! जिस प्रकार प्यासा मृगादि जन्तु जल भरे जलाशय को प्राप्त होता है, उसी प्रकार तू भी ईश्वर-भक्तों में हमारी मित्रता प्राप्त होने पर शीघ्र जाग, और उन के साथ आनन्दामृत का पान कर॥ प्र० ३(२) द० ६।९

(२५३) हे अनन्त पराक्रमा ! कर्मों और बुद्धियों के अध्यक्ष कर्मफल-दाता परमेश्वर ! समस्त रक्षाओं सहित ऐश्वर्य के समान कीर्ति भले प्रकार दीजिए, यह याचना है। और निश्चय विद्यादि धन के दाता आपके अनुकूल चलें। यह भी कृपा कीजिये॥प्र० ३ (२) द० ७।१

(२५४) हे धनवान परमेश्वर ! आनन्द वा प्रकाश युक्त तू जिन अन्न आदि भोगों को मेघों से वा दुष्ट पुरुषों से लाता है, उन से ही उस तेरे आज्ञा पालने वाले वा यज्ञकर्त्ता को बढ़ा; और जो लोग तेरे लिए यज्ञ का विस्तार करते हैं, उन्हें भी बढ़ा॥ प्र० ३(२) द० ७।२

(२५५) हे यज्ञकर्त्ता ! यदि तू पूर्व मन्त्रानुसार अन्नादि की समृद्धि को माँगता है, तो मित्र अर्यमा वरुणादि वर्षा के सहायक वायु आदि देवतों के गुण कर्म स्वभाव को वेदमन्त्रों द्वारा जानकर तदानुकूल सेवन योग्य अनुष्ठान कर। इससे अन्नादि की समृद्धि होगी। प्र० ३(२) द० ७।३

(२५६) हे परमेश्वर ! मेधावी स्तोता भले मनुष्य अपनी पूर्व तृप्ति के लिये स्तोत्रों से सनातन आपको सर्वथा वर्णन करते और गान करते है। इसी प्रकार हम भी अन्य मित्र वरुणादि से पूर्व आप का स्मरण कीर्तन और गान करते हैं॥ प्र० ३(२) द० ७।४

(२५७) हे स्तोताओ ! तुम अपने महान ईश्वर के लिए सामवेद के वचन अर्पित करो। पापनाशक बहुविध कर्मवाला वह बहुत धारों वाले वज्र से पाप को मारता है। जो लोग परमात्मा की स्तुति प्रार्थना उपासना में लगे रहते हैं, उनको सर्वव्यापक परमात्मा सर्वत्र पापियों के नाश के लिए अनन्त धार वाले वज्र के लिए प्रतीत होता है, अर्थात् वे छुपकर भी पाप नहीं कर सकते। क्योंकि अन्य राजा आदि के एकदेशीय वज्र से तो कोई किसी प्रकार बच भी सकता है, परन्तु परमात्मा की सृष्टि का प्रत्येक परमाणु भी उसके वज्र का काम दे सकता है और मनुष्य को नष्ट कर सकता है। इसलिए उस का वज्र अनन्तधार है॥ प्र० ३(२) द० ७।५

(२५८) हे ऋत्विज लोगो ! तुम परमेश्वर के लिये बृहत साम गाओ, जिस साम गान से यज्ञ के विस्तार करने वाले उपासक लोग दिव्य पापनाशक जागती ज्योति को निज हृदयों में उत्पन्न करते हैं॥ प्र० ३(२) द० ७।६

(२५९) अब परमेश्वर से पूर्व मन्त्रोक्त ज्योति का दान माँगते हैं। हे परमेश्वर ! आप हमारे लिये सुकर्म वा अपना ब्रह्म ज्ञान दीजिये। जैसे पिता पुत्रों के लिये धन और ज्ञान देता है तद्वत हम को शिक्षा दीजिये। हे बहुस्तुत ! सब को प्राप्त करने योग्य इस प्रकरणगत मुझ ब्रह्म में हम जीववर्ग आप की ज्योति को सेवन करें॥ प्र० ३ (२) द० ७।७

(२६०) हे परमेश्वर ! हम को मत छोड़िये। हमारे साथ हर्षदायक यज्ञ में आप हमारे रक्षक होजिये। आप ही हमारे बन्धु हैं। अतः हे परमेश्वर हम को मत त्यागिये॥ प्र० ३ (२) द० ७।८

(२६१) दुर्गुण नाशक परमात्मन ! जिन्होंने सोम तैयार कर लिया है वा मन शुद्ध कर लिया, जिन्होंने यज्ञ विस्तीर्ण किया हुआ है, ऐसे स्तुतिकर्त्ता हम लोग निश्चय जैसे शुद्ध देश के झरनों में जल सब ओर से

शान्त स्थिर होते हैं तद्वत शान्तचित्त हो उपासना कर रहे हैं ॥ प्र० ३ (२) द० ७।६

(२६२) हे परमेश्वर ! मानुषी प्रजाओं में जो आत्मिक बल और शारीरिक बल है अथवा जो उभयविध बल विस्तृत योग भूमियों में है, वह बल और सब पुरुषार्थ हमको दीजिये ॥ प्र० ३ (२) द०७।१०

(२६३) हे तेज सम्पन्न इन्द्र ! परमेश्वर ! यह सत्य है कि आप धर्म्म अर्थ काम मोक्ष के वर्षाने वाले ही हैं। आपकी व्याप्ति सब पदार्थों को वर्षाती है। आप हमारे रक्षक हैं; वृषा नाम से आप वेदों में सुने जाते हैं। दूर देश और समीप देश में वर्षाने वाले आप विख्यात हैं। प्र० ३ (२) द० ८।१

(२६४) हे शक्ति मन, पाप विनाशक परमेश्वर ! जो कि आप दूर देश और जो कि आप समीप देश में भी हैं। इससे सोम पैदा करने वाला यजमान जटा जूट वाले ऋत्विजों सहित शीघ्र आपकी वेद मन्त्रों से स्तुति उपासना करता है। प्र० ३(२) द० ८।२

(२६५) शारीरिक और आत्मिक भोजन के आनन्दों के निमित्त तुम अपने पुरुषार्थ युक्त करने वाले, शत्रुओं को नष्ट करने वाले महान, विशेष ज्ञान युक्त शक्तिमान परमेश्वर को जैसे वेद का वचन है वैसे वाणी से सर्वतः गाओ ॥ प्र० ३(२) द० ८।३

(२६६) हे परमेश्वर ! वात, पित्त, कफ नामक धातु वाले देह नामी घर को (बन्धन को) पृथक कीजिये और मुझ भगवद् भगत तथा तुम्हारा पूजन करने वालों के लिए आध्यात्मिक आदि तीनों दुःखों के रोकने वाला प्रकाशमय आश्रय कल्याण अर्थ दीजिये। प्र० ३ (२) द० ८।४

(२६७) मित्रो ! समस्त जो उत्पन्न हो चुके और जो उत्पन्न होंगे बल सहित वे सब धन परमेश्वर के ही हैं। अपने भाग्य के अनुसार जैसे पिता के धन को पुत्र भोगे उन्हीं को हम धारण करते हैं, जैसे सूर्य से उत्पन्न हुई किरणें सूर्य से ही प्रकाश लेती है ॥ प्र० ३।२ द० ८।५

(२६८) हे नित्य ! जीव आत्मन ! बिना परमेश्वर के मनुष्य शारीरिक और आत्मिक भोजन नहीं पा सकता, क्योंकि जो घोड़े वाला है वही घोड़े

को जोतता है। और सूर्य्य ही किरणों को संयुक्त करता है ॥ प्र० ३ (२) द० ८।६

(२६९) हे स्तुत्य ! शत्रुओं का दमन करने वाले परमेश्वर ! समस्त युद्ध आदि बाधाओं में हमारे वेदोक्त स्तोत्र और प्रातः सवनादि, तीनों सवन पुकारने योग्य आप परमेश्वर को रक्षार्थ सुशोभित करो अर्थात्, हे जगदीश हमारी समस्त बाधाओं में सहायता अर्थ हमारे स्तोत्र और यज्ञ हमें आपको प्राप्त करायें ॥ प्र० ३ (२) द० ८।७

(२७०) हे परमेश्वर, नीचे का पृथ्वी लोक आपका ही धन है। और मध्यस्थ लोक अन्तरिक्षक लोक को आप ही पालते हैं। तथा परले द्यौलोक के भी आप ही राजा हैं। इस प्रकार सारे जगत के एक साथ आप ही राजा हैं। आपको पृथ्वी आदि लोकों में कोई नहीं रोक सकते क्योंकि आप व्यापक हैं। प्र० ३ (२) द० ८।८

(२७१) हे सर्वज्ञ ! हे सब ब्रह्माण्डों के कर्ता ! हे देह बन्धनों के छुड़ाने हारे परमेश्वर ! आप कहाँ व्याप्त हैं और कहाँ हैं ? उत्तर आपका ज्ञान स्वरूप सर्वत्र ही है, आप व्याप रहे हैं। गाने वाले आपका गान करते हैं। प्र० ३(२) द० ८।९

(२७२) ज्ञानियों की यही परम्परा है कि सर्व काल में यज्ञ आदि उत्तम अवसरों पर विशेषकर अपने स्वामी परमात्मा की प्रीति के लिये अपने हृदय से पाप आदि कुसंस्कारों को दूर करके भूषित करते हैं ॥ प्र० ३।८ द० ८।१०

(२७३) जो मनुष्यों का राजा है, जो रथों वा रमणीय योग मार्गों से प्राप्त होता है, जो अपने स्थान में वा अपने स्वरूप में ही स्थिर, अचल, दुष्ट दस्युओं का नाशक है, जो सम्पूर्ण सेनाओं के पार करने वाला है, उस बड़े राजा वा परमेश्वर की प्रशंसा करता हूँ। प्र० ३ (२) द० ९।१

(२ परमेश्वर ! हम जिससे भय को प्राप्त हों, उससे हमको निर्भय कीजिये। हे धनवन ! आपके भक्त हम लोगों की रक्षा के लिये उस अभय को आप समर्थ है, याचना को पूरी कीजिये। शत्रुओं को नष्ट

कीजिये और संग्रामों को जीतिये । प्र० ३ (२) द० ९।२

(२७५) हे गृहों के पालक ! परमेश्वर ! आप सौम्य स्वभाव प्रजा जनों के अंचल दृहस्तम्भ के तुल्य आधार हैं, कवच के तुल्य रक्षक हैं, शीघ्र गति वाले वा ज्ञानी हैं । बहुत शत्रुओं के नाशक हैं, परमैश्वर्य वान और मुनियों के मित्र हैं ।। प्र० ३ (२) द० ९।३

(२७६) सूर्य के दृष्टान्त से राजा की प्रशंसा है कि कामों में प्रेरणा करने वाले ! ठीक तू बड़ा है । रसों को खींचने वाले ! सत्य तू महान है, तुझ उत्तम की बड़ाई बड़ी है । प्रशंसा के योग्य दिव्यगुण ! बड़प्पन में तू महान है ।। प्र० ३(२) द० ९।४

(२७७) हे परमेश्वर ! जब मनुष्य आप के अनुकूल होता है, तभी अश्वों वाला, रथों वाला, गौवों वाला और सुन्दर स्वरूप वाला होता है । तथा धन सहित अन्न से संगति करता है और सर्वदा आह्लादकारक सहचरों के साथ सभा को प्राप्त होता है ।। प्र० ३(२) द० ९।५

(२७८) हे परमेश्वर ! यदि द्युलोक सैकड़ों हों, तो भी आप को साथ नहीं व्याप सकते । और पृथ्वी लोक सैकड़ों हों, तो भी नहीं व्याप सकते । हे दुष्टों के दण्ड दाता ! असंख्य सूर्य लोक भी आप को नहीं व्याप सकते । द्यावा पृथ्वी आप को नहीं व्याप सकते । उत्पन्न जगत मात्र आप को नहीं व्याप सकते क्योंकि आप अनन्त और सबसे बड़े हैं ।। प्र० ३(२) द० ९।६

(२७९) हे परमेश्वर ! जब मनुष्यों से पूर्व, पश्चिम, उत्तर और नीचे की दिशाओं में तुम पुकारे जाते हो, तब सर्वत्र एक साथ ही सबके समीप होते हो । हे सब के अधिक तेजस्विन ! बहुशः मनुष्यों के पुकारे हुए आप मनुष्य मात्र में हैं ।। प्र० ३(२) द० ९।७

(२८०) हे यज्ञ वाले परमेश्वर ! उस सर्वव्यापक आप को कौन मनुष्य धर्षणा कर सकता है ? कोई नहीं । किन्तु योगबल या सोमरूप वाला आप का यजमान सोम की पारी के दिन श्रद्धापूर्वक निश्चय सोम को विभाग पूर्वक यज्ञ में देना चाहता है ।। प्र० ३(२) द० ९।८

(२८१) पूर्वक्त सोम का विभाग कौन करता है इस का उत्तर कहते हैं :—यह बिजुली पाँव के बिना भी पाँच वाली प्रजाओं में प्रथम आ जाती है और चलती है । तथा मुखस्थान को छोड़ कर भी वाणी से अत्यन्त बोलती है । दिन रात ३० मुहूर्तों में पद रखती है । सूर्य और अग्नि भी ऐसा करते हैं ।। प्र० ३(२) द० ९।९

(२८२) हे परमेश्वर ! हे अतिसमीप, व्यापक ! आप परिमित बुद्धियों सहित और रक्षाओं सहित हमें प्राप्त हूजिये । हे सुखद ! अति सुखदायक प्राप्तियों से प्राप्त हूजिये । हे अपने स्वरूप के प्राप्त कराने वाले ! अपने पदार्थों की प्राप्ति से प्राप्त होजिए ।। प्र० ३(२) द० ९।१०

(२८३) हे मनुष्यो ! तुम अपनी रक्षा के लिए अकाय होने से बुढ़ापे से रहित, अन्तर्यामी, तथा सबके प्रेरक, कूटस्थ होने से अचल, व्यापक, सर्वोत्कृष्ट सर्वज्ञ, अति रमणीय पदार्थों वाले, निराकार होने से अहिंसनीय अमर, जल के वर्षाने वाले, उपलक्षण से आँधी आदि के भी प्रवर्तक, प्रकारणगत इन्द्र परमेश्वर को प्राप्त होवो ।। प्र० ३(२) द० १०।१

(२८४) हे परमेश्वर ! विद्वान ऋत्विज् लोग भी हम से दूर देश में आप को न स्तुत करें किन्तु समीप ही बैठे हुए स्तुत करें । और आप निश्चय सर्वज्ञ होने से समीप ही हमारे यज्ञ को प्राप्त हों, अथवा इस हमारे अन्तःकरण में वर्तमान आप प्रार्थना का श्रवण करें ।। प्र० ३(२) द० १०।२

(२८५) रक्षा और सुख के लिए प्रार्थना किया हुआ परमेश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम सोम पीने वाले कड़क रूप वज्र के धर्त्ता अन्तरिक्ष-स्थान देव विशेष के लिए सोम आदि औषधियों का संपादन करो । रक्षा के निमित्त पकाने योग्य पुरोडाशादि पकाओ । ऐसे सब काम करो ही, देने वाला सुख देता है ।। प्र० ३(२) द० १०।३

(२८६) हे अनन्तवान ! हे बहुबल ! हे सत्पुरुषों के रक्षक ! जो आप एक साथ समस्त का नाश करने में समर्थ हैं और अच्छे बुरे को देखने वाले हैं, सो आप कामादि शत्रुओं के संग्रामों में हमारी वृद्धि और विजय के

लिए हूजिए। आपकी आज्ञानुसार उस अन्तरिक्ष स्थान इन्द्र का हम हवनादि करते हैं ॥ द० १०१४

(२८७) फिर मनुष्य लोग सूर्य और चन्द्रमा को सम्बोधन करके कहते है कि— अश्विनौ ! तुम बुद्धि और धन हमारे लिए रात्रि और दिन दो। कर्मों सहित तुम्हारा दान कभी उपक्षीण न हो और हमारा हव्य दान कभी भी उपक्षीण न हो ॥ द० १०१५

(२८८) परमात्मा की स्तुति के साथ वन्दना भी आवश्यक है उसका विधिवाक्य कहते हैं कि स्तुति करने वाला मनुष्य धर्म अर्थ काम मोक्ष के वर्धक परमात्मा के लिए जब कभी स्तुति करें तब ही विविध कामों के धर्ता वरण करने योग्य परमात्मा को जो बोलती है उस वाणी से वन्दना भी करें अर्थात् वन्दनारहित स्तुति न करें। किन्तु वन्दना और स्तुति दोनों करें ॥ प्र० ३(२) द० १०१६

(२८९) हे परमेश्वर से संगति योग्य ! निरन्तर देहान्तर को जानेवाले जीवात्मन ! तू परमेश्वर प्राप्ति के लिए उत्तम-२ भोजनादि के मद में इन्द्रियों को विषयों से रक्षा कर। क्योंकि जो परमेश्वर ज्योतिर्मय है और जो हरणशील आत्मा और मन में मिल रहा है, व्यापक है, और जो दुष्ट को दण्ड देता है, ज्योति स्वरूप है वह अजितेन्द्रियों को नहीं मिल सकता ॥ द० १०१७

(२९०) परमेश्वर हमारे स्तुति और वन्दना दोनों प्रकार के वचनों को सुने और अतिवल यज्ञ वाला हृदय के सौमय भाव को ग्रहण करने के लिए सत्यानुगामिनी बुद्धि सहित प्राप्त होवे ॥ प्र० ३(२) द० १०१८

(२९१) हे मेघों के धारक ! दुष्टों के ताड़नकर्ता ! बहुत धन वाले ! आप हम से बड़े मूल्य के लिए भी नहीं त्यागे जाते हैं, न सहस्र के लिए, न १० सहस्र के लिए और न इससे भी बहुत के लिए ॥ द० १०१९

(२९२) हे परमेश्वर ! मेरे माता पिता और भ्राता से अधिक आप बसाने वाले हैं और मेरी जननी सब काल में समान प्रीति रखती है। निवास और धन के लिए माता और आप मेरा पोषण करते हैं। अर्थात् जब मनुष्य माता की सेवा पालन नहीं करता तब भी माता उस पर समान ही स्नेह रखती

है। तथा परमेश्वर भी सब काल में सब का पोषण करता है। इन में माता शारीरिक और परमात्मा आत्मिक पुष्टि विशेषतः करते हैं ॥ प्र० ३(२) द० १०२०

चतुर्थ प्रपाठक

(२९३) जब मनुष्य यज्ञ के लिए दधि मिश्रित सोम आदि औषधि संपन्न करके यज्ञ आरम्भ करते हैं तो इन्द्र जो अन्तरिक्ष में जल वर्षाने वाला एक अचेतन देवता है, और अन्य उस के उपलक्षण से ग्रहण किए हुए वायु आदि देवगण अपना अपना भाग ग्रहण कर लेते हैं, उन का वृद्धि और अच्छेपन को प्राप्त होना ही हर्ष है ॥ प्र० ४(१) द० ११९

(२९४) हे वाणी से सभजनीय ! परमेश्वर ! मधुरभाषी स्तुतिकर्ता के ये सोमादिक इन्द्र के हर्षार्थ रोग दूर करते हैं। आप के स्तोत्र के लिए हमारी वाणियों को स्वीकृत कीजिए। रक्षा करते हुए आप अभीष्ट पदार्थ दीजिए ॥ प्र० ४ (१) द० ११२

(२९५) जिस प्रकार गौ सर्वोपकारिका है, इसी प्रकार इन्द्र भी वर्षा आदि द्वारा सर्वोपकारक है। और परमेश्वर तो अत्यन्त उपकारक है ॥ प्र० ४(१) द० ११३

(२९६) परमैश्वर्ययुक्त ! बड़े बलिष्ठ दृढ़ पर्वत भी आप को नहीं रोक सकते। स्तुति करने वाले मेरे लिए जो धन धान्य देते हो, आप के उसको कोई भी नहीं रोक सकता ॥ प्र० ४(१) द० ११४

(२९७) सोमरस सम्पन्न होने पर वायु आदि देवों के साथ रस लेते उस इन्द्र को कौन देख सकता है ? कोई नहीं। कितनी आयु धारण करता है, यह भी कौन जानता है ? कोई नहीं। जो कि यह सोमादि के रस से तृप्त हुआ वेग वाला मेघों के दुर्गों को बल से तोड़ता है। अर्थात् इन्द्र जो एक प्रकार का विद्युत्तत्व है, वह वायु आदि सहित अदृश्य रूप से सोमादि औषधियों के रस को पीता और उस से पुष्ट होता बल पूर्वक मेघ वर्षाता है बड़ा वेगवान है ॥ प्र० ४(१) द० ११५

(२६८) हे परमेश्वर ! आप कर्म अर्थात् यज्ञ के विरोधी को शासित करते हैं। अतः हम याज्ञिकों के यज्ञग्रह के चारों ओर से विरोधियों को दूर कीजिए। हे यश वाले ! बहुधा चाहे हुए सोमरस को बसने योग्य यज्ञस्थान में अधिक बढ़ाइए। अर्थात् यज्ञ में विघ्नकारियों को दूर कीजिए और सोमादि यज्ञसामग्री की वृद्धि कीजिए ॥ प्र० ४(१) द० १।६

(२६९) अग्नि, वेदमन्त्र, मेघ, सूर्य, द्योलोक, यह सब कठिन पदार्थ हैं, परमात्मा आपकी कृपा से हमारे पुत्रों और भ्राताओं सहित शीघ्र हमारी प्रत्येक रक्षा करें। हमारा रक्षक वचन दुस्तर सफल होवे ॥ प्र० ४(१) द० १।७

(३००) हे परमेश्वर ! आप कभी किसी कर्म को निष्फल नहीं करते। न किसी निरपराध को दण्ड देते हो, किन्तु इस जन्म और पुनर्जन्म में प्रत्येक प्राणिवर्ग आप की व्यवस्था से कर्म अनुसार फल प्राप्त करता है ॥ प्र० ४(१) द० १।८

(३०१) जो लोग परमात्मा को नहीं जानते, वे उस से दूर के समान हैं, और उन्हें जब परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होता है, तो उन के लिए वह नवीन सा होता है ॥ प्र० ४(१) द० १।६

(३०२) हे दुष्टदमन परमेश्वर ! स्तोत्र कहने वाले भक्तिरूप हवि का धारण किए हुए मनुष्य भूत काल में और वर्तमान काल में आप को प्रसन्न करते थे और करते हैं। वह आप इस दिन सुनिये और हमें प्राप्त हूजिये ॥ ४(१) द० १।१०

(३०३) हे इन्द्र ! परमेश्वर ! आती हुई अन्धकारों को हटाने वाली द्योलोक वा सूर्य की पुत्री के तुल्य बुद्धि वा उषा ज्ञान वा दर्शन से अज्ञान वा अन्धकार को निवृत करती है। मनुष्यों को सुमार्ग में चलाने वाली बड़ी बुद्धि वा उषा प्रकाश को करती है। निश्चय वह प्रतिदिन आप की कृपा से प्राप्त होती है ॥ प्र० ४(१) द० २।१

(३०४) जगत को बसाने वालो ! सूर्य और चन्द्रमाओ ! प्रकाश चाहती हुई ये प्रजायें तुमको ही प्राप्त करना चाहती हैं इस कारण यह मैं भी तुमको रक्षार्थ प्राप्त करना चाहता हूं। बुद्धि और धर्म देने वालो ! क्योंकि तुम प्रत्येक प्रजा को प्राप्त होते हो ॥ द० २।२

(३०५) अश्विनो ! सूर्य और चन्द्रमाओ ! देवो ! प्रकाशको ! पृथ्वी पर स्थित कौन मनुष्य तुमको प्रकाशित करने वाला है ? कोई नहीं। किन्तु तुम ही सबके प्रकाशक हो। तुम दोनों के लिये मेघों में जाते हुए सोमादि औषधिरस से क्षीण हुआ यजमान जैसे कि कोई भोगी समृद्ध पुरुष होता है, ऐसे ही होता है ॥ प्र० ४ (१) द० २।३

(३०६) सूर्य और चन्द्रमा ! तुम्हारे लिये यज्ञों में यह अति मधुर औषधि विशेष का रस खींचा है, उस एक दिन बीते रस को ग्रहण करो और हवि देने वाले यजमान के लिये रमणीय पदार्थ धारण करो ॥ प्र० ४ (१) द० २।४

(३०७) हे इन्द्र ! परमेश्वर ! यज्ञ के भवनों में सोमादि औषधियों के गालन के साथ तथा जपशील स्तुति के साथ सर्वदा आपसे सब प्रकार प्रार्थना करता हुआ मैं यज्ञ-कर्त्ता दीक्षित मृगादि किसी प्राणी पर क्रोध न करूं। हम सब ही पोषण करने वाले स्वामी से याचना करते हैं ॥ प्र० ४ (१) द० २।५

(३०८) अब यजमान यज्ञ में आहुत्यादि का ठीक करने वाला ऋत्विज अध्वर्यु से कहता है। हे अध्वर्यो तू ! सोमरस को गीला कर, सूर्य पीना चाहता है। तथा वर्षाने वाली तिरछी सीधी दो प्रकार की किरणों को उपयोग में लाता है और प्राप्त होता है ॥ प्र० ४(१) द० २।६

(३०९) हे परम धन ! परमेश्वर ! हे अत्यन्त बड़े ! अत्यन्त छोटे सब ओर से चाहने वाले जीव के उस इष्ट को सिद्ध करो, क्योंकि आप बहुत धन वाले हैं और प्रति विपद काल में पुकारने योग्य है ॥ प्र० ४(१) द० २।७

(३१०) हे परमेश्वर ! जिस कारण आप जितना वस्तुमात्र है उसके स्वामी हैं इस कारण आपकी कृपा से मैं इतने धन का स्वामी होऊं जितने

से धर्मात्मा का धारण पोषण करूँ ही और है । धनप्रद ! पाप होने के लिये नहीं दूँ ॥ द० २।८

(३११) हे परमेश्वर ! कामादिशत्रु संग्रामों में सब शत्रु-सेनाओं को आप तिरस्कृत करने वाले हैं । आप ही उत्पादक और पापनाशक तथा अकीर्ति के नाशयिता हैं । अतः हिंसकों का नाश कीजिये ॥ प्र० ४(१) द० २।९

(३१२) हे परमेश्वर ! जो आप बल से द्युलोक के स्थान पर्यन्तों से अत्यन्त अधिक हैं, उन आपको पृथ्वी का राज नहीं व्यापता । अर्थात द्युलोक और पृथ्वी लोक को उल्लंघन करके आप वर्तमान हैं । इसलिये हमको संसार के पार करके, ले जाने की इच्छा कीजिये । मुक्ति दीजिये ॥ प्र० ४(१) द० २।१०

(३१३) गोदुग्धादि मिला हुआ उत्तमान्न हमने उत्पन्न किया है इस अन्न में ऐश्वर्यवान् राजा जन्म से "यह" ऐसा नितरां रुचिपूर्वक कहता है । हे दिव्य विद्युत् आदि अश्वों वाले ! सुकर्मों से तुझ राजा को हम बोध कराते हैं और आप भी उत्तमान्न के आनन्दों के निमित्त हमारे यथार्थ प्रशंसा-वचन को सुनकर स्वीकार कीजिये ॥ प्र० ४(१) ३।१

(३१४) हे राजन ! आपके विराजने के निमित्त आपका राज सिंहासन हमने बनाया है । हे बहुतों से पुकारे हुए उस सिंहासन पर मन्त्रियों सहित विराजिये जिससे कि हमारे रक्षक और वर्धक हूजिये । विद्या और रत्नादि धन दीजिये और सोमादि औषधियों के रसों से हृष्ट हूजिये ॥ द० ३।२

(३१५) सूर्य ! तू जब गीले मेघ को विदीर्ण करता है मेघों में शून्याकाशों को रच देता है, जल वाले समुद्रों को स्थिर जल वाले बनाता है और जब जलदायक उन मेघों को नष्ट करता है और उनसे जल प्रवाहों को वर्षाता है, तब बड़े पर्वत को विनष्ट करता है ॥ प्र० ४(१) द० ३।३

(३१६) हे राजन ! सोमादि को उत्पन्न करते हुए और धान्यादि का न्यायपूर्वक विभाग करते हुए हम आपकी स्तुति करते हैं । हे बहुबल ! हे

बहुधन ! आपसे रक्षा किये हुए हम जिस धनादि की कामना करें उस प्राप्त करने योग्य धनादि को हमारे लिये प्राप्त कराइये । विस्तृत धनों को अपने ही द्वारा हम आपकी कृपा से पावें ॥ प्र० ४(१) द० ३।४

(३१७) हे राजन ! धनों के धनपते ! धन चाहने वाले हम आपके दाहिने वा चतुर हाथ को पकड़ते हैं और आपको पृथ्वी आदिकों का स्वामी जानते हैं । हे वीर ! हमारे लिये अनेक प्रकार का कामनापूर्ण धन दीजिये ॥ प्र० ४(१) द० ३।५

(३१८) जब मनुष्य संग्राम में राजा का आश्रय करते हैं तब उन प्रसिद्ध पार लगाने वाले कामों को ठीक २ करते हैं । वह इन्द्र मनुष्यों को यथा स्थान विभाग पूर्वक खड़ा करने वाला है । हे राजन ! हमको यश के चाहने वाले गौआदि पशुओं युक्त सत्कारपूर्वक रख ॥ प्र० ४(१) द० ३।६

(३१९) गति वाले जीवात्मा जिन्हें यज्ञ प्यारा है वे ऋषि परमेश्वर को प्रार्थना करते हुए आश्रित होते हैं कि अज्ञान अन्धकार को दूर कीजिये और ज्ञान का प्रकाश कीजिये । जैसे फासियों के समूह से बन्धनों को, दलवत् मोहबद्ध हमको मुक्त कीजिये ॥ प्र० ४(१) द० ३।७

(३२०) हे राजन ! जिस प्रकार से द्युलोक में प्रकाश गिराते हुए शोभन पतन वाले, ज्योतिर्मय जिसके पंख हैं उस वृष्टिकारक वायु के लाने वाले विद्युत सम्बन्धी अग्नि के स्थान में वर्तमान, पक्षी के तुल्य आकाश में ठहरने वाले शीघ्रगामी सूर्य को, हृदय से चाहते हुए लोग सब ओर से देखते हैं, आप को भी ऐसे ही देखते हैं ॥ प्र० ४(१) द० ३।८

(३२१) हे राजन ! परमेश्वर ने सृष्टि में प्रथम उत्पन्न हुए बड़े सूर्य मण्डल को विस्तृत किया । उसी मेधावी ने अन्तरिक्ष में उत्पन्न हुई इस सूर्य मण्डल की समीप मापने योग्य अपनी २ विशेषता से स्थित सीमा (छोर) से अच्छी चमकीली अन्य भूमियों को विस्तृत किया । इस प्रकार वर्तमान और भविष्यत और भूतों के गर्भ सूर्यमण्डल को विवृत किया है ॥ प्र० ४(१) द० ३।९

(३२२) इस प्रत्यक्ष बड़े, वीर, बलवान, फुर्तीले, अत्यन्त बड़े शस्त्र

अस्त्र धारी वृद्ध अनुभवी राजा के लिए, जिन से पूर्व कोई न हो उस बहुत सुखकारी वचनों को कहें ॥ प्र० ४(१) द० ३।१०

(३२३) न्यायकारी राजा को चाहिये कि मनुष्यमात्र में मन रखे और जो तमोगुणी शत्रु हों, उन्हें समुद्रादि के पार भाग जाने पर भी बहुत से सेना बल और बुद्धि बल से जीवकों को निग्रह करके रखे और उन के साथी सामान्य दुष्ट मनुष्यों को दूर व नष्ट करे ॥ प्र० ४(१) द० ४।१

(३२४) हे राजन ! जो सब सज्जन मित्र वीर पुरुष अवरोधक शत्रु के प्राण व बल से मरते हुए आपको प्राण छूटने से त्याग दें, उन आप के लिए मरने वालों के साथ आपकी मित्रता होनी चाहिये। उससे सब संग्रामों को जीतिये। अर्थात् जो संग्राम में मारे जावें, उनके कुटुम्बियों के साथ राजा को मित्रता निबाहनी चाहिये ॥ प्र० ४(१) द० ४।२

(३२५) तो फिर मित्रों को मरवा कर क्या लाभ है ? इसके उत्तर में कहते हैं कि हे राजन ! शीघ्रगामी बहुत तारों के बीच में जवान नवीन व अधिक तेजो धारी वर्त्तमान चन्द्रमा को बूढ़ा सूर्य निगल जाता है, उसके ऊपर के प्रकाश को अपने में संहार कर लेता है, इसी प्रकार संग्राम में जो कल मरा है, वह आज भले प्रकार जीता है। परमेश्वर के चातुर्य को गहरे भाव से देख ॥ प्र० ४(१) द० ४।३

(३२६) हे राजन ! तू निश्चय इस कारण प्रसिद्ध हुआ एक दिशा में अपने रहने से शेष सात दिशाओं के सात तेरा नाश न कर सकने वाले विद्वेषियों के लिए उनका नाशक होवे। छिपे आकाश और पृथ्वी के स्थानों को प्राप्त होवे, और ऐश्वर्यशाली देवों के लिये रक्षार्थ संग्राम को धारण करे ॥ प्र० ४(१) द० ४।४

(३२७) हे राजन ! आप स्वामी हिंसक शत्रु सेनाओं को नष्ट करते हैं। अतः वज्रधारी शत्रुओं की तोपों वाले बहुत धुआंधार नाश करने वाले कामना के पूरक स्थिर रूप न्याय प्रकाश में स्थित शत्रुहन्ता आपको शुश्रूषा करना चाहने वाला मैं वेद वाणियों के समान प्रशंसित करता हूं ॥ द० ४।५

(३२८) हे मनुष्यो ! तुम्हारे बड़े वर्धक सत्कार योग्य बुद्धिमान राजा

के लिये तुम कर भरो और अनुकूलता करो। हे राजन ! मनुष्यों के पालक शुभ सनातनी प्रजाओं को अनुकूल रखो। प्र० ४(१) द० ४।६

(३२९) हम प्रजायें सुखदायी, धनवान मनुष्यों में उत्तम, शत्रुनाशक, संग्रामों में शत्रु सेनाओं को मारने वाले, धनों को जीतने वाले राजा को रक्षा के लिये बुलाती हैं ॥ प्र० ४(१) द० ४।७

(३३०) हे अति श्रेष्ठ मनुष्य ! तू मुझ व्यापक परमेश्वर के वेदोक्त धन धान्यादि के लिये हितकारी वचनों को श्रद्धा से सुन, तथा जो धन धान्यादि सब जगतों को विस्तृत करता है उस राजा को संग्राम निमित्त उच्च स्वभावशाली कर और संस्कृत कर ॥ प्र० ४(१) द० ४।८

(३३१) जो राजा का आज्ञा रूपी चक्र नदी आदि जलाशयों पर स्थित हो, तो वह चक्र राजा के लिए जल को भी सब ओर से छाय दे, किन्च पृथ्वी पर छोड़ा हुआ जो बहने वाला जल नहर आदि द्वारा गवादि पशुओं और गेहूं आदि औषधियों में रस का आदान करें अर्थात् यदि राजा का राज्य जलाशयों पर हो, तो नहर आदि निकाल कर, पशु आदि की बड़ी उन्नति हो ॥ प्र० ४(१) द० ४।९

(३३२) उस ही धन धान्यादि के दाता, देवतों से प्रसन्न, महाबली, रमणीय लोक लोकान्तरों के अधर तिराने वाले, अकुण्ठित वज्रधारी, शत्रु सेनाओं के जेता, व्यापक परमेश्वर सर्वव्यापक को कल्याणार्थ इस जगत में वर्त्तमान हम भले प्रकार पुकारते हैं ॥ प्र० ४(१) द० ५।१

(३३३) पालक परमेश्वर, रक्षक परमेश्वर ! जब-२ पुकारें तब-२ सुगमता से पुकारने योग्य परमेश्वर, शक्तिमान, वेदों में सबसे अधिक पुकारे जाने वाले परमेश्वर्यवान को पुकारता हूं। अनन्तधन परमेश्वर पुकार को शीघ्र प्राप्त करें ॥ प्र० ४(१) द० ५।२

(३३४) हम चतुर वज्र वाले, हरने वाले, विविध कर्मों के मार्गोपदेशक परमेश्वर का पूजन करते हैं। जो शरीर में व्याप्त शिराओं द्वारा सबको गति देता हुआ ऊपर शासक रहता है ॥ प्र० ४(१) द० ५।३

(३३५) जो यश वाला, सुन्दर बल वाला, हमारे विघ्नकारक शत्रु

को मारेगा और धन व बल का विभाग करेगा, धनों को देगा उस सत्य से असत्य के नाशक, प्रेरक, बड़े अपार विद्या और गम्भीर आश्रय वाले, कामनाओं के पूरक न्याय अनुसारी दण्ड के धर्त्ता परमेश्वर को पूजित करते हैं ॥ प्र० ४(१) द० ५।४

(३३६) हे परमेश्वर ! जो कोई अभिमानी, घमण्डी, हिंसक मनुष्य हमको अथवा श्रेष्ठ प्रजाओं को हनन करता हुआ सामने आता है, उसको नष्ट कीजिये और आपसे रक्षा किये हुये बलवान हम लोग उसको बल से व युद्ध से दबायें ॥ प्र० ४(१) द० ५।५

(३३७) जिसको रोकने वाले दस्युओं के आ पड़ने पर क्रुद्ध हुए वीर मनुष्य पुकारते है, वह शूर पुरुष इन्द्र कहाता है। जिसको शत्रुओं के संबद्ध होने पर मारते हुए योद्धा लोग चाहते हैं वह सेनापति भी इन्द्र कहाता है। जिसको शूरवीरों के विभाग वाले संग्राम में पुकारते हैं वह भी इन्द्र पद का वाच्य है और जिसको वृष्टि जलों के समीप समय में हवन करते हैं वह सूर्य देव भी इन्द्र पद का वाच्य है, जिसकी ज्ञानी लोग स्तुति करते हैं, वह परमेश्वर भी मुख्य करके इन्द्र कहाता है ॥ प्र० ४(१) द० ५।६

(३३८) दिव्य स्वभाव बिजली और मेघो ! तुम बड़े रमणीय मार्ग से सुन्दर वीरों वाली उत्तम अन्न सामग्रियों को प्राप्त कराओ। यज्ञों में हवन के द्रव्यों को प्राप्त कराओ। वेद मन्त्रों के साथ हवन किए अन्न से वृष्टि हुए तुम बढ़ो ॥ प्र० ४(१) द० ५।७

(३३९) परमेश्वर के लिए अनादि वेद मन्त्र युक्त स्तुति वाणिएं हों, जो अन्तरिक्ष के मूल प्रदेश से वर्षा के जलों को प्रेरित करता है और जो रथ के दो पहियों को धुरे से जैसे घुमाते हैं वैसे बिजली और मेघों को प्रेरित करता है और जो भूमि और द्युलोक को सब ओर से थांभे है ॥ प्र० ४(१) द० ५।८

(३४०) हे परमेश्वर ! आप समस्त आकाश में और उसको उल्लंघन करके भी अदृश्य होकर व्याप रहे हैं। ऐसी कृपा हो कि आपके उपासक सब मनुष्य हों, आपके अनुकूल मित्र के समान बर्तें, आप हरएक पिता को संतान वृद्धि दीजिये। आप ही इस जगत में अत्यन्त प्रकाशमान हैं ॥ प्र० ४(१) द० ५।९

(३४१) देखिये परमात्मा का आश्चर्य कार्य कि कौन है जिस ने निराधार आकाश में बादलों के रथ में चमकीले तीव्र जल के भले प्रकार ले चलने वाले वह घोड़े जोड़े है ? उत्तर किसी ने नहीं, किन्तु यह उसी परमात्मा का काम है इसलिए जो इन देवी घोड़ों के मुख में भोजन पहुँचाता है अर्थात् यज्ञ करता है वह चिरञ्जीव होता है ॥ प्र० ४(१) द० ५।१०

(३४२) हे परमेश्वर ! गान में कुशल आपका गान करते हैं, पूजा में चतुर आपको पूजते हैं, यज्ञ के ब्रह्मा लोक आपको ऊँचा करते व प्रशंसित करते हैं ॥ प्र० ४(२) द० ६।१

(३४३) सब वाणियें आकाश व्यापी ईश्वर वा समुद्र में नौका आदि से व्यापने वाले राजा रथ वालों में अत्यन्त उत्तम रमणीय सूर्य आदि लोक रूपी रथों वाले ईश्वर वा महारथी राजा बलों के रक्षक, प्रकृति आदि नित्य पदार्थों के स्वामी ईश्वर वा सज्जनों के रक्षक राजा परमेश्वर वा राजा को गुणों से बड़ा होने से वर्णित करें ॥ प्र० ४(२) द० ६।२

(३४४) हे राजन ! इस सिद्ध हुए बड़े उत्तम दिव्य आनन्द को स्वीकार कीजिए। मुझ शुद्ध पवित्र के हृदय विशेष में सत्य की धारें आपको प्राप्त होवें ॥ प्र० ४(२) द० ६।३

(३४५) हे दुष्टों पर दण्ड धारक ! हे धन वाले ! हे आश्चर्य गुण कर्म स्वभाव वाले परमेश्वर ! जो धन मेरे समीप नहीं है, आपके दिये उस धन को हमारे लिए दोनों हाथों से दीजिए ॥ प्र० ४(२) द० ६।४

(३४६) हे परमेश्वर ! आप बड़े हैं अतः जो पुरुष आपको पूजता अर्थात् आपकी आज्ञानुसार चलता है, उस शुद्ध वीर्य ब्रह्मचर्य आदि वाले, गौ आदि पशु और पृथ्वी आदि के स्वामी की पुकार अन्तर्ध्यान हुए से सुनिए और विद्यादि धन दीजिए ॥ प्र० ४(२) द० ६।५

(३४७) हे अति बलवान, पापों के दबाने वाले परमेश्वर ! रक्षार्थ हमें प्राप्त हूजिए। आपकी प्रसन्नता के लिये शान्त भाव हमने उत्पन्न किया है। हमारा मन आदि आप में लगे। जैसे सूर्य किरणों से पृथ्वी आदि के रज

को लगता है, तद्वत ॥ प्र० ४(२) द० ६।६

(३४८) हे सुख में वास करने वाले ! हमको आज्ञा पहुँचाने वाले राज पुरुषों द्वारा सुख पहुँचाइए। और इस मुख्य इन्द्र मेधावी सुख के राजा परमेश्वर की अच्छी प्रशंसा को प्राप्त हूजिए ॥ प्र० ४(२) द० ६।७

(३४९) पुत्र-तुल्य प्रजाजनों में उसकी प्रशंसा युक्त वाणी आपको जैसे रथी शीघ्र चलता है वैसे सब ओर से आकर उपस्थित होती है। हे वाणी के सेवनीय ! आपकी ओर देखकर सब भली प्रकार प्रशंसा करते हैं। जैसे दुधारू गौवें बछड़े को देखकर प्रीति से रम्भाती हैं, तद्वत ॥ प्र० ४(२) द० ६।८

(३५०) हे मित्रो ! आओ आओ और पवित्र सामगान के साथ पवित्र स्तोत्रों में अति महान् पवित्र परमात्मा की स्तुति करें। पवित्र स्तोत्रों से आशीर्वाद युक्त वह शीघ्र हम पर प्रसन्न होवे ॥ प्र० ४(२) द० ६।९

(३५१) हे अन्नपते परमेश्वर ! जो आपका शान्त स्वभाव पुत्र तुल्य प्रजाजन, धन से अति धनवान और जो यशों में अति यशस्वी है, वह आपके लिए प्रसन्नताकारक हो ॥ प्र० ४(२) द० ६।१०

चतुर्थोऽध्यायः

(३५२) हे मनुष्यो ! इस इन्द्र अर्थात् योग आदि विद्या रूप ऐश्वर्यवान, ज्ञानवान, परम भोजन आदि की इच्छा वाले, विद्यापारगामी, विज्ञान में अधिक, पीछे न रहने वाले अग्रगामी के लिए सब आवश्यक वस्तुएँ समर्पित करो, क्योंकि वह भी तुम्हारा प्रत्युपकारकर्त्ता है अर्थात् गृहस्थों को इस मन्त्र में कहे लक्षण युक्त पुरुषों का सर्वथा आदर सत्कार करना चाहिए ॥ प्र० ४(२) द० ७।१

(३५३) हे योगविद्यादि ऐश्वर्ययुक्त ! हमारी आयु तथा बड़े अन्तःकरण में स्थित आयु में निवास करने वाले आत्मा और बड़े कर्मागत बुद्धि तत्व को आदेश कीजिए। हमारे भयानक वचन को दूर कीजिए ॥ प्र० ४(२) द० ७।२

(३५४) हे आत्मिक बल युक्त बहुत कर्म वाले, दुष्टों को दबाने वाले, सत्पुरुषों के पालक, योगविद्या आदि ऐश्वर्य युक्त आपको अपनी रक्षा और सुख के लिए सर्वथा हम भ्रमण कराते हैं। जैसे रथ को रक्षा और सुख के लिए भ्रमण कराते हैं, तद्वत ॥ प्र० ४(१) द० ७।३

(३५५) हे इन्द्र ! आप मेधावी कर्मों से पुण्यों में अग्रणीय पहिचाने जाते हैं। जिन आपके द्वारा मननशील मनुष्य बुद्धियों को उत्पन्न करता और विद्वानों में पितृतुल्य पूज्य हो जाता है ॥ प्र० ४(२) द० ७।४

(३५६) जहाँ रथ आदि विविध यानों में विराजमान और हर्षकारक मधुर आदि रसयुक्त सोम को पीने वाले शीघ्रगामी मरुत अर्थात् मुख्य विद्वान सहचर वर्ग पहुँचते हैं, वहीं अन्न, धन या यशों को करते हैं ॥ प्र० ४(२) द० ७।५

(३५७) उस अहिंसक बली सब पर प्रभाव रखने वाले नेता, अत्यन्त बुद्धिमान, सब धन वाले योग विद्या आदि ऐश्वर्य युक्त पुरुष को और उस को सहचरों को स्तुत करता हूं ॥ प्र० ४(२) द० ७।६

(३५८) हे योग विद्या आदि ऐश्वर्यशाली महात्मन ! आपके उपदेश से मैं जयशील, शीघ्रगामी, बलवान, दधिक्रवा नाम अग्नि की परिचर्या करूं जिससे वह हमारे मुखादि अंगों को सुगन्धयुक्त करे और हमारी आयुओं को बढ़ावे ॥ प्र० ४(२) द० ७।७

(३५९) पूर्ववत दधिक्रवा के यज्ञ में मेघनगरों का भेदन करने वाला, पुष्टांग गर्जने वाला अपरिमित बलयुक्त, वशाधीन होने से सब कार्यों का धारक अस्त्र वाला, वेदों में अधिकता से वर्णित विद्युत प्रकट होता है ॥ प्र० ४(२) द० ७।८

(३६०) हे यजमानो ! तुम वीरवन्दित वर्षा से पृथ्वी के भोगने वाले,

इन्द्र के लिये सोम का गान करो । और सोमादि अन्न की आहुति दो । वह कर्म से तुमको तथा आकाश और पृथ्वी को यश बाँटने के लिए सब ओर से सोचत करता है ॥ प्र० ४(२) द० ८।१

(३६१) स्वर्ग लोक के जानने वाले, ज्ञानवान योगी योगयज्ञ को निश्चित करके यह कहते हैं कि इन्द्र के जो दो हाथ जुड़े हुए धारण आकर्षण गुण हैं, जिन दोनों में सब ही कर्म हैं उन्हें तुम जानो अर्थात् बिजली के दो गुण हैं जिनसे सब जगत का कार्य सिद्ध होता है ॥ प्र० ४(२) द० ८।२

(३६२) परमात्मा उपदेश करता है कि हे नेता मनुष्यो ! हे यश के प्रचार करने वाले, यजन करने वाले और इष्ट पूर्ण करने वाले, और मेघ को दबा सकने और स्वयं न दबने वाले इन्द्र का यजन करो, बहुत यजन करो ॥ प्र० ४(२) द० ८।३

(३६३) हे मित्रो ! जिस प्रकार पिता पुत्रों में और मित्र मित्रों में उपदेश करता है, उसी प्रकार सर्वशक्तिमान ईश्वर अत्यन्त निरन्तर व्याप्ति वाले, अपने लिए वा विद्युत के लिए वृद्धिकारक वचन का उपदेश करता है ॥ प्र० ४(२) द० ८।४

(३६४) हे मनुष्यो ! मैं परमेश्वर सबके नेता बल के पति इन्द्र का तुम मनुष्यों के रथादि यानों की रक्षा के लिए और गतियों सहित उपदेश करता हूं ॥ प्र० ४(२) द० ८।५

(३६५) हे मनुष्य ! तेरा जो सखा अनुकूलवर्ती, आकाश के पदार्थों का नेता इन्द्र है, वह कर्म से बड़े आकाश के वस्तुमात्र की रक्षा से द्वेष करने वालों को उल्लंघन करता है । जैसे पाप को लांघते है, तद्वत ॥ प्र० ४(२) द० ८।६

(३६६) हे बहुत कर्म वाले ! सबके देखने वा प्रकाश करने वाले ! परमेश्वर ! तेरा बहुत धन का बड़ा दान है । इसलिए हमको दान दे ॥ प्र० ४(२) द० ८।७

(३६७) शुभ्र वर्ण वाली, प्रातःकाल की वेला ! तेरे आगमनों को देखकर मनुष्यादि और गौ आदि तथा पंखों वाले पक्षी भी अनेक दिशाओं से सब ओर अत्यन्त गमन करते हैं ॥ प्र० ४(२) द० ८।८

(३६८) ये जो प्रकाश में लोक है, इनके मध्य में क्या वेदवचन है ? क्या यज्ञ की सामग्री है ? क्या सनातनी यज्ञक्रिया है ? प्र० ४(२) द० ८।९

(३६९) जिन-जिन से अग्निहोत्रादि करते हैं उन वेद मन्त्र और गान को संगत करते हैं । वे मन्त्र और गान यज्ञमण्डप में विराजते हैं और वायु आदि देवतों में यज्ञ को पहुँचाते हैं ॥ प्र० ४(२) द० ८।१०

(३७०) मनुष्य लोग साथ मिलकर सब शत्रुओं के तिरस्कृत करने वाले, श्रेष्ठ, अत्यन्त स्थिर, सिंहासनरूढ़, शत्रुगणमारक, तेजस्वी, अत्यन्त प्रतापी, बली, वेगवान राजा को बनावें, और उसको राज्य करने के लिए और यज्ञ करने के लिए शस्त्र अस्त्र आदि सज्जित करें ॥ प्र० ४(२) द० ९।१

(३७१) हे राजन ! आपके सुख और विस्तृत तेज के लिए आदर करता हूँ । जिस प्रताप से नर सम्बन्धी कर्मों के विघ्नकारक दुष्ट जन को मारते हो, और कर्मों को विस्तृत करते हो. आपके बल से पृथ्वी डरे और दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोक आपके अनुकूल चलें अर्थात् वृष्टि आदि से द्युलोक और धान्यादि से पृथ्वी आपके विमुख न हों ॥ प्र०४(२) द० ९।२

(३७२) हे सर्व प्रजावर्ग ! तुम आत्मिक बल से परमात्मा की भली प्रकार शरण गहो, जो एक ही प्राणियों का सेवनीय है और वही सनातन विजय चाहने वाले नवीन धार्मिक राजा को एक ही मार्ग पर चलाता अर्थात् विजय कराता है ॥ प्र० ४(२) द० ९।३

(३७३) हे सर्वाधिक धनयुक्त ! परमेश्वर ! ये जो प्रत्यक्ष मनुष्य हैं और वे जो परोक्ष हैं और हम सब आप ही के हैं । और आपका अवलम्बन करके वर्तते हैं । हे स्तुतियोग्य ! आपके अतिरिक्त कोई वेदवाणियों को नहीं व्याप सकता । इसलिए हमारा स्तोत्र स्वीकार कीजिये, जैसे पृथ्वी अपने में उत्पन्न हुए प्राणीमात्र को स्वीकार करती है ॥ प्र० ४(२) द० ९।४

(३७४) बड़ी हमारी वाणी मनुष्यों के धारक, धन वा यज्ञ वाले,

प्रशंसनीय, बल धन आदि में बड़े बहुत पुकारे हुए, अमर, सुन्दर वेद वाणियों से प्रतिदिन स्तुति किये जाने वाले परमेश्वर को सर्वथा स्तुत करें ॥ प्र० ४(२) द० ९।५

(३७५) हे मनुष्यो ! तुम्हारी परम आनन्द चाहने वाली, सीधी सच्ची कामना करती हुई सारी बुद्धियाँ अच्छी प्रकार परमेश्वर को स्तुत करें। जैसे शुद्ध धनवान मनुष्य को धन-धान्य द्वारा अपनी रक्षा के लिए स्तुत करते हैं, तद्वत। जैसे स्त्रियाँ पति को आलिंगन करती हैं, तद्वत। मनुष्यों को जितना प्रेम स्त्री पुरुष के परस्पर भाव में है, यदि उतनी प्रेम और नम्रता परमेश्वर के लिए धारण करें, तो परमानन्द मिले ॥ प्र० ४(२) द० ९।६

(३७६) हे मनुष्यो ! उस काम-पूरक, बहुतों से पुकारे हुये, ऋचाओं से जानने योग्य, धन के समुद्र परमात्मा को वाणियों से प्रसन्न करो। जिसके कार्य व्यवहार मनुष्यमात्र में व्यापकर सर्वत्र वर्तमान है। परमानन्द भोगने के लिये उस अत्यन्त पूजनीय मेधावी को सर्वतः पूजित करो ॥ प्र० ४(२) द० ९।७

(३७७) जिसकी असंख्य सुन्दर भूमियाँ सुन्दर ऋचाओं के साथ एक साथ ही घूमती हैं, उस कामना के पूरक, आनन्द के दाता परमेश्वर को रक्षार्थ भले प्रकार पूज के मैं उसे सब प्रकार वर्तमान करूँ। जैसे अग्निमय आदि घोड़ों वाले बलयुक्त मार्ग पर चलने वाले विमानादि को सब ओर वर्तते हैं, तद्वत ॥ प्र० ४(२) द० ९।८

(३७८) हे परमेश्वर ! वरणीय आप के धारण से, उदक वाली, लोक-लोकान्तरों की आश्रय करने योग्य, बड़ी विस्तार वाली, जल को पूरित करने वाली, सुन्दर रूप वाली, न जीर्ण हुई, बहुत बीज वाली द्युलोक और पृथ्वी ठहरी हैं ॥ प्र० ४(२) द० ९।९

(३७९) हे परमेश्वर ! जो कि आप उषा के समान, दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोकों को, सर्वतः अपनी ज्योति से पूरित कर रहे हैं, इसलिए दिव्य जगज्जननी आपकी ज्योति, बड़ों के बड़े और मनुष्य आदि के राजा आपको प्रकट करती है। शोभना जगत की जननी आप की ज्योति आपको प्रकट करती है ॥ प्र० ४(२) द० ९।१०

(३८०) परमेश्वर का उपदेश है कि हे मनुष्यो ! प्रशंसनीय इन्द्र विद्युत के लिए हव्ययुक्त वचन को सुसंस्कृत करो। जो कि काले मेघ के गर्भ रूप जल को अपनी सरल बुद्धि से गिराता है। किस प्रकार वचन कहें ? कि वृष्टिकारक उत्तम वज्रयुक्त वायुगण सहित इन्द्र को अनुकूलता के लिए अपनी धनधान्यादि से रक्षा चाहने वाले हम हवन करते हैं, इस प्रकार ॥ प्र० ४(२) द० ९।११

(३८१) हे परमेश्वर ! सोम आदि ओषधियाँ तैयार होने पर स्तोत्र युक्त यज्ञ को आप पवित्र करते हैं। वही यज्ञ बड़े धन के लाभ के लिए बड़ा है ॥ प्र० ४(२) द० १०।१

(३८२) हे उद्गाताओ ! बहुत पुकारे हुए, बहुत स्तुत किए हुए, महान, उस ही परमात्मा को मुख्य करके स्तुत करो। और वाणियों से सेवित करो ॥ प्र० ४(२) द० १०।२

(३८३) हे मेघों और पर्वतों के स्वामी ! उस आप के कामना पूरक कामादि शत्रुओं के दबाने वाले, और लोकों के कर्ता व्यापक हैं शोभायें जिसकी, ऐसे आनन्द स्वरूप को हम प्रशंसित करते हैं ॥ प्र० ४(२) द० १०।३

(३८४) हे परमेश्वर ! सर्वव्यापक आप में जो अमृत है निश्चय आप्त योगियों में हुए इड़ा पिंगला सुषुम्णा के समुदाय में जो अमृत है अथवा प्राणों में जो अमृत है अथवा अन्यत्र जहाँ जहाँ अमृत है वहाँ-वहाँ अमृतों से, आप ही भले प्रकार आनन्दित करते हैं ॥ प्र० ४(२) द० १०।४

(३८५) हे यज्ञ के नेता ! मधुर रस युक्त हव्यान्न के प्रति हर्ष वा पुष्टि कारक रस को होम कर। ऐसा करने से सदा बढ़ने वाला गतिशील विद्युत अर्चित होता अर्थात् उस का यजन होता है ॥ प्र० ४(२) द० १०।५

(३८६) हे ऋत्विजो ! विद्युत के लिए सोम रस का हवन करो। वह सोम सम्बन्धी रस को पीता है और अपनी वृद्धि से धन धान्यादि की वृद्धार्थ प्रेरणा करता है ॥ प्र० ४(२) द० १०।६

(३८७) हे मित्रो ! आद्रवे-आद्रवे, जो कि एक ही सब मनुष्यों को तिरस्कृत करने में समर्थ है, उस स्तुतियोग्य सब के नायक इन्द्र पद के मुख्य वाच्य

परमेश्वर को शीघ्र स्तुत करें। यज्ञारम्भ में परमात्मा की स्तुति करनी चाहिए ॥ प्र० ४(२) द० १०।७

(३८८) वेद के कर्ता, ज्ञानदाता, मेधावी, सर्वज्ञ, महान, पूजनीय, इन्द्र पद के मुख्य वाच्य परमेश्वर के लिए बृहत नामक वा बड़ा स्वागत करो ॥ प्र० ४(२) द० १०।८

(३८९) जो सर्वेश्वर, जिस के प्रति कोई शब्द नहीं कर सकता ऐसा परमेश्वर, एक ही दानी पुरुष के लिए शीघ्र दानानुसारि धनादि विशेष करके देता है ॥ प्र० ४(२) द० १०।९

(३९०) हे मित्रो ! तुम्हारे अत्यन्त नेता सबको धर्षित कर सके आप धर्षित न हो सके ऐसे पापियों के दण्डप्रदाता परमेश्वर के लिए वेदोक्त स्तोत्र पाठ करो। और हम भी भली प्रकार प्रार्थना करते हैं ॥ प्र० ४(२) द० १०।१०

पञ्चमो प्रपाठकः

(३९१) कर्मों के पति परमेश्वर ! तेरे उस बल को योगयज्ञ वा कर्म-यज्ञ के लिए उत्कृष्टतापूर्वक वर्णित करता हूं, जिस बल से पाप को हनन करते हो ॥ प्र० ५(१) द० १।१

(३९२) मेघवर्षक ! विद्युत ! जिस सोम के हर्ष में उस मेघ को पृथ्वी से निकलने वाले ऊष्मा के लिए गिराता हुआ होता है, वह यह सोम तेरे लिए खींचता है। इस हवन किए हुए को पी ॥

जब मनुष्य सोमादि औषधियों से होम करते हैं, तब इन्द्र नामक मेघ वर्षाने वाली बिजली को मद (हर्ष) होता है। और वह दिवोदास के लिए मेघ को वर्षाता है द्युलोक का दास एक प्रकार की ऊष्मा है जो सदा भी पृथ्वी से निकलता रहता है। और मेघ वर्षने पर विशेष करके। वह घास पात अन्न आदि का उत्पादक है, वही दिवोदास है ॥ प्र० ५(१) द० १।२

(३९३) विद्युत ! हमारे प्यारे ! सब मेघों को जीतने वाले ! प्रकाशमय होने से न छिपने योग्य, मेघ के समान सब ओर फैला हुआ, अन्त-रिक्ष का पालक तू सब ओर व्यापता है ॥ प्र० ५(१) द० १।३

(३९४) हे बलिष्ठ ! विद्युत ! जो तेरा हर्ष तीव्र होता है और जिस से सोम का अत्यन्त पीने वाला तू मेघ को गिराता है, उस हर्ष को हम चाहते हैं ॥ प्र० ५(१) द० १।४

(३९५) हे परमेश्वर ! सुप्रकाशित द्यौ के पुत्र सूर्यादि लोक हमारे पुत्र और पौत्रादि के लिए जीवार्थ उस अतिदीर्घ आयु को करें अर्थात् आप की कृपा से सूर्यादि लोकों के प्रकाशादि फल हमारे सन्तानों की आयु के वर्धक हों ॥ प्र० ५(१) द० १।५

(३९६) हे वज्रतुल्य तीव्र किरण वाले सूर्य ! शोधने वाला तू प्रति-दिन अन्धकारों के वर्तन को अवश्य जानता है, जैसे कि प्रातःकाल चारों ओर जाने वाले पक्षियों को अपने-२ घोंसलों के वर्जने-छोड़ने को। जिस प्रकार सूर्योदय होते ही पक्षिगण अपने घोंसले छोड़ भाग जाते हैं, इसी प्रकार अन्धकार का दूर करना सूर्य भले प्रकार जानता है ॥ प्र० ५(१) द० १।६

(३९७) सूर्यकिरणें रोग को वर्जती हैं। बाधक दस्यु चोरादि को वर्जती हैं, कामादि विकार से दुष्ट बुद्धि को वर्जित करती हैं। हमको पाप से पृथक करती हैं। सूर्य की किरणों से कई रोग दूर होते हैं—चोरादि का भय दूर होता है। रात्रि में स्वाभाविक रीति पर काम आदि के विकार उत्पन्न होते हैं, उन को भी सूर्य की किरणें हटाती हैं। इसलिए किसी अंश में पाप को हटाना भी संभव है ॥ प्र० ५(१) द० १।७

(३९८) मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम-उत्तम ग्रावों से सोमरस अभि-षुत करें और सूर्य के लिए होमें। इस से सूर्य को हर्ष-अनुकूल प्रवृत्ति होती है। जिस प्रकार सुशिक्षित घोड़ा सारथी के हाथों से अभीष्ट मार्ग में प्रवृत्त रहता है, इसी प्रकार भली प्रकार के ग्रावा भी अभीष्ट उत्तम रस अभिषुत करते हैं। ग्रावा=पत्थर जिस से सोम रस निकाला जाता है ॥ प्र० ५(१) द० १।८

(३९९) हे राजन ! तू सदा से, जन्म से, शत्रुरहित सैनिकादि नर रहित और सुहृदय वा ज्ञातिरहित है, तथापि युद्धादि राजकार्यों के साथ सौहार्द को चाहता है ॥ प्र० ५(१) द० २।१

(४००) हे मित्रो ! जो राजा हमारे लिए प्रथम देखने योग्य दस

धनादि उत्तम पदार्थ को लाकर देता है, उस ही विजयी राजा की तुम्हारी रक्षा के लिए प्रशंसा करता हूं ॥ प्र० ५(१) द० २।२

(४०१) हे युद्धार्थ प्रस्थान करने वालो ! उलटे मत आओ, युद्ध विमुख मत होवो, किन्तु शत्रुओं को वश में लाने वाले तुम क्रोध सहित शत्रु-सैन्यों को मारो ॥ प्र० ५(१) द० २।३

(४०२) हे घोड़ों के स्वामिन ! गौओं के स्वामिन ! धान्ययुक्त पृथ्वी के स्वामिन ! सोमादि औषधि वर्ग के स्वामिन ! सोमरस पीजिए। आप प्रकाशमान के लिए यह मैं प्राप्त होता हूं। जब राजा विजय करता है तो सोमादि की भेंट के लिए शत्रुगण उपस्थित होते हैं और कहते हैं कि सोम रस को ग्रहण कीजिए ॥ प्र० ५(१) द० २।४

(४०३) हे कामों को पूरा करने वाले राजन ! हम सेनापति आदि लोग आप ही की सहायता से जीवते, वीर के मरने पर उसके स्थान में दूसरे जीवते हुए को युद्धार्थ बुलाते हैं ॥ प्र० ५(१) द० २।५

(४०४) युद्ध यज्ञ के ऋत्विज् वीर पुरुष समान तेज वाले, समान जाति होने से आपस में भाई-भाई, दिशाओं को व्यापते हैं। जिस प्रकार सूर्य की किरणें समान तेज वाली और एक सूर्य से जन्मने के कारण सबन्धु हो कर दिशाओं को व्याप्ती हैं, तद्वत ॥ प्र० ५(१) द० २।६

(४०५) हे बहुकर्मन ! बहुत चरादि द्वारा प्रजा का भेद देखने वाले ! राजन ! आप हमारे लिए बल और धन भरती कीजिए तथा संग्राम के सहने वाले वीर पुरुष भरती कीजिए ॥ प्र० ५(१) द० २।७

(४०६) हे वाणी के सेवनीय ! राजन ! आप से हम याचना करते हैं तब ही अभीष्ट कामना को समीप स्पर्श करते हैं, जैसे जल के साथ चलने वाले जलों को स्पर्श करते हैं। अर्थात् जो जलों के समीप जाते हैं, वे जलों को जैसे प्राप्त होते हैं, या जो जल में घूमते हैं, वे जैसे सब ओर से तर हो जाते हैं; इसी प्रकार जब हम सर्वैश्वर्य सम्पन्न के समीप जाकर याचना करते हैं, तो कामना तत्काल पूरी हो जाती है ॥ प्र० ५(१) द० २।८

(४०७) हे राजन ! पृथ्वी पर पके मधुर रस वाले, हर्षकारक, प्राण

पहुँचाने वाले धान्यादि पर जैसे पक्षिगण आते हैं, वैसे सुखेच्छु हम लोग आप को प्राप्त होते हुए आप को अभिमुखता से अत्यन्त प्रणाम करते हैं। ईश्वर के विषय में भी ऐसा जानो ॥ प्र० ५(१) द० २।९

(४०८) हे राजन ! आप की रक्षा चाहते हुए हम लोग विविध कर्म वाले आपको कर आदि देने से भरते हुए आप को ही पुकारते हैं। जैसे किसी धान्यादि धरने की कोठी कुठले को भरते हैं कि आवश्यकता के समय इस से प्राण रक्षा करें ॥ प्र० ५(१) द० २।१०

(४०९) किरणें जो सूर्य के साथ रहने वाली हैं, जो बिताने वाली हैं, वे स्वादु व्याप्ति वाले मधुर सोमादि रस का पान करती हैं। वर्षाने वाली बिजली के सहित हृष्ट प्रतीत होती हैं, सूर्य के साथ शोभित होती हैं। इसी प्रकार राजा के साथ रानियें भी प्रजा से करादि ग्रहण, शोभा रक्षा और निवास करावें ॥ प्र० ५(१) द० ३।१

(४१०) हे बलिष्ठ राजन ! जिस प्रकार हर्षकारक सोमादि औषधि रस बड़ा बढ़ाव करता है, इस ही प्रकार आप भी बल से आकर मारने वाले दस्युवर्ग को अपने राज्य की भूमि से दूर भगाए, और तत्पश्चात् अपने राज्य को ऋद्ध वृद्ध करते हुए वरतिये ॥ प्र० ५(१) द० ३।२

(४११) उपद्रवियों के मारक ! राजा वा सेनापति हर्ष और बल के लिए वीर पुरुषों से बढ़ता है। उस ही रक्षक को बड़े संग्रामों और छोटे उपद्रवों में हम पुकारते हैं। वह छोटे बड़े सब उपद्रवों में हमारी रक्षा करें ॥ प्र० ५(१)द० ३।३

(४१२) हे मेधावी पर्वततुल्य दुर्गों वाले, शस्त्रास्त्र वाले राजन ! आप का वह स्वाभाविक पुरुषार्थ बल आप के लिए ही है जिस बल से ही उस मृगवत् धूर्त छली शत्रु को बुद्धि चातुर्य से आप मारते हैं ॥ प्र० ५(१) द० ३।४

(४१३) हे राजन ! उग्र भाव से प्राप्त हूजिये। शत्रुओं का सामना कीजिए और तिरस्कार कीजिए। आप का वज्र शत्रुओं के प्रति घात नहीं पाता। आप का बल ही धन है क्योंकि राजबल से ही धन की वृद्धि और

रक्षा होती है। शत्रु का हनन कीजिए और कर्मों का विजय कीजिये ॥ प्र० ५(१) द० ३।५

(४१४) हे राजन ! जब संग्राम उठते हैं तो जो शत्रु को घर्षण करे। उस के लिए धन धारण किया जाता है। आप शत्रुओं का मद चुकाने वाले घोड़े जोड़िए और किसी शत्रु को वध कीजिये, किसी मित्र को धन में धारण कीजिये। हम को धन में धारण कीजिये ॥ प्र० ५(१) द० ३।६

(४१५) हे राजन ! आप अपने घोड़े को शीघ्र जोड़िये, जिससे प्रीतियुक्त, अपने आप प्रकाश करने वाले मेधावी विद्वान लोग भोगों को प्राप्त हों, हृष्ट हों, अत्यन्त नूतन बुद्धि के सहित वर्तमान हुए आप की प्रशंसा करें। विरुद्ध शत्रुगण को दूर करें ॥ प्र० ५ (१) द० ३।७

(४१६) हे धनैश्वर्यवन राजन ! हमारी प्रार्थनायें शीघ्र ही भली प्रकार श्रवण कीजिये तथा कभी प्रतिकूल से मत हूजिये। और हम को सत्य-प्रिय वाणी वाले ही कीजिये—यही प्रार्थना किये जाते हैं ॥ प्र० ५ (१) द० ३।८

(४१७) परमात्मा का उपदेश है कि हे द्यावा पृथ्वी में स्थित जनो ! सुन्दर गति वाला चन्द्र लोक अन्तरिक्ष में होने वाले जलों के मध्य सूर्य के प्रकाश में दौड़ता है तथा तेजोमय छोर वाली विजलियां तुम्हारे विषय को नहीं प्राप्त होती हैं। उस का सूक्ष्म भेद मुझ से जानो। परमात्मा का उपदेश है कि जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी विद्युदादि पदार्थों में गूढ़ घनिष्ट सम्बन्ध है, इसी प्रकार राज प्रजागणों में घनिष्ठ सम्बन्ध है ॥ प्र० ५ (१) द० ३।९

(४१८) मधुर स्वभाव हे पृथ्वी और द्युलोक के निवासियो ! प्रशंसा करने वाले वेदमन्त्र तुम्हारे कामपूर्वक धनप्रापक अतिप्रिय रमणीय मार्ग को समर्थ करता है। मेरे इस उपदेश को श्रवण करो ॥ प्र० ५ (१) द० ३।१०

(४१९) दिव्यगुणयुक्त प्रकाश स्वरूप परमात्मा ! प्रकाशयुक्त जरारहित आप को हम आत्मा में वा यज्ञकुण्डादि में प्रकाशित करें, जो कि प्रसिद्ध यह आपकी प्रशंसायोग्य दीप्ति आकाश में प्रकाश करती है, उपासकों तथा याज्ञिकों के लिए आनन्द वा अन्नादि प्राप्त कराइये ॥ प्र० ५(१) द० ४।१

(४२०) आप महान हैं अतः जैसे व्यापने वाले, शोधक प्रकाश वाले, जिस के लिए यज्ञ विस्तीर्ण किया जाए उस अग्नि को, अग्निहोत्रादि यज्ञों में कर्मकाण्डी लोग विशेष प्रकार से वर्णन करते हैं, वैसे ही आप की अपनी की हुई स्तुतियों से हम ज्ञानकाण्डी लोग वरण करते हैं ॥ प्र० ५(१) द० ४।२

(४२१) जिस में ठीक २ श्रवण होता है वैसी···जिस का अंग शोभा युक्त है ऐसी·· जिस में प्रिय शब्द व्याप जाता है इस प्रकार की ! विस्तार वाली ! प्रभात वेला ! जिस प्रकार हम को पूर्व जगाती रही है, उसी प्रकार अब भी प्रकाश वाली तू महा धनधान्यादि के लिये हम को जगा ॥ प्र० ५(१) द० ४।३

(४२२) परमेश्वर ! हमारे मन को सुखदायी चतुर और शुभ कर्म को प्राप्त करा, तेरे अनुकूलवर्तिता में भोजनादि के हर्ष में हम तेरा स्वीकार करते हैं। जैसे प्रीति युक्त गौवें घास आदि में हर्ष को पाती है, तद्वत ॥ प्र० ५(१) द० ४।४

(४२३) हे राजन ! कर्म से बड़े आप अन्नादि सहित सेनाबल को व्यूह आदि की रीति से रच कर घुमाते हैं। शत्रुओं को भयंकर महान सुन्दर ठोड़ी और नासिका वाले वीराकृति युक्त अश्वयुक्त आप लक्ष्मी के समीपवर्त्ती दोनों हाथों में लोहमय शस्त्र को नितरान् धारण करते हैं ॥ प्र० ५ (१) द० ४।५

(४२४) हे राजन ! वही उस पृथ्वी के राज्य के प्रापक कामपूरक रथ में बैठे, जो अधिकारी घोड़ों का जोड़ना पूर्ण जानता है (अज्ञानी रथी न होवे) हे ऐश्वर्यवान ! आप अपने घोड़ों को शीघ्र जोड़िये ॥ प्र० ५ (१/ द० ४।६

(४२५) हे राजन ! जो आठ वसुओं में एक है, उस अग्नि को मैं मानता, प्रशंसित करता हूँ, जिस अस्त्रप्रयुक्त को गौवें प्राप्त होती हैं, और जिस अस्त्रप्रयुक्त को चालाक शीघ्रगामी घोड़े प्राप्त होते हैं, जिस अस्त्र के फैंके हुए को चिरस्थायी रत्नादि पदार्थ प्राप्त होते हैं। इसलिए हे राजन ! अग्न्यादि पदार्थों के गुण वर्णन करने वाले के लिए अन्नादिवृत्ति पूर्ण कीजिये ॥ प्र० ५(१) द० ४।७

(४२६) हे प्रीतियुक्त विद्वानो ! जिस प्रजाजन को न्यायकारी सर्व-हितकारी श्रेष्ठ राजा शत्रुओं को उल्लंघित करके ले चलता है, उस जन को पाप नहीं व्यापता और न पापजनित दुःख व्यापता है। भले प्रकार राजशासन में सब जन पाप और दुःख भोग से बचते हैं ॥ प्र० ५ (१) द० ४।८

(४२७) हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! अकथनीयरस आप मित्र पुष्टिकर्ता और ऐश्वर्यशाली पुरुष के लिए आनन्द बर्षाओ ॥ प्र० ५ (१) द० ५।१

(४२८) हमारे बल लाभ के लिये सहनशील ऋणों को दूर करने वाले आप अवश्य उत्तम आनन्द सब ओर से बर्षाइये, और द्वेष करने वाले रुकावट-विघ्न डालने वाले कामादि शत्रुओं को मारने को सब ओर से आप प्राप्त हैं ॥ प्र० ५ (१) द० ५।२

(४२९) हे शान्तिस्वरूप परमात्मन ! बड़े जिस आप में सब प्राणी आनन्द कर रहे हैं, ऐसे देवताओं के पिता आप सब धामों को सर्वतः पवित्र कीजिये ॥ द० ५।३

(४३०) हे परमात्मन ! शुद्धस्वरूप बिजली के समान बलिष्ठ आप बड़े बल और धन के लिये हमारे व्यवहारों को शुद्ध कीजिये ॥ प्र० ५ (१) द० ५।४

(४३१) कल्याणस्वरूप परमैश्वर्यवान मेधावी परमेश्वर कर्मों के उपस्थान में आनन्द और धनादि ऐश्वर्य के लिये हम को पवित्र करे ॥ प्र० ५ (१) द० ५।५

(४३२) हे सोम ! परमात्मन ! महान ! जहाँ सब मनुष्य समान हों, ऐसे राज्य में उत्पन्न किये वा हृदय में साक्षात किये तुम को ही वीर लोग के हर्ष वा आनन्द प्राप्त करें। हे पवित्रकारक ! तू बलों को सर्वतः विलोड़ित करता है ॥ प्र० ५ (१) द० ५।६

(४३३) अब ऐसे आनन्दभागी प्राण के सुन्दर ले चलने वाले नीतियुक्त साथ मिल कर रहने वाले मनुष्य कौन हैं—उत्तर सामर्थ्य से मस्त अर्थात क्रिया-यज्ञ वा योगयज्ञ के ऋत्विज हैं ॥ प्र० ५ (१) द० ५।७

(४३४) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन ! आप के प्राप्त कराने वाले गुणकीर्त्तनों से अश्व के समान और बुद्धि के समान हृदय के प्यारे उस सुख को आज यज्ञ के दिन हम बढ़ावें ॥ प्र० ५ (१) द० ५।८

(४३५) प्रकाशमान द्युस्थान भौतिक देवताओं में ३० वें देवता प्रेरक देव के यज्ञ को नख पुष्टि पर्यन्त प्राप्त हों, और हे मनुष्यो ! तुम सुख विशेष को प्राप्त हुए उच्चता से वर्त्तो ॥ प्र० ५ (१) द० ५।९

(४३६) हे सोम ! अन्नवान अर्थात् पुष्टिवान, सुन्दर धार वाला, उत्तम रक्षक पदार्थों में मुख्य क्रम से शुद्धि कर। अर्थात् सोम ऐसा खींचना चाहिये कि जिस से वह स्वच्छ उत्तम धारायुक्त हो। ऐसा करने से, यह क्रम से पुष्टि रक्षा और शुद्धि करता है ॥ प्र० ५ (१) द० ५।१०

(४३७) हे सब ओर से दाता ! हम को सब ओर से पोषित करो। जिस आप बलिष्ठ की हम याचना करते हैं ॥ प्र० ५ (२) द० ६।१

(४३८) यह भक्तों को बढ़ाने वाला जो प्रत्येक ऋतुओं में हितकारी इन्द्र नाम से व्याख्यात है, उसे स्तुत करता हूं ॥ प्र० ५ (२) द० ६।२

(४३९) सूर्यतुल्य मारक पाप को मारने के लिये निश्चय करके चतुर्वेदवेत्ता लोग मन्त्रों से परमेश्वर को पूजते हुए प्रसन्न करते हैं ॥ प्र० ५(१) द० ६।३

(४४०) मनुष्य लोग शीघ्र मोक्षप्राप्त्यर्थ आप को रथ बनाते हैं। हे बहुतों से पुकारे हुए परमात्मन ! विद्या से प्रदीप्त पुरुष आप को प्रकाशमान शस्त्र बनाता है ॥ प्र० ५ (२) द० ६।४

(४४१) हे इन्द्र ! यज्ञादि सुकृत न करने वाले कृपण पुरुष धन को छूने भी नहीं पाता, तथा अभीष्ट पदार्थों को नहीं प्राप्त होता। परन्तु यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में धन देने वाले के लिए कल्याण स्थान और धन होता है ॥ प्र० ५ (२) द० ६।५

(४४२) हे परमेश्वर ! जो विश्व का अन्न आदि दान से धारण पोषण करते हैं पापाचरण नहीं करते, दानादि गुणयुक्त पुरुष हैं वे सदा पवित्र रहते हैं, जिस प्रकार गौ सदा शुद्ध रहती हैं ॥ प्र० ५ (२) द० ६।६

(४४३) हे परमेश्वर ! जब कि उषा देवता आवे, तब गौ रूपी वाणियाँ दुग्ध भरे स्तनों सहित मार्ग को संगत हों ॥ प्र० ५ (२) द० ६।७

(४४४) हे परमात्मन ! हम लोग आत्मिक आनन्द युक्त क्षेत्र में रहते हुए विद्या आदि धन को पुष्ट करें और आप का ध्यान करें ॥ प्र० ५ (२) द० ६।८

(४४५) शोभन मन्त्रों वाले स्तोत्रयज्ञ के ऋत्विज लोग पूजनीय ईश्वर को पूजते हैं, और वह महाबली वेदों में विख्यात परमेश्वर स्तुत करते हैं ॥ प्र० ५(२) द० ६।९

(४४६) रोकने वाले काम क्रोधादि शत्रुओं के अत्यन्त विनाशक मेधावी परमेश्वर के लिए स्तोत्र को प्रकर्ष से पढ़ो, तुम्हारे जिस स्तोत्र को वह परमेश्वर प्रीति करता है ॥ प्र० ५ (२) द० ६।१०

(४४७) जिस का शोभावान रथ रमणीय तेजःस्वरूप है, जो हवन किये द्रव्यों को स्थानान्तरों में पहुँचाता है, उस अग्नि के समान एक चेतन अग्नि (परमात्मा) उपासकों से ज्ञात किया जाता है, जो ज्योति स्वरूप है और प्राणिमात्र के कर्म रूप हव्य का पहुँचाने वाला है ॥ प्र० ५।२ द० ७।१

(४४८) हे प्रकाशस्वरूप ! अन्तर्यामी होने से अत्यन्त समीपस्थ और वरणीय भजनीय आप हमारे रक्षक और सुखदायक हूजिये ॥ प्र० ५ (२) द० ७।२

(४४९) यज्ञों में सूर्य सा तेजस्वी परमात्मा अद्भुत स्वरूप विद्यादि धन को धारण करता अर्थात् देता है ॥ प्र० ५ (२) द० ७।३

(४५०) जिस की सर्वोत्तम स्तुति है ऐसे हे इन्द्र ! परमात्मन ! तू यदि सब की नगरी बसाता है, तो यहाँ हमारी अवसर बताओ ॥ प्र० ५ (२) द० ७।४

(४५१) हे परमेश्वर ! जिस प्रकार प्रभात वेला अपनी बहन रात्रि के अन्धकार को अपने शोभन जन्म से लौटने के मार्ग को लौटाती है, इसी प्रकार आप हमारे हृदय के अन्धकार को दूर करें ॥ प्र० ५ (२) द० ७।५

(४५२) हे परमेश्वर ! जीवात्मा और समस्त इन्द्रियाँ तथा यह भवन सुख को साधें ॥ प्र० ५ (२) द० ७।६

(४५३) हे परमेश्वर ! जिस प्रकार प्रवाह मार्ग से नदियाँ प्राप्त होती हैं, इसी प्रकार आप से विद्यादि दान प्राप्त हों ॥ प्र० ५ (२) द० ७।७

(४५४) इस प्रार्थना से हम ईश्वरदत्त बल को संभाग पूर्वक लेवें ! और सुन्दर पुत्रादि युक्त हम १०० वर्ष पर्यन्त हर्ष को प्राप्त हों ॥ प्र० ५ (२) द० ७।८

(४५५) हे परमेश्वर ! आप तथा सूर्य और वृष्टि जल, वे सब रस से अन्नों को पुष्ट करो तथा हमारे लिए पुष्ट अन्न को उत्पन्न करो ॥ प्र० ५ (२) द० ७।९

(४५६) जिस कारण परमेश्वर सूर्यादि सब का राजा है, इसलिए सूर्य और वर्षा के जल आदि को प्रेरित करके हमारे लिए रसीले पुष्ट धान्यादि उत्पन्न करे ॥ प्र० ५ (२) द० ७।१०

(४५७) बड़ा और बहुत बल (अर्थात् आकर्षण) वाला सूर्य तृप्त होता (किस से सो कहते हैं :—ज्योति गौ आयु इन नामों वाले 'गवामयन' नामक यज्ञ के अभिप्लविक नाम ३ दिनों में सम्पादित यवधान्य के सत्तु मिले हुए सोम रस को व्यापक वायु के सहित पीता है, वह सोम इस सूर्य को हृष्ट करता है, और वह सच्चा दिव्य सोम इस सच्चे देव महान किरणों से फैले हुए सूर्य को पहुँचाता है ॥ प्र० ५ (२) द० ८।१

(४५८) सूर्य बहुत प्रकाश वाला, दिखाने वाला और इसी से बुद्धिमानों की बुद्धि को जगाने वाला है और धारक है । वह सब अपनी किरणों के समूह जहाँ-जहाँ पृथ्वी चन्द्र वा अन्य लोक में प्रभात काल करने वाली किरणें भेजता है वहाँ-वहाँ तब-तब दिन होता है । इस प्रकार सूर्य से लोकान्तरों में प्रकाश संचित वा उपचित होता है ॥ प्र० ५(२) द० ८।२

(४५९) हे परमेश्वर ! हम को जो तुझ से दूर से हो गए हैं, प्राप्त हूजिए। यह पृथ्वी आदि का आकर्षण से रक्षक सूर्य अभिव्याप्त होने को जिस प्रकार यज्ञों को प्राप्त होता है तद्वत। सज्जनों का पालक राजा जैसे न्यायासन गृह को प्राप्त होता है तद्वत। सोम उत्पन्न होने पर सोम-रस रूप जल लिए हुए हम बल लाभार्थ पूजनीयतम आप को पुकारते हैं, जैसे बचे बल वा अन्न के लाभार्थ बाप को पुकारते हैं तद्वत ॥ प्र० ५।२ द० ८।३

(४६०) अत्यन्त बलवान, न दबने वाले, जिसके सम्मुख कोई बल न चला सके उस सच्चे बहुत यशों को धारण किए हुए पूर्व मन्त्र में वर्णित परमेश्वर को बारम्बार पुकारता हूं। अति दाता, दण्डनायक, पूजनीय वह परमेश्वर सब ओर वर्तमान है, और हमारी स्तुतियों से विद्यादि धनार्थ सब अच्छे मार्ग बनावे ॥ प्र० ५(२२) द० ८।४

(४६१) हे परमेश्वर ! प्रणयनादि कर्म से, वा बुद्धि से सामने की व्यवधान रहित उत्तर वेदी में वा साक्षात आहवनीय नाम अग्नि, वा परमेश्वर को मैं आधान करता, वा धारण करता हूँ। उस अग्न्याधान सम्बन्धी उत्तम बल को हम वरते हैं (अपने अभिप्राय से बहुवचन है)। शीघ्र वेदी की नाभी वा अपने नाभिचक्र में नये उदय हुए सूर्य, वा प्राण के लिये हव्य देकर, वा शुद्धि करके जब प्रसिद्ध काम करने वाले बिजली और वायु, वा मन और प्राण को वरण करते हैं, तब इसके पश्चात हमारी सब अंगुलियाँ, वा हमारे सब कर्म वायु आदि, वा प्राणादि देवताओं को अभिव्याप्त होने के समान अवश्य प्राप्त होते हैं। सो यह श्रवण हो ॥ प्र० ५ (२) द० ८।५

ऋत्विज लोगों की शाला से पश्चिम की ओर 'प्राचीनवंश' नामक यज्ञवेदी की दक्षिण दिशा में धनुषाकार एक कुण्ड होता है, उसमें की अग्नि 'दक्षिणाग्नि' कहाती है। उत्तर में कुण्ड नहीं होता। पश्चिम में गोलाकार कुण्ड होता है उसमें की अग्नि गार्हपत्य कहाती है। पूर्वदिशा में चोखूंटा कुण्ड होता है उसमें की अग्नि 'आहवनीय' कहाती है। और पूर्वदिशा में ही पूर्वोक्त कुण्ड से आगे एक और कुण्ड भी होता है उसे 'उत्तरवेदी' वा पत्नीवेदी कहते हैं। उसके मध्य की भूमि 'नाभि' कहाती है। उसमें अध्वर्यु और प्रति-

हार के कर्म होते हैं। किन्तु होता का होम सम्बन्ध वा अग्नि सम्बन्ध उससे कुछ नहीं होता। इस प्रकार 'पुरः' शब्द से पूर्वदिशा की पहली अव्यवहित चोखूंटी वेदी का ग्रहण है। निघण्टु २।१।६।२।५

(४६२) परमात्मा आशीर्वाद देते हैं कि हे ज्ञानप्रापक वेदों के जानने वाले मनुष्य ! बड़ाई के लिये, ऋत्विजों वाले यज्ञ के लिये, उत्तम बल के लिये, जिससे यज्ञ करते हैं उसके लिये, सुखपूर्वक भोग के लिये, फुर्ती के लिये, कल्याण सुख संगति के लिये, चलने फिरने के काम के लिए, और मानस बल के लिये, तुम्हारी प्रार्थना वाणियों में उपजी बुद्धियाँ तुम्हें उच्च भाव से प्राप्त हों ॥ प्र० ५(२) द० ८।६

(४६३) हे मनुष्य ! इस रस खींचने वाली चमक से जैसे सूर्य साथ जुड़ी किरणों से सब विरोधी अन्धकारों को नष्ट करता है, ऐसे ही पवित्रात्मा पुरुष सब द्वेषादि दुर्गुणों को साथ जुड़े प्रज्ञानों से नष्ट करता है। और जैसे रूपवान सूर्य और सूर्य के धरातल की ज्योतिरूप धारा चमकती है, और सब रूप वाली वस्तुओं को लाल रंग रूप मुख वाली तेजों से व्याप्ता है, ऐसे ही पवित्रात्मा पुरुष भी प्रशंसाओं की सर्वतोविख्याति से व्याप्त जाता है ॥ प्र० ५(२) द० ८।७

(४६४) मनुष्य परमात्मा के प्रति निवेदन करता है कि हे पिता ! उन आप सुखदायक द्यु और पृथ्वी के उत्पादक, सर्वज्ञ बुद्धि वाले, सच्चे ऐश्वर्य वा सृष्टि वाले, रमणीय प्रज्ञान वा हीरे आदि वा लोकों के धारक, सब ओर से प्यारे, विद्वानों के माननीय, वेद विद्या के उपदेश को सर्वतः पूजता हूँ। जिस आप को उच्च दीप्ति से जड़ प्रकृति उत्पत्ति समय पर प्रकाशित हो जाती है, वह तेजःस्वरूप सुकर्मा आप अपने सामर्थ्य से सूर्य और तदुपलक्षित अन्य लोकों को रचते हैं ॥ प्र० ५(२) द० ८।८

(४६५) हे परमेश्वर ! मैं अग्नि को होत्रसाधक, धन का दाता, (बल करके अरणियों में से अग्नि उत्पन्न होता है इस कारण) बल के पुत्र, जिसके प्रकाश से ज्ञान प्रकट होता है ऐसा मानता हूं। जैसे, विद्या जिससे उत्पन्न है उस विद्वान को। जो प्रकाशमान यज्ञ का सुधारने वाला अग्नि

वायु आदि देवताओं को जाने वाली सामर्थ्य से हवन किये जाते हुए, तापे हुए श्वेतवर्ण घी की चमक के साथ ऊपर जाता है ॥ प्र० ५(२) द० ८।९

(४६६) ईश्वरीय बल की महिमा—हे सूर्य आदि को नचाने वाले ! परमेश्वर ! आप का वह मनुष्यहितकारी आकाश में विस्तृत सनातन किया हुआ प्रशंसनीय कर्म है कि जो कोई ईश्वरोपासक आप के बल से जीवता हुआ कर्मों को प्रारम्भ करे तो वह बहुकर्मा सब देवविरोधिमात्र को पुरुषार्थ से तिरस्कार करे और पराक्रम को पावे, तथा अन्नादि सब सामग्री को पावे ॥ प्र० ५ (२) द० ८।१०

पावमान काण्डम

आग्नेय और ऐन्द्र नाम के दो काण्डों के पश्चात अब पावमान या सौम्य पर्व का आरम्भ होता है। सोम का मुख्य अर्थ तो परमेश्वर ही है क्योंकि असीम भाव से इस पद की सम्भावना परमात्मा में ही है परन्तु अधिदैविक अर्थ से सोम एक औषधि है, चन्द्रमा को भी सोम कहते हैं। सोम पद से महीने का अर्थ और प्राण का अर्थ भी लिया जाता है।

पंचमो अध्याय

(४६७) हे सोम ! तेरे भोजन से उत्पन्न सुख को, और बड़े यश को, सुखस्थान में विद्यमान को, भूमस्थ पुरुष ग्रहण करता है। सोमरस दूध के समान सफेद रंगवाली लताओं से निकलता है यह बात ऋग वेद में (९।१०७।९ में भी लिखी है ॥ प्र० ५(२) द० ९।१

(४६८) यह सोम विद्वान वा राजा के लिये सुनने व पीने के लिये सम्पन्न किया हुआ स्वादिष्ट और अति हर्षकारक धारा से प्राप्त हो ॥ प्र० ५(२) द० ९।२

(४६९) बल सहित सब गुणों को धारण किये हुए और हर्षकारक, और वीर्य वृद्धि कारक सोम ! इन्द्र के लिए धार से प्राप्त हो ॥ प्र० ५(२) द० ९।३

(४७०) हे सोम ! जो तेरा स्वीकार करने योग्य देवों का रक्षक और असुरों का नाशक हर्षकर प्रभाव है उस आदरयोग्य अन्न से प्राप्त हो ॥ प्र० ५(२) द० ९।४

(४७१) ऋग् यजुः और साम तीन लक्षणयुक्त वाणियों को ऋत्विज लोग उच्चारते हैं और दुधारु गौवें दोहने को पुकारती हैं तथा सोम अग्नि में

गिरते हुए निरंतर जलमय होने से चिटपिटा शब्द करता हुआ जाता है। अर्थात् सोमरस की धार चिटचिटाती अग्नि में पड़ती है ॥ प्र० ५(२)द० ९।५

(४७२) हे सोम ! अति माधुर्ययुक्त, वायु युक्त मेघस्थ विद्युत् को प्राप्त हो यज्ञ की वेदि को समीप करके बैठता हूं अर्थात् वेदि के समीप बैठकर अति मधुर रस युक्त सोम की आहुतियें दी जाती हैं ॥ प्र० ५(२) द० ९।६

(४७३) वृद्धि के लिये सोम खींचा जाता है पर्वत पर उत्पन्न होता, वा मेघमण्डल में स्थित हुआ अन्तरिक्ष जल में बलिष्ठ होता और बढ़ता है। यह सोम बिजली के समान अपने कारण को प्राप्त हो जाता है ॥ प्र० ५(२) द० ९।७

(४७४) सोम ! बलसाधक हर्षकारक ऋत्विजों के लिए वायु तथा अन्य व्यावहारिक देवताओं के लिए प्राप्त हो ॥ प्र० ५(२) द० ९।८

(४७५) पहाड़ी सोम खींचा हुआ शुद्ध पात्र द्रोणकलिश आदि में निचोड़ा जाता है। वह हर्षार्थ सब का धारण करने वाला वा सब से धारणे योग्य है ॥ प्र० ५(२) द० ९।९

(४७६) तीव्र बुद्धि, मेधावी—आकाश पृथ्वी का हितकारी पुरुष सोम खींचने वाले अपने साथी अध्वर्युओं सहित सुखस्थान की प्यारी आयुओं को सब ओर से प्राप्त होता है ॥ प्र० ५(२) प्र० ५ (२)द० ९।१०

(४७७) मद चुने वाले (पतके) खींचे हुए सोम हम हवि वालों के में अन्न वा यश के लिये जाते हैं ॥ प्र० ५(२) द० १०।१

(४७८) बुद्धि वर्धक सोम जल की लहरें सी महान जलों के प्रति जाते हैं। प्र० ५(२) द० १०।२

(४७९) हे सोम ! वीर्यवर्द्धक, वा कामना करने वाला खींचा हुआ, वा हृदय कमल में साक्षात किया हुआ तू प्राप्त हो। और मनुष्य वर्ग में हमको तस्वी कर तथा सब शत्रुओं वा काम, क्रोध आदिकों को नष्ट कर ॥ प्र०५ (२) द० १०।३

(४८०) हे पवित्र कारक सोम, परमेश्वर ! प्रकाश से दीप्तमान सुख दिखाने वाले तुझको हम हवन करते वा पुकारते हैं। निश्चय तू वीर्य-वर्द्धक वा कामना पूरक है ॥ प्र० ५(२) द० १०।४

(४८१) मन का बढ़ाने वाला, बुद्धि को जगाने वाला, इसी से बुद्धिमानों का प्यारा सोम प्राप्त हो, जैसे रथी रथ के घोड़े को छोड़े ॥ प्र० ५(२) द० १०।५

(४८२) गौओं की इच्छा से, अश्वों की अभिलाषा से, और पुत्रों की आकांक्षा से बलिष्ठ, वीर्यवर्द्धक वेग वाले सोम अग्नि में छोड़े जाते हैं ॥ प्र० ५ (२) द० १०।६

(४८३) सोम ! दिव्यगुणयुक्त तू जिसके साथ मिल जावे इस प्रकार वायु को स्वभाव से चढ़ और तेरा हर्षकारक प्रभाव सूर्य वा मेघस्थ विद्युत को जावे, इसलिए प्राप्त हो ॥ प्र० ५(२) द० १०।७

(४८४) सोम (हवन किया हुआ) आकाश से विस्तीर्ण बड़ी बिजली की ज्योति को विचित्र सी उत्पन्न करता है ॥ प्र० ५(२) द० १०।८

(४८५) अभिषुत किये हुए सोम महती वेद वाणी के साथ मधुर धार से वायु विद्युत आदि देवों के मदार्थ सब ओर जाते हैं ॥ प्र० ५(२) द० १०।९

(४८६) बुद्धिमान यजमान बहुतों से चाहे हुए स्तोता ऋत्विज को धारण किये हुए मन की लहर पर ठहरे हुवा सोम को अग्नि में होम करता है। प्र० ५ (२) द० १०।१०

अथ षष्ट: प्रपाठक:

(४८७) वायु बिजली आदि देवता स्वच्छ किये हुए पत्थरों से छेदे हुवे मेघस्थजलों में जाने वाले उत्तम उत्पन्न हुए सोम को अपनी-अपनी किरणों से समीप प्राप्त होते ही हैं। प्र० ६(१) द० ११।१

(४८८) जो विविध प्रकार का देखा जाता है वह सोम समस्त शत्रु सेनाओं को अभिभुत करता है इसलिये उस बुद्धितत्व को जगाने वाले सोम को अंगुलियों से संस्कृत करते हैं। प्र० ६(१) द० ११।२

(४८९) सम्पन्न किया हुआ सोम सब सम्पदाओं को सर्वत: फैलाता

हुआ द्रोणकलश नामक कलशे में प्रविष्ट होता हुआ यजमान राजा के लिये "दशापवित्र," पर रखा जाता है। प्र० ६(१) द० १।३

(४९०) जिस प्रकार रथ में युक्त घोड़ा इधर-उधर आकर्षण वाले संग्राम से दो सेनाओं में निरराम् चलता है, इसी प्रकार सम्पन्न किया हुआ सोम "दशापवित्र" पर छोड़ा जाता है।। प्र० ६(१) द० १।४

(४९१) जैसे त्वरायुक्त, प्रकाशयुक्त, गमनशील किरणें अंधियारी चलने वाली रात्रि को दूर करते हुए उत्कृष्टता से चलती हैं, वैसे ही ये सोम भी प्रकाश आदि के करने वाले होते हैं।। प्र० ६(१) द० १।५

(४९२) हे परमेश्वर ! अश्वदायक और बुद्धि लाभकारक तू शत्रुओं को विनष्ट करता हुआ प्राप्त होता है। ओ तू देवताओं का यजन न चाहने वाले पुरुष को दूर भगाओ।। प्र० ६(१) द० १।६

(४९३) परमेश्वर ! मनुष्यों के कामों को प्रेरित करता हुआ तू जिस तजो-रूप धार वा बहती धार से सूर्य लोक को प्रकाशित करता है, उसी धार से प्राप्त हो। प्र० ६(१) द० १।७

(४९४) परमेश्वर ! जो आप भारी शुभ कर्मों को रोकते हुए पाप को विनष्ट करने के लिये जीवात्मा को तृप्त करते हैं वह आप हमें प्राप्त हों।। प्र० ६(१) द० १।८

(४९५) परमेश्वर ! उस व्याप्ति से अमृत वर्षाओ कि जिससे जीवात्मा आपकी की हुई अमृत वृष्टि से उत्पन्न आनन्दों के होने पर आठ सौ दस (८१०) पापों को सब ओर से हनन करता है।। प्र० ६(१) द० १।९

(४९६) सोम वा परमेश्वर हमारे लिये प्रकाशमान धनदायक बल को अन्न सहित सब ओर से प्राप्त करावे और "दशापवित्र" पर वा पवित्र हृदय में सर्वथा प्राप्त हो।। प्र० ६(१) द० १।१०

(४९७) वृष्टिकारक वा वीर्यवर्धक व हरण शील मित्र के समान सत्काराई ही देखने योग्य सोम सूर्य के साथ प्रकाश करता और अग्नि में डाला हुआ चिटपटा शब्द करता है क्योंकि जलयुक्त होता है।। प्र० ६(१) द० २।११

(४९८) सोम व परमेश्वर ! तेरे उस सुखकारक सर्वतोरक्षा करते हुए बहुतों से कामना किये हुए बल रूपी अग्नि को जो प्रकाशक और प्रापक है आज यज्ञ दिन में सब ओर से हम वरण करते हैं। प्र० ६ (१) द० २।२

(४९९) हे अध्वर्यु ! सिलबट्टों से छेदकर स्वरस निकाले हुए सोम को "दशापवित्र" पर ला और इन्द्र अर्थात् सूर्य व विद्युत व यजमान राजा के लिये पीने को स्वच्छ कर। प्र० ६(१) द० २।३

(५००) धार बांधकर निचोड़े हुए सोमरस के उपभोग से वह इन्द्र (विद्युत) वा राजा हृष्ट-पुष्ट तीव्रतापूरक गमन वा प्राप्ति करता है। यह दूसरी बार वीप्सा अर्थात अत्यन्त अभिलाप प्रकट करने को कहा गया है।। प्र० ६ (१) द० २।४

(५०१) परमेश्वर ! सोम ! हमारे लिए बहुत संख्या वाले शोभन वीर्ययुक्त धन का लाभ करा, और यशों को धारण करा अर्थात् सोमयज्ञ और ईश्वर की कृपा से मनुष्यों को धन वीर्य और यश प्राप्त होते हैं। प्र० ६ (१) द० २।५

(५०२) सोम के उपभोग और यजन से बूढ़े पुरुष नवयौवन को क्रमशः प्राप्त होते हैं। इसी कारण प्रकाश के लिए सूर्यवत तेज करने वाले सोम को लोग उत्पन्न करते हैं।। प्र० ६(१) द० २।६

(५०३) दीप्तियुक्त, अपने स्थान, जलों में, स्थित द्रोणकलशों को, और शब्द करता हुआ सोमरस जाता है।। प्र० ६(१) द० २।७

(५०४) दिव्यगुणयुक्त परमेश्वर ! सोम ! तू अमृत वर्षाने वाला वा मेघ वर्षाने वाला है। वीर्यवान प्रकाश वाला, श्रेष्ठ कर्म वाला, वा यज्ञ वाला तू, धर्म युक्त कर्मों वा यज्ञों का धारणकर्त्ता है।। प्र० ६(१) द० २।८

(५०५) सोम ! परमेश्वर ! यज्ञ के अध्वर्युओं, वा उपासकों से शोधा जाता हुआ वा ढूंढा जाता हुआ तू गेहूं आदि अन्न के लिए, वा आत्मा की तृप्ति कारक ध्यानानन्द रस के लिए धार से प्राप्त हो, वा धारणा से प्राप्त हो। और चमक से, वा ज्ञान के प्रकाश से स्तुतिकर्त्ताओं को सर्वतः प्राप्त हो।। प्र० ६(१) द० २।९

(५०६) हे अमृतस्वरूप परमेश्वर ! औषधे ! अमृत वर्षा, वा जल वर्षा, विद्वानों को चाहने वाला, वा वायु आदि देवों को चाहने वाला और हमको चाहने वाला तू अपने वरणीय उत्तम गुणों से हमारी रक्षा कर और गम्भीर अमृतधारा से वा जलधारा से वृष्टि कर ॥ प्र० ६(१) द० २।१०

(५०७) परमेश्वर ! औषधे ! आनन्द हुआ, सत्कार योग्य तू ही मेघ के सा काम करता है। क्योंकि इस उत्तमधारा से अमृत वर्षा वा वर्षा करके बढ़ाता है ॥ प्र० ६ (१)द० २।११

(५०८) यह सोम अमृतस्वरूप परमात्मा, वा औषधि विशेष, प्रकाशक हितकारी और शुद्धिकारक है। वह बड़े कर्मफल वा जलोद्भव धान्य को प्रेरित करता हुआ वृद्धि को बढ़ाता है ॥ प्र० ६(१) द० २।१२

(५०९) जिस प्रकार सोमरस से उत्पन्न हुआ हर्ष मनुष्यों के हृदयों में तरंग सी उठाता है, इसी प्रकार परमात्मा की प्राप्ति से उत्पन्न हुआ आनन्द उपासकों के हृदय में लहर सी उठाता है और मग्न कर देता है। इसको वह लोग ही जानते हैं, जिन्हें अनुभव है ॥ प्र० ६(१) द० २।१३

(५१०) हे मनुष्यो ! सेवन किया हुआ परमेश्वर वा सोम अदाता अयाज्ञिक यज्ञ-विरोधी पापियों को दूर करता हुआ तथा शत्रुओं को दूर करता हुआ परमात्मा के पवित्र पद मोक्ष को वा इन्द्रपदवी को प्राप्त कराता हुआ प्राप्त होता है ॥ प्र० ६(१) द० २।१४

(५११) हे अमृतस्वरूप परमेश्वर ! आप अमृत की धारा से पवित्र करते हुए कर्मों और जीवात्माओं को व्यापक होकर आच्छादित किये हुए हमें प्राप्त होते हैं। और रमणीय पदार्थों के धारण कराने वाले ज्योति स्वरूप कूप के समान गम्भीर अमृत के कूप रूप आप सत्य वेद के कारण अपने निज स्वरूप में सब ओर व्याप कर स्थित हैं ॥ प्र० ६(१) द० ३।१

(५१२) जो परमात्मा रूपी अमृत सर्वोत्तम ज्ञान यज्ञ का हवि ग्रहण योग्य पदार्थ है, उस परमात्मा रूपी अमृत कर्मों के साक्षिभूत को, जो उपासक प्राणायामों से साक्षात करता है, वह पुरुष मनुष्यमात्र का हितकारी है। और तुम लोग उस साक्षात किए हुए परमात्मा रूपी अमृत को धारण करते हुए सब

और छिड़को (आत्मज्ञान का उपदेश करो) ॥ प्र० ६(१) द० ३।२

(५१३) प्राणायामों से साक्षात किए जाते हुए, और नहीं घटने वाली, सूर्य की किरणों को तिरस्कृत करते हुए, सबका ग्रहण करने वाले आप सोम, हे अमृतस्वरूप ! परमात्मन ! द्युलोक वा पृथ्वी लोकों में सर्वत्र प्रवेश किए हुए वरत रहे हैं। जैसे प्राणिवर्ग नगर में सर्वत्र प्रविष्ट रहते हैं, तद्वत। वह आप एकान्त ध्यान योग्य देशों में हृदय कमल रूपी स्थान में धारण किये जाते हैं ॥ प्र० ६(१) द० ३।३

(५१४) हे परमात्मन ! जसे समुद्र जल से सर्वतः पूर्ण है, ऐसे ही आप अमृत रूपी जल से पूर्ण हैं। अतएव कृपा करके हर्षकारक और चेतन आप विद्वान उपासकों की तृप्ति के लिए आत्मा रूपी मधु को उपदेश द्वारा फैलाने वाले हृदय कोष को प्राप्त हों ॥ प्र० ६(१) द० ३।४

(५१५) जिस प्रकार सोम अभिषव करने वाले अध्वर्युओं से पर्वतों के टुकड़ों पाषाणों द्वारा छेदकर स्वरस निकाला जाता हुआ शीघ्रगामिनी हरी धूमधारा से ऊपर को जाता है, इसी प्रकार उपासित अमृत परमात्मा भी गम्भीर धारण से ध्यान किया हुआ भक्तों को प्राप्त होता है ॥ प्र० ६(१) द० ३।५

(५१६) परमात्मन ! मैं आपकी आज्ञानुवर्तिता में प्रतिदिन रमण करता हूं। अनेक योनियातनायें मुझे सताती हैं। कृपया उन उपाधियों को निवारण करके प्राप्त हूजिए। मुक्ति दीजिए ॥ प्र० ६(१) द० ३।६

(५१७) हे पवित्र ! परमेश्वर ! अन्वेषण किए हुए आप हृदयान्तरिक्ष में वाणी को प्रेरित करते हैं—वेद उपदेश करते हैं और सुवर्णादि बहुतों से चाहे हुए बहुत धन को सब ओर से देते हैं ॥ प्र० ६(१) द० ३।७

(५१८) ज्ञानी जिन्होंने अमृत पाया है, वे इसी के आनन्द में मग्न और आनन्द को उपदेश से फैलाने वाले मनुष्य आनन्दकारक रस को हृदयान्तरिक्ष के भीतर स्थान में सम्पादित करते हैं ॥ प्र० ६(१) द० ३।८

(५१९) हे अमृत ! हे मेधावियों में उत्तम परमेश्वर ! आप पवित्र,

चेतन, सर्वहितैषी, सर्वज्ञ हैं। कृपा करके अपने वरणीय गुणों से हमारी सब ओर से रक्षा कीजिए तथा हमारे ज्ञान यज्ञादि को आनन्द रूप से सींचने की इच्छा कीजिए ॥ प्र० ६(१) द० ३।९

(५२०) हर्षकारक सम्पादित बहुत धारों वाला औषधि रस या आत्मिकानन्द रस ऋत्विजों वाले यजमान वा प्राणों वाले इन्द्रियाधिष्ठाता आत्मा के लिए प्राप्त होता है, इसीलिए उसको मनुष्य सम्पादित करते हैं और यह रक्षायोग्य पुरुष को बहुतायत से प्राप्त होता है ॥ प्र० ६ (१) द० ३।१०

(५२१) हे अमृत ! परमात्मन ! अन्नादि के अत्यन्त दाता, आनन्द-स्वरूप और आनन्ददायक आप सब वरणीय स्तोत्रों को लक्ष्य करके श्रेष्ठ विशेष करके धारक हृदयान्तरिक्ष में अपने उपासकों के लिए अपनी प्राप्ति का विधान कीजिये ॥ प्र० ६(१) द० ३।११

(५२२) पवित्र हुए प्राणी, आनन्द में मग्न, अमृतधारा से पवित्र परमात्मा को सर्वतः प्राप्त होकर घोड़े रूपी इन्द्रियों को, बुद्धि और उसके उपलक्षित मन चित्त अहंकार को और धान्यादि सांसारिक सामग्री को त्याग देते हैं—मोक्ष पाते हैं ॥ प्र० ६(१) द० ३।१२

(५२३) हे सोम ! अध्वर्यु संज्ञक मनुष्यों से शोधा जाता हुआ त्वरा से चलता है, और द्रोणकलश को भरकर स्थित होता है। भली प्रकार से बलवान घोड़ों को मार्जन करते हुए अश्वसेवक लगामों से जैसे ले जाते हैं, वैसे ही तुझको अध्वर्यु लोग यज्ञ कुण्ड को ले जाते हैं, वह तू बल को प्राप्त कराता है ॥ प्र० ६ (१) द० ४।१

(५२४) वाणी का चलाने वाला, पवित्र पुरुषों का बन्धु के समान हितकारी, पवित्रस्वरूप और पवित्रकर्त्ता, देवों का देव परमात्मा चाहता हुआ सा वेद का उपदेश देता हुआ सोमादि पदार्थों के जन्म को विशेष करके बतलाता है। वेदपदों को हृदयाभ्यन्तर में बतलाता हुआ श्रेष्ठ कल्परूपी दिन वाला कल्पारम्भ में वेद प्रकाशक ऋषियों को प्राप्त होता है ॥ प्र० ६ (१) द० ४।२

(५२५) ईश्वरदत्त ज्ञान के ले चलने वाला ऋषि तीन प्रकार की ऋग

यजुः और साम लक्षण युक्त वाणियों को सत्य की धारणा और परमात्मा की सत्य प्रज्ञा को लोक में प्रचारित करता है, इसलिये देववाणियाँ परमात्मा से पूछती हुई सी बाहर जाती हैं अर्थात् ज्यों की त्यों प्रकाशित होती हैं तथा वेदवाही ऋषि की बुद्धियाँ सोमादि वेद प्रतिपादित पदार्थों की कामना करती हुई सोमोपलक्षित वस्तुमात्र को प्राप्त होती हैं ॥

पूर्व मन्त्र में यह कहा गया था कि ऋषि लोग प्रत्येक कल्प के आरम्भ में ईश्वर से प्रतिभासिक ज्ञान को प्राप्त हुआ करते हैं। इस मन्त्र में यह कहा है कि सर्वथा ज्यों का ज्यों ही परमात्मा की ओर से हृदय में प्राप्त हुआ ज्ञान जो ऋग् यजु, और साम—इन तीन प्रकार की ऋचाओं में वर्णित होता है, उसे ऋषि लोग प्रचार किया करते हैं। न्यूनाधिक नहीं। जिस प्रकार एक दूत अपने स्वामी से पूछकर ज्यों का त्यों सन्देश ले जाता है, इसी प्रकार वेद-वाणियाँ मानो परमात्मा से पूछकर चलती हैं। इसीलिए वेदों में प्रतिपादित सोमादि पदार्थों की यथार्थ प्राप्ति वेदवाही ऋषियों को ही जाती है, किसी प्रकार का भ्रम नहीं होता ॥

यहाँ तीन प्रकार की वाणी करने से वेदों की ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद इन तीन संहिताओं का ग्रहण नहीं है, प्रत्युत चारों संहिता ऋग, यजु, साम, अथर्व में तीन प्रकार की ऋचाएँ हैं। एक ऋग, दूसरी यजु, तीसरी साम। यह तीन वाणी (१) विद्या (२) बुद्धि और (३) मन को प्रेरित करती हैं। विद्या=महत्तत्व, बुद्धि=अहकार, मन=प्रधानता से भूतेन्द्रियाँ, मन आत्मा की प्रीति अर्थात् मन चाहे कर्मों को प्रेरित करते हैं। ब्रह्म=आत्मा को जो इन्द्रियों का स्वामी है, इन्द्रियाँ पूछकर काम करती हैं, क्योंकि आत्मा के अभिप्रायानुकूल चलती हैं। इसी प्रकार सोम=आत्मा की कामना करती हुई उसी में चलती जाती हैं, फिर प्रकट नहीं होतीं ॥ प्र० ६(१) द० ४।३

(५२६) इस वेद की सुवर्ण तुल्य बहुमूल्य आज्ञा से आज्ञानुसार शोधा हुआ और अभिषुत सम्पन्न हुआ सोम अग्नि में हवन करने से चिटचिटाता हुआ गगन मण्डल में सब ओर फैलता है, तब सूर्य वायु आदि देवों सहित शुद्ध रस को छुआता वर्षाता है। चिटचिटा शब्द करते हुए सोम के आकाश मंडल में जाने

पर, जिस प्रकार गिनने वाला और बुलाने वा दुहने वाला पुकारता हुआ पशु वाले घरों में जाता है, तद्वत ॥ प्र० ६(१) द० ४।४

(५२७) अमृत परमात्मा जो कि बुद्धियों का उत्पादक, द्युलोक का उत्पादक, पृथ्वी का उत्पादक, अग्नि का उत्पादक, सूर्य का उत्पादक, विद्युत का उत्पादक, और यज्ञ का उत्पादक है, याज्ञिकों को प्राप्त होता है ॥ प्र० ६(१) द० ४।५

(५२८) जिस प्रकार परमात्मा पूर्णरूप से त्रिलोकी में व्याप रहा है, कामना पूर्ण करता है, प्राणियों की आयु को धारण कराता है और प्रशंसनीय है, इसी प्रकार किसी अंश में सोम भी पृथ्वी में उत्पन्न होता, हवन से द्यु और अन्तरिक्ष में भी व्यापता है, वृष्टि करता है, अन्न उत्पन्न करता है, आयु का भी धारण करने वाला है और प्रशंसनीय है। इसलिए मनुष्यों को परमात्मा और सोमादि पदार्थों की कामना करनी चाहिए। जिस प्रकार समुद्र में रत्न हैं और खोजने वालों को मिलते हैं, इसी प्रकार परमात्मा के उपासक और सोमादि उत्तम पदार्थों के ढूंढने वालों को भी सब रत्न पदार्थ प्राप्त होते हैं॥ प्र० ६ (१) द० ४।६

(५२९) पर्वत के एकान्त शुद्ध देश में ध्यान से अभिषव किया जाता हुआ और अभिषेचन किया जाता हुआ आत्मा आनन्द, अमृत मेघ सा बहुत बढ़ता है। क्योंकि पृथ्वी आदि लोकों का पालक जिस में लोक लोकान्तर घूम रहे हैं, वह अमृत परमात्मा भूलोक आदि की प्रजाओं को उत्पन्न करता हुआ विस्तृत विशेष करके धारने वाले गगन मंडल में सब को प्रकाश्त कर रहा है। वह कामना पूरी करता है ॥ प्र० ६(१) द० ४।७

(५३०) जिस कारण सोम पवित्रता का कर्त्ता है, वह मनुष्यों से चारों ओर बैठ कर अग्नि में छोड़ा जाता हुआ ईंधन के जाठराग्नि में रखा हुआ हरे रूप को करता है अर्थात् अग्नि में हवन करने से हरे धुएँ को निकालता है और चिड़चिड़ाता है। इस कारण आहुतियों के साथ वेदमन्त्रों के उच्चारण रूप वाणी और उसके अर्थ की विचारणा को उत्पन्न करो अर्थात् सोम की आहुति, वेदमन्त्रों का उच्चारण और उन के अर्थ का विचार करते हुए यज्ञ करो ॥ प्र० ६(१) द० ४।८

(५३१) हे राजन! यजमान! मधुर रसयुक्त वह दशापवित्र पर स्थित सोमरस यज्ञ करके वर्षा कराने वाले आप के सनातन यज्ञ में सब ओर फैले। यह वर्षा के हेतु सहस्र का दाता, शत का दाता, बहुत का दाता, बलयुक्त आप के यज्ञ में सर्वतः स्थित होवे ॥ प्र० ६(१) द० ४।९

(५३२) सोम रस के संपादन करने वालों को उस में मिठाई मिला कर जल तुल्य गीला करके, उनके दशापवित्र पर द्रोण कलशों में भर कर रख के यज्ञ में वरतना चाहिए। वह हृष्ट पुष्ट स्वादु से युक्त, हृष्टि-पुष्टि स्वादु बल आदि देता है ॥ प्र० ६(१) द० ४।१०

(५३३) सोम-सेवी सेना के नायक शत्रुओं का बाधक शत्रु की भूमि को चाहता हुआ रथों के आगे चलता है, और इस के आधीन सेना हृष्ट होती है। सोमरस राजा की प्रशंसा के शब्दों को यथार्थ सच्चा करता हुआ मित्रों के हित के लिए दूसरों को ढक लेने वाले भावों को ग्रहण करता है ॥ प्र० ६(१) द० ५।१

(५३४) सोमरस को स्वच्छ करके दशापवित्र से लेकर अग्नि में होम करने से उस की मधुर धारें छूटतीं और आकाशमंडल में अपने तेजोयुक्त सूक्ष्म अवयवों से सूर्य की किरणों को बसाती हुई वृष्टि और शुद्धि करती हैं ॥ प्र० ६(१) द० ५।२

(५३५) हे मनुष्यो! दिव्य उत्तम रस द्रोण कलश में रखा जावे, फिर स्वादयुक्त सोमरस उन के दशापवित्र से उतर कर छोड़ा जावे। तुम सोमरस को अग्नि में हवन करो। उस से वायु आदि देवताओं को सुधारो और बड़े धन की प्राप्ति के लिए भली प्रकार वेदमन्त्रों का उच्चारण करो ॥ प्र० ६(१) द० ५।३

(५३६) हे मनुष्यो! द्युलोक और भूमिलोक का उत्पादक अग्नि में हवन किया हुआ जो अन्न देवेगा वह सोम सूर्य और विद्युत के समीप जाता हुआ, मानो इन्द्र के शत्रुओं को मेघ हननार्थ पैनाता हुआ, और सब धन को मानो हस्तगत करता हुआ, रथ सा आकाश को जाता है ॥ प्र० ६(१)द० ५।४

(५३७) यद्यपि यज्ञ के द्रोणकलश में स्थापित सोमरस का जब अग्नि

में होम किया जावे, तब उस सोम का संपर्क किरणों से होवे, परन्तु जितने सवन का आरम्भ ही होता है, और सोमरस द्रोणकलश में ही रखा रहता है, और प्रशंसा करने वाले याज्ञिक पुरुष की वाणी वेदमन्त्रों से उसका वर्णन ही करती है, इतने ही किरणें मानो कोई स्त्रियां अपने प्यारे पति से स्पर्श करती हों, ऐसी कामना सी करती हुई, झट द्रोणकलश स्थित सोमरस को स्पर्श करती हैं ॥ प्र० ६(१) द० ५।५

(५३८) प्रकरण से सोम प्रथम द्रोणकलश में भरा रहता है, फिर ध्यानशील होता की साथ खींचने वाली, अच्छे फेंकने वाली, प्रेरणा करने वाली १० अंगुलियाँ सोम को शोभित करती हैं। फिर शीघ्रगामी बलवान अश्व सा सोम हरे रंग वाला होकर सूर्य की सन्तान रूपी दिशाओं को सब ओर भागता है, अर्थात् अग्नि में हवन किया हुआ हरे धुएँ के रूप में सब दिशाओं में फैलता है ॥ प्र० ६(१) द० ५।६

(५३९) जब कि जैसे बलवान घोड़े पर तथा जैसे सूर्य पर सुहाती हुई किरणें इस सोम पर एक-दूसरे से बढ़ कर प्रकाश करती हैं, तब जैसे अतिचतुर गोपालक रक्षा वा सम्मान योग्य खरक में पशुओं की वृद्धि के लिए जाता है, वैसे ही यह सोम भी मेघस्थ जलों को आच्छादित करता हुआ वृष्टि से पशु आदि की वृद्धि के लिये आकाश को जाता है ॥ प्र० ६(१) द० ५।७

(५४०) सोम रस के हवन से इन्द्र वृष्टि करता और मेघों का हनन करके धान्यादि धन को उत्पन्न करता है। और सोम रस के सेवन से शरीर और मन को बल प्राप्त होता है, जिससे शत्रुओं को जीत कर राज्यादि ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ प्र० ६(१) द० ५।८

(५४१) यज्ञ में भले प्रकार अभिषव किया हुआ सोम अग्नि में हवन किया जाता है, जिससे सूर्यादि भौतिक देवों का आप्यायान होता है और उस के पान से विद्वान यज्ञकर्त्ताओं का आप्यायान होता है। सोम तरल स्वभाव वाला, बुद्धि का उत्पादक और गति वालों की गति का सहायक है ॥ प्र० ६(१) द० ५।९

(५४२) परमात्मा सब कुछ करता है, इसमें तो विवाद ही नहीं।

परन्तु सोम किसी अंश तक जलों का ग्राहक, वायु आदि देवों का वा पान करने से इन्द्रियों का वरण करने वाला, वृष्टिकारक, विद्युतत्व वा आत्मा में वज्र का धारण करने वाला, और सूर्य की किरणों में फैल कर प्रकाश का उत्पन्न करने वाला कहा जा सकता है ॥ प्र० ६(१) द० ५।१०

(५४३) जिस प्रकार संग्राम में जहां रथादि हों, वहां बोली बोलने वाले नायक से श्रेष्ठ जिसमें मन आदि ओत-प्रोत हों, उस मन के चलाने वाली बुद्धि अर्थात् पूर्ण सावधानी से अस्त्र-शस्त्र का अश्व आदि चलवाये जाते हैं, इसी प्रकार १० अंगुलियां पर्वत के सानुप्रदेश में सोमोत्पत्ति के स्थानों में भले प्रकार से ले चलने की शक्ति वाले सोम को शुद्ध करें और छोड़ें ॥ प्र० ६(१) द० ५।११

(५४४) बुद्धियें जलों की तरंगों के समान फुर्तीली-सी, सोम रस के सेवन से सौम्य स्वभाव वाले पुरुष को अच्छी प्रकार प्राप्त होती हैं। मानो उस को नमस्कार करती हुई और चाहती हुई, चाहते हुए उस पुरुष के समीप भी जाती हैं और उससे मिलती हैं और उसमें अपना आवेश करती हैं ॥ प्र० ६(१) द० ५।१२

(५४५) हे मित्रो ! तुम्हारे हर्ष वा आनन्ददायक, आगे जय कराने वाले सम्पादित सोमरूपी तृप्तिकारक अन्न के लिये अर्थात् इसकी रक्षार्थ लम्बी जीभ वाले कुत्ते को भगाओ। अर्थात् मांसाहारी परानी हानि करने वाले जन्तुओं से अवश्य बचना चाहिये ॥ प्र० ६(२) द० ६।१

(५४६) हे मित्रो ! ये सोम पुष्टि कर्ता, सबको सेवनीय, धनदायक, पवित्रता का सम्पादक, पवित्र हृदय में प्राप्त होता है। तथा सब प्राणियों का पालन करने वाला, दोनों पृथ्वी लोक और द्युलोक को अपने प्रभाव से प्रकाशित करता है ॥ प्र० ६(२) द० ६।२

(५४७) हे मित्रो ! तुम्हारे हृष्टि युक्त, हर्षदायक अत्यन्त मधु मिले हुए इन्द्र के लिये अभिषुत किये हुए, "दशापवित्र" आदि वाले सोम अग्नि में छिड़के जावें और देवतों को प्राप्त होवें ॥ प्र० ६(२) द० ६।३

(५४८) दीप्ति वाले अधिकतया ठीक मार्ग को पाने और पहुँचाने वाले सबके हितकारी, अपने-आप जीवन करने वाले, पापरहित, भली प्रकार से ध्यान करने वाले, लगभग सब कुछ जानने वाले, सोम का सेवन करने वाले लोग हमारे लिये प्राप्त होवें ॥ प्र० ६ (२) द० ६१४

(५४९) प्रकाशस्वरूप ! हमारे लिए अन्न वा बल के अत्यन्तदाता, बहुतों से चाहे हुए, अनेक प्रकार के भरण-पोषण करने वाले, बड़े यशस्वी, बड़े-बड़ों के प्रकाश को दबा सकने वाले ! विद्या आदि धन को सब ओर से प्राप्त कराइये ॥ प्र० ६ (२) द० ६१५

(५५०) सौम्य पुरुष किसी से द्रोह नहीं करते, सबसे प्यार करते हैं, और परमेश्वर के प्यारे उत्तम काम्य कर्म को प्राप्त करते हैं; जैसे पूर्व आयु में उत्पन्न हुए पुत्र पर उनकी माताएँ प्यार करती हैं ॥ प्र० ६ (२) द० ६१६

(५५१) यद्यपि सौम्य पुरुष सबका प्रियाचरण करते हैं, परन्तु जो कोई दुष्ट जन उन पर आक्रमण करे तो अपने स्वरूप की रक्षा के लिये उनसे युद्ध करने में समर्थ होते हैं, और विद्वानों के आगे होकर अपनी रक्षा और दुष्टों का दमन कर सकते हैं ॥ प्र० ६ (२) द० ६१७

(५५२) उन सबसे चाहने योग्य हरे और श्वेत वर्ण सोम को बल से रचे हुए "दशापवित्र" से सब प्रकार शोधते हैं। जो सोम सब ही वायु आदि देवताओं को रस के साथ सब ओर जाता है ॥ प्र० ६ (२) द० ६१८

(५५३) यजमान को चाहिए कि अध्वर्यु और ऋत्विज लोग जो सोम रस के सेवन आदि कामों को करते हैं, उनकी याचना की प्रतिक्षा न करें, किन्तु बिना मांगे ही श्रद्धा और योग्यतानुसार दक्षिणा दें और बिना दक्षिणा के यज्ञ नष्ट न करें ॥ प्र० ६ (२) द० ६१९

(५५४) ऐसा ही मनु ने भी कहा है कि अग्नि में छोड़ी आहुति सूर्य को प्राप्त होती है और सूर्य से वर्षा, उससे अन्न, उससे वीर्य, उससे प्रजा उत्पन्न होती है ॥ प्र० ६ (२) द० ७११

(५५५) अनन्य प्रेरित अभिषुत किए जाते हुए हरित धूमरूप में परिणत, वा हरण स्वभाव वाले सोम, वा आत्माएँ हमारे वायु आदि देवताओं वा

इन्द्रियों में बहुत उच्चता से प्राप्त होवें। तथा हमारे दान रहित शत्रु तुल्य विषयेच्छु कामादिगण निर्विषय हो जावें और हमारी बुद्धिएँ वा कर्म संविभाग को प्राप्त होवें ॥ प्र० ६ (२) द० ७१२

(५५६) यह इन्द्र का वज्रतुल्य प्रहार का साधन बोने वाले से अधिक बोने वाला [क्योंकि सोम ही अन्न और औषधियों का उत्पादक है] मधुरता युक्त सोम द्रोण कलशादि में अत्यन्त शब्द करता है। और जल को धारण करने वाली भले प्रकार दुहने योग्य जल को टपकाने वाली बिजुलियां शब्द करती हुई जल से सब ओर वर्षती हैं ॥ प्र० ६ (२) द० ७१३

(५५७) सोम, वा जीवात्मा, विद्युत, वा परमात्मा के स्वच्छ पद को उन्नत होकर प्राप्त होता है अनुकूल वर्तों के अनुकूल रहता हुआ। सुन्दर शब्द वा वाणी को नष्ट नहीं करता है, किन्तु जैसे मनुष्य युवतियों के साथ प्रीति से संगत होता है वैसे सोम, वा आत्मा द्रोण कलाएँ, वा परमात्मा में अनेकों की गति वाले मार्ग से प्राप्त होता है ॥ प्र० ६ (२) द० ७१४

(५५८) प्राणधारी नेता ऋत्विजों से अभिषुत किया हुआ देवताओं का हर्षकारक द्युलोक का धारक संपादन किया हुआ रसरूप बलकारक हरित वर्ण सोम घोड़े के समान वेग से जाता है तथा नदी आदि जलप्रवाहों में बिना यत्न ही बलों को सब ओर से बढ़ाता है ॥ प्र० ६ (२) द० ७१५

(५५९) बुद्धियों का वर्षाने वाला, विशेष से प्रकाशक, दिनों, प्रभातों और द्युलोक का जगाने वाला नदियों का पूर्ण करने वाला सोम द्रोण कलशों के प्रति शब्द करता है और बुद्धिमान याज्ञिकों से हवन किया जाता हुआ विद्युत के हृदय में प्रविष्ट होता हुआ सा आकाश को जाता है ॥ प्र० ६ (२) द० ७१६

(५६०) जब कि सोम यज्ञों से बढ़ता है, तब सात वाणियां इस सोम के लिए सच्चे आशिष को पूरित करती हैं तथा यह सोम बड़े आकाश में अन्य चार भुवन अर्थात् पृथ्वी अन्तरिक्ष द्यौः और दिशाओं को शुद्ध करने के लिए सुन्दर कल्याण रूप करता है ॥ प्र० ६ (२) द० ७१७

(५६१) हे परमात्मन ! वा सोम ! भले प्रकार साक्षात किया हुआ वा अभिषुत किया हुआ तू जीवात्मा, वा विद्युत के लिए अमृत वर्षाय, वा

की योग्यता का संपादन कर । रोग वायु आदि में स्थित दुष्ट विकार के साथ दूर हो । तेरे आनन्द रस, वा रस से झूठ-सच वाले पापी लोग न हृष्ट हों, किन्तु इस ध्यान यज्ञ में, वा क्रिया यज्ञ में, तेरे रस भक्षित भावादि धन, वा धान्यादि धन वाले होवें । प्र० ६(१) द० ७।८

(५६२) रूपवान हरित धुएँ के वर्ण वाला वृष्टिकारक अभिषुत किया हुआ प्रकाशमान सोम प्रथम आभूषित किया जाता है, फिर अन्धकार का निवारक बिजली में चमकता हुआ पृथ्वियों की ओर लक्ष्य करता हुआ शब्द करता है । और ऊर्णामय दशापवित्र को उल्लंघित करता है और बाज सा बलवान जल-युक्त आकाश स्थान को प्राप्त होता है ॥ प्र० ६(२) द० ७।९

(५६३) माधुर्य युक्त सोम शब्द युक्त हुए व्यापकर इन्द्रनामक विद्युत को ग्रहनामक घटों में से टपक कर जाते हैं तथा सूर्य की किरणें जो कि यज्ञ में स्थित हैं, वे टपके हुए शुद्धिकारक सोम का आधान करती हैं, जैसे दुधारु गौवें बाछों से दूध का आधान करती हैं । प्र० ६(२) द० ७।१०

(५६४) ज्योति से पवित्र करने वाले अध्वर्यु लोग यज्ञ को विस्तारित करते हैं, प्रकट करते और भली प्रकार से देखते-भालते हैं । तथा प्रकाश से दीखाने वाले सोम को जलों में ग्रहण करते हैं और शहद आदि मिठाई से सानते हैं तथा समुद्र के श्वासरूप मेघमण्डल में गिरते हुए को चखते हैं ॥ प्र० ६(२) द० ७।११

(५६५) हे वेद के पति, परमात्मन् ! तेरी पवित्रता विस्तृत है; प्रभावशाली तू सब ओर से देह के अंगों को व्यापता है । परन्तु देह से व्रत आचरण आदि तप ना करने वाला पुरुष कच्चा है और उस पवित्रता को नहीं भोगता । किन्तु जो परिपक्व है, वह उस पवित्रता को भोगता है ॥ प्र० ६(२) द० ७।१२

(५६६) ये अभिषव किए हुए, उत्पन्न हुए, सुखदायक हरे धूम्र के रंग के सोम शीघ्र वृष्टिकारक, विद्युत को अच्छी प्रकार प्राप्त हों ॥ प्र० ६ (२) द० ८।१

(५६७) हे शांतस्वरूप परमेश्वर ! चेतनस्वरूप आप जीवात्मा के लिए अमृत वर्षाइये और हमें प्राप्त हूजिए तथा प्रकाशयुक्त मोक्षदायक

बल पहुँचाइए ॥ प्र० ६(२) द० ८।२

(५६८) हे मित्रो ! आओ बैठो और शुद्धिकारक सोम के लिए गुण वर्णन करो तथा यज्ञों से शोभा के लिए सुशोभित करो, जैसे बालक को संस्कारों से सुशोभित करते हैं, तद्वत ॥ प्र० ६ (२) द० ८।३

(५६९) हे मित्रो ! तुम अपने आनन्द के लिए पवित्रताकारक सोम को प्रशंसित करो । और हव्य, मधु आदि द्रव्यों के मिलाने से स्वादु बनाओ जैसे बालक को सत्कृत करते हैं, तद्वत ॥ प्र० ६ (२) द० ८।४

(५७०) भूमियो अर्थात् भूमि निवासी मनुष्य आदि का बालक समान प्राणाधार सोम यज्ञ की दीप्ति को प्राप्त कराता हुआ सब प्यारे हव्यों को तिरस्कृत करता है अर्थात् सर्वोपरि हव्य है और दो प्रकार पृथ्वी और अन्तरिक्ष में स्थित होता है ॥ प्र० ६ (२) द० ८।५

(५७१) हे सोम प्रवाहों से बलपूर्वक वायु आदि देवों को भोजनार्थ जा । तथा माधुर्ययुक्त हमारे द्रोण कलश में स्थित हो ॥ द० ८।६

(५७२) पवित्र और अन्यों को पवित्र करने वाला लहरी के साथ ऊन के दशापवित्र को विविध प्रकार से चलाता है तथा वेद मन्त्र उच्चारण के आगे साथ-साथ शब्द करता है ॥ प्र० ६ (२) द० ८।७

(५७३) पवित्र बुद्धि तत्व युक्त, वा मेधावी सोम औषधि, वा शान्त आत्मा के लिए यह वचन आ जाता है कि बुद्धियों से अत्यन्त सेवा करने वाले के लिए नौकरी की भरो ॥ प्र० ६(२) द० ८।८

(५७४) सुन्दर प्रभु ! हृदय में ध्यान किए हुए, वा अभिषुत किए हुए, हमारे लिए गौ आदि दुग्धदायक पशुयुक्त वा इन्द्रिययुक्त और अश्व आदि सवारी युक्त वा प्राण वाले ! धन और बल को प्राप्त कराइए और गौ आदि पशु का इन्द्रियों में शुद्ध रंग धारित कीजिए ॥ प्र० ६(२) द० ८।९

(५७५) हे परमेश्वर ! वेदवाणी हमारे हित के लिए ज्ञानादि वा धान्यादि धन के प्रापक तुझको स्तुत्य करती है, वा गुण बताती है । हम इन वेद वाणियों से तेरे स्वरूप को जानते हैं ॥ प्र० ६(२) द० ८।१०

(५७६) धूम बना सोम कुटिल इधर-उधर जाते हुए पदार्थों को उल्लंघन करके वेग से जाता है तथा यजमानादि स्तोताओं के लिए वीर सहित कीर्ति प्राप्त कराता है ।। प्र० ६(२) द० ८।११

(५७७) पवित्र करता हुआ सोम मीठा जल चुआने वाले मेघमण्डल रूप कोश को सब ओर से जाता है। वेद मन्त्रों की सात (गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप और जगती) वाणियां सर्वतः वर्णित करती हैं ।। प्र० ६(२) द० ८।१२

(५७८) परमेश्वर ! अत्यन्त मधुरता से युक्त, अतिशय प्रज्ञा वा कर्म का प्राप्त कराने वाला, आनन्द वा हर्षदायक, पूजनीय, वा सत्करणीय, प्रकाश की बहुलता वाला, आनन्द स्वरूप, वा हर्षप्रद तू जीवात्मा वा विद्युत तत्व के लिए प्राप्त हो ।। प्र० ६(२) द० ६।१

(५७९) अन्न के पति, परमेश्वर ! दिव्यगुण प्रकाशादि गुण वाले ! सर्वतः प्रकाशित, बड़े कीर्ति वा अन्न-जल को प्रकाशित कीजिए। तथा विद्वानों वा वायु आदि देवों को चाहने वाले ! बीच के हृदय कोश को वा मेघ मण्डल को खोल दीजिए ।। प्र० ६(२) द० ६।२

(५८०) हे ऋत्विजो ! अश्व के समान वेगवान प्रशंसनीय जलों के प्रेरक, और तेज के प्रेरक, जल से मिले हुए जल में तिरने वाले सोम को अभिषुत करो और सब ओर फैलाओ ।। प्र० ६(२) द० ६।३

(५८१) उस पूर्व प्रकरण में कहे उस ही हर्ष को टपकाने वाले असंख्य धार वर्षाने वाले द्युलोक को दुहने वाले समस्त धनधान्यादि को धारण करते हुए सोम का अभिषव करो ।। प्र० ६(२) द० ६।४

(५८२) जो सोम वसु संज्ञक ८ देवों का प्राप्त कराने वाला है, जो धान्यादि धनों का प्रापक है, जो भूमियों का प्रापक है, जो सुन्दर मनुष्यों का प्रापक है, वह सोम अभिषुत किया जावे ।। प्र० ६(२) द० ६।५

(५८३) परमात्मा विद्वानों वा याजिकों के जन्मों को मोक्ष भाव के लिए विख्यात करता है। सोम भी जब अग्नि में हवन किया हुआ शब्द करता है, तब यज्ञकर्ताओं के अन्तःकरण की शुद्धि के द्वारा उत्तरोत्तर ज्ञान की प्राप्ति से मानो मोक्ष को विख्यात करता है ।। प्र० ६(२) द० ६।६

(५८४) वह यह अभिषव करके निकाला हुआ सोम ऊनी दशा-पवित्र के बालों से जल की लहर सा उभरता हुआ अति हर्षकारक धारा से चलता है ।। प्र० ६(२) द० ६।७

(५८५) घर्षणशील जो सोम गीली अन्तरिक्ष में स्थित किरणों को मेघ के मध्य में स्थित दूधों को वर्षाता है, वह सोम गौवों के और घोड़ों के समुदाय को वर्षा से विस्तृत करता है तथा कवचधारी वीर पुरुष सा शत्रु-दल को नष्ट करता है ।।

सोम यज्ञ से वर्षा, उससे तृणादि, उससे गौ आदि दुग्धदायक पशु और घोड़ों आदि सवारियों की वृद्धि तथा सोम के सेवन से शत्रुनाश योग्य बल की प्राप्ति सुलभ ही है ।। प्र० ६(२) द० ६।८

षष्ठ अध्याय

आरण्यक काण्डम्

आरण्यक काण्ड में किसी एक देवता का वर्णन नहीं है, किन्तु बहुतों का है। इससे एक का सा नाम भी प्रसिद्ध नहीं हुआ। आरण्यक शब्द का अर्थ यह है कि "जो वन में पढ़ा जावे, वह अध्याय" ।।

(५८६) आयुध वा शस्त्र हाथ में रखने वाले वा कड़क को धारित करने वाले ! सुन्दर नासिका युक्त राजन ! जिससे दोनों द्युलोक और भूमि को पूरित करता है, वही बहुत बलिष्ठ तृप्ति कारक अन्न हमारे लिए प्राप्त कराओ, तथा जो हम धारण करना चाहें, वह भी ।। प्र० ६(३) द० १०।१

(५८७) प्रजापालक राजा जंगम पशु आदि तथा मनुष्यों का ईश्वर तथा स्वामी है। तथा जो कुछ सब प्रकार का धन है, इसी राजा का है। उस अपने धन से दानादि करने वाले पुण्यात्मा पुरुष के लिए धन राजा देता है और हमारे सामने को मनोवाञ्छित धन को प्रेरित करे ।। प्र० ६(३) द० १०।२

(५८८) जिस ज्योति वाले राजा का रमणीय बड़ा संभाग करने योग्य यह सुख दानी पुरुष के निमित्त सब ओर वर्तमान है, वह हमारे लिए धन को प्रेरित करे ।। प्र० ६(३) द० १०।३

(५८९) सूर्यवत् प्रकाशमान, वरणीय राजन ! हम से उत्तम मध्यम अधम तीनों बन्धन शिथिल कर दीजिये। और हम लोग आपके नियम में दुःख वा खण्डन से रहित होने के लिए अपराध रहित होवें ॥ प्र० ६(३) द० १०१४

(५९०) हे शान्त स्वरूप परमात्मन ! हम लोग पवित्र करने वाले आपकी सहायता से भरण-पोषण करने योग्य गृहाश्रम में कर्म को संग्रहीत करें, और हमारे उस कर्म को प्राण अपान बुद्धि अन्तरिक्ष भूमि और द्युलोक बढ़ावें, ऐसी कृपा कीजिए ॥ प्र० ६(३) द० १०१५

(५९१) पूर्वोक्त मित्रादिगण इस मुझ असहाय को ही कामनाओं का पूर्ण करने वाला करें। अर्थात् परमात्मन ! आपकी कृपा से प्राणादि हमारे अनुकूल हों ॥ प्र० ६(३) द० १०१६

(५९२) वह पवित्र परमात्मा हमारे धान्यादि धन के दिलाने वाले आप भजन करने योग्य विद्युत अपान और वायुओं के लिए वृष्टि करने की योग्यता दें ॥ प्र० ६(३) द० १०१७

(५९३) हे परमात्मन ! हम लोग मनुष्यों के इन सब अन्नों को प्राप्त करते और बांटना चाहते हुए सब ओर से न्यायपूर्वक बांटते हैं ॥ प्र० ६(३) द० १०१८

(५९४) परमात्मा कहता है कि हे मनुष्यो ! मैं वायु विद्युत आदि देवताओं से पूर्वज हूँ और सच्चे अमृत का टपकाने वाला हूँ। जो पुरुष मेरा दान करता है, वही ऐसे प्राणियों की रक्षा करता है। और जो किसी को न देकर आप ही खाता है, उस अन्न खाते हुए को मैं, अन्न खा जाता हूँ—नष्ट कर देता हूँ ॥ प्र० ६(३) द० १०१९

(५९५) हे परमात्मन ! काली, लाल और पर्वों वाली नदी वा गौवों में इस चमकते हुए जल वा दुग्ध को आप ने धारित किया है ॥ प्र० ६(३) द० ११११

(५९६) सोम यज्ञ का फल कहते हैं—उषा को छूने वाला सूर्य मुख्य उत्तमता से तपता है, और मेघ लोकों में अन्नोत्पत्ति वा बल वृद्धि चाहता हुआ सदा गर्जता है और वृद्धि वाले इस सोम के बुद्धि तत्व से बनते हैं, और मनुष्यों को प्रकाश देने वाली चन्द्र किरणें औषधियों में गर्भ का आधान करती हैं ॥ प्र० ६(३) द० १११२

(५९७) इस पूर्वोक्त सूर्य, चन्द्र, मेघ, बिजली आदि का नियन्ता कौन है ? इसके उत्तर में कहते हैं कि परमेश्वर ही वचनबद्ध सूर्यचन्द्रमाओं के साथ व्यापक होने से सर्वत्र मिला हुआ है। वही परमेश्वर दण्ड देने वाला और ज्योति स्वरूप है। इसी से यह जगत नियमित है ॥ प्र० ६(३) द० १११३

(५९८) हे महाबली परमेश्वर ! आप किसी से न दबने वाले हैं और अपनी रक्षाओं से छोटे संग्रामों और बड़ेबड़े संग्रामों में हमको बचाइये ॥ प्र० ६(३) द० १११४

(५९९) जिस अनुष्टुप आदि छन्दोयुक्त ग्रहण करने योग्य वर्णरूप हवि का अथ और सअथ नाम है और जो हव्य वेदवाणी रूपी है, वही जगत् के विधाता और उत्पादक परमात्मा से रथन्तरादि नामक सोमों को लाता है अर्थात् वेदवाणी रूपी हव्य ही, जो अनेक छन्दोयुक्त है, रथन्तरादि संज्ञायुक्त अनेक नामों की सूचना देता है ॥ प्र० ६(३) द० १११५

(६००) हे परमेश्वर ! सामर्थ्य युक्त आप प्राप्त हूजिये। यह श्वेत सोम अथवा शुद्ध आत्मा आप के लिए नियमित है। अभिषव करने वाले अथवा ध्यान करने वाले के घर अथवा हृदय रूपी घर को आप प्राप्त होते हैं ॥ प्र० ६(३) द० १११६

(६०१) हे यश वा धन वाले ईश्वर ! जब कि आप अज्ञान निवारणार्थ हृदय में साक्षात अनुभव में आते हैं, तब पृथ्वी को सुख से बढ़ाते और तभी द्युलोक को अच्छा आधार देते हैं ॥ प्र० ६(३) द० १११७

(६०२) सर्वव्यापी प्रजापालक मुझ में ब्रह्म तेज कीर्ति तथा जो कि यज्ञ का जल है, उसको बढ़ावे। आकाश में जैसे द्युलोक को बढ़ाता है तद्वत ॥ प्र० ६(३) द० १२११

(६०३) हे गर्व दूर करने वाले, शान्त परमात्मन ! आप के दिये हुए जल संगत होवें। महान से महान आप मोक्षदान के लिए आकाश में उत्तम यशों को धारण कराइये ॥ प्र० ६(३) द० १२१२

(६०४) परमात्मन ! आप ने इन सब औषधियों को उत्पन्न किया है। आप ही जलों, गौ आदि पशुओं को उत्पन्न करते हैं। आपने ही बड़े अन्तरिक्ष लोक और उस के पदार्थों को फैलाया है। आप ने ही ज्योति से अन्धकार को अस्त-व्यस्त किया है ॥ प्र० ६ (३) द० १२।३

(६०५) हे परमेश्वर ! प्रकाशस्वरूप सर्वव्यापक होने से सब के आगे वर्तमान, यज्ञ के प्रकाशक, प्रत्येक ऋतु में पूजनीय, सब के दाता और आदाता, सम्पूर्ण रम्य पदार्थों को बहुतायत से धारण करने वाले, आप की स्तुति करता हूँ। ज्ञान यज्ञ के आप ही अग्नि, आप ही पुरोहित, आप ही देवता, आप ही ऋत्विज, आप ही होता है। अकेले ही आप सर्व कार्य साधते हैं ॥ प्र० ६ (३) द० १२।४

(६०६) अग्ने, प्रकाशस्वरूप परमात्मन ! पृथ्वीस्थ प्रजायें आप के ओंकारादि नाम को देववाणियों में मुख्य मानती हैं और तीन गुणा सात (३×७=२१) इक्कीस प्रकार के छन्दोयुक्त वेद मन्त्रों में प्रधान नाम जानती हैं। वे जानती हुई प्रजायें आप की स्तुति करती हैं। वाणियें आप की कीर्ति से दीप्ति युक्त प्रकट होती हैं ॥ प्र० ६ (३) द० १२।५

(६०७) परमेश्वर ! जिस प्रकार कोई जलतो समुद्र में स्थित बड़वा-नल में मिल जाते हैं और दूसरे जल समीप तक पहुँचने पाते हैं, और कोई नदी बनकर एक साथ अपने को देते हैं, ऐसे ही उन अत्यन्त प्रकाशमान कर्मों के न गिराने वाले आप को पवित्र पूर्वोक्त वाणियाँ समीप प्राप्त होती हैं, उन में कोई साक्षात और कोई परम्परा से आप का वर्णन करती हैं ॥ प्र० ६(३) द० १२।५

(६०८) हे अग्ने ! सांसारिक क्षणिक सुखदायिनी युवती सब जगत् की भली सुलाने वाली रात्रि वा मोक्षावस्था जो आप के ध्यान से पराङ्मुख करने वाली है, हम पर चढ़ी आती है। वही दिन वा ज्ञानप्रकाश की किरणों को दूर करना चाहती है, उससे हमें बचाइये ॥ प्र० ६ (३) द० १२।७

(६०९) हे परमात्मन ! सब से छुए हुए सर्व कामनाओं के वर्षाने वाले प्रकाशमान आप की पूजापरक हमारा वचन शीघ्र समर्थ हो तथा जिन

आप को ज्ञान प्रकट हुआ है उन सर्वनियन्ता आप के लिए पवित्र बुद्धि प्राप्त हो। जैसे नये उत्पन्न अग्नि के लिए सुन्दर सोम यज्ञ में प्राप्त होता है, तद्वत प्र० ६ (३) द० १२।८

(६१०) हे परमात्मन ! सब विद्वान और भौतिक देव दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोक और देवदूत अग्नि मेरे माननीय यज्ञ को ग्रहण करें और मैं आप के निन्दा योग्य वचनों को न बोलूँ। तथा आप के प्रति समीपस्थ हुआ मैं सुखों में ही हृष्ट होऊँ ॥ प्र० ६(३) द० १२।९

(६११) हे परमेश्वर ! मुझे द्युलोक और पृथ्वी लोक कीर्ति को प्राप्त करावें। मुझे राजा वा विद्वान पुरुष यश को प्राप्त करावें। ऐश्वर्य का यश प्राप्त होवे। यश कभी न छोड़े। कीर्ति वाला मैं इस विद्वत्सभा का प्रगल्भता से बोलने वाला होऊँ ॥ प्र० ६(३) द० १२।१०

(६१२) सूर्य वा विद्युत के पराक्रम युक्त कर्मों को वर्णित करता हूँ। जिन को कि वज्र वाला इन्द्र मुख्य और विख्यात करता है, वे ये हैं—मेघ को मारता फिर शीघ्र जलों को बहाता और मेघों की नदियाँ तोड़ता अर्थात् दोनों किनारों में रगड़ कर बहाता है ॥ प्र० ६ (३) द० १२।११

(६१३) मैं अग्नि हूँ। जो कि जन्म से ही ज्ञान के साधन प्रकाश का उत्पादक हूँ। घृत मेरा प्रकाशक है। प्रकाश मेरे मुख में है, तीन प्रकार अपने को धारण करने वाला हूँ—(१) प्राण रूप हो कर अन्तरिक्ष का अधिष्ठाता हूँ; (२) निरन्तर ज्योति हो कर द्युलोक का अधिष्ठाता हूँ; (३) सब हृदय में हूँ। अर्थात जब अग्नि प्रकट होती है, तभी साथ ही प्रकाश भी होता है। घी का सेवन मानो अग्नि की आंख में अञ्जन डाल कर प्रकाश को बढ़ाना है। इसी से यह भी बतलाया है कि घृत का भोजन आँखों को गुणदायक है। अग्नि ही प्राणादि तीन रूपों में स्थित है ॥ प्र० ६ (३) द० १२।१२

(६१४) व्यापक अग्नि गतिस्वभाव वाली पृथ्वी के मुख स्थान की रक्षा करती है। महान अग्नि सूर्य के स्थान की रक्षा करती है। महान अग्नि ही देवताओं के हर्षकारक यज्ञ की रक्षा करती है ॥ द० १२।१३

(६१५) परमेश्वर ! प्रकाशमान ! सर्वोपरि विराजमान आप के अनुग्रह से प्रकाश करती हुई जीभ भीतर मुख में खाती वा चलती है। वहीं आप अग्ने ! धनधान्य के प्रापक दुग्ध के साथ बाल्यावस्था में ही धन और तेज देखने को देते हैं ।। प्र० ६(३) द० १३।१

(६१६) हे अग्ने ! परमेश्वर ! आप की कृपा से चैत्र वैसाख दो मासों का ऋतु रमणीय हो, और निश्चय ज्येष्ठ आषाढ़ दो मासों का ऋतु रमणीय हो, और निश्चय श्रावण भाद्रपद का ऋतु, तत्पश्चात आश्विन कातिक का ऋतु मार्गसिर पौष का ऋतु और निश्चय माघ फाल्गुन का ऋतु रमणीय हो ।। प्र० ६(३) द० १३।२

(६१७) हे अग्ने ! परमात्मन् ! जिस में बहुत शिर, बहुत आँख, बहुत पाँव हैं, वह आप ब्रह्माण्ड भूमि को बाहर, भीतर सर्वत्र व्यापकर हृदय देश को उल्लघंन करके स्थित हैं ।। प्र० ६ (३) द० १३।३

(६१८) अग्ने ! परमात्मन ! इन आप का एक देश मात्र इस जगत में बार-बार होता है, और शेष आप का सच्चिदानन्द स्वरूप संसार के स्पर्श से रहित ही पूर्ण संसार के बाहर उच्चभाव से रहता है तथा जो जगत में आया हुआ एक देश है, वह खाने आदि व्यवहार युक्त चेतन प्राणिवर्ग और उस से रहित अचेतन पर्वत आदि पदार्थ, इन दोनों में छिपा हुआ अभिव्याप्त होकर स्थित है अर्थात जिस प्रकार परमात्मा अनन्त है, वैसे जगत परमात्मा के बराबर अनन्त नहीं है, किन्तु परमात्मा के एक देश में सब जगत बार बार सृष्टिकाल में स्थित रहता है ।। प्र० ६(३)द० १३।४

(६१९) उपादान कारण प्रकृति वा प्रधान सहित परमात्मा को यहाँ पुरुष कहा है, क्योंकि वह पुर (ब्रह्माण्ड) में शयन करता है । यह वर्तमान कल्पस्थ जगत और जो भूत कल्पस्थ और जो होने वाले कल्प में स्थित जगत है, यह सब पुरुष निश्चय कहा जाता है । इन आप का एक पाद मात्र सब प्राणी है । और इन आप के तीन पाद अमर अवकाश में हैं । यह त्रिकालस्थ जगत परमात्मा की अपेक्षा बहुत छोटा है ।। प्र० ६(३) द० १३।५

(६२०) भूत, भविष्यत, वर्तमान का आधार जितना है, उतना सब इस

परमात्मा का सामर्थ्य विशेष है, न कि केवल इतना ही परमात्मा है। किन्तु परमात्मा तो उस महिमा से अत्यन्त महान है। जो कुछ अन्न से उपजता है, उस का और मोक्ष का अधिष्ठाता परमात्मा ही है ।। प्र० ६(३) द० १३।६

(६२१) उस निमित्त कारण पुरुष से ब्रह्माण्डदेह उत्पन्न हुआ करता है। ब्रह्माण्डदेह का अधिष्ठाता परमात्मा होता है। वह उत्पन्न हुआ ब्रह्माण्डदेह फिर पृथ्वी और ग्राम, नगर आदि वा प्राणी देहों को लांघ कर वर्तमान रहा करता है अर्थात ग्रामनगरादि सब उस के भीतर आ जाते हैं। वह इन सब से बड़ा होता है ।। प्र० ६ (३) द० १३।७

(६२२) परम पुरुष से रचित और उसी से व्याप्त द्युलोक और पृथ्वीलोक और उन में स्थित प्राणी तथा अप्राणि वर्गो ! तुम तुम को भले प्रकार से पालन करने वाला मानता हूं, जो तुम परिमित देश तक व्याप्त होकर फैले हो, वे तुम द्युलोक और पृथिवीलोको ! हम को दुःख वा पाप से छुड़ाओ और सुखदायक होओ। जड़ सम्बोधन वैदिक शैलीमात्र है ।। प्र० ६ (३) द० १३।८

(६२३) परम पुरुष के रचे हुए सूर्य ! तेरी किरण रूप मूछें हरण करने वाली हैं, और तेरे अश्व के समान धारणा और आकर्षण गुण हरण करने वाले हैं। उस तुम को बुद्धिमान सेवनीय वैदिकी वाणी वाले पुरुष वेदानुसार वर्णित करते हैं ।। प्र० ६ (३) द० १३।९

(६२४) सुवर्ण का वा ज्योति का जो तेज है, और किरणों वा अन्य गोशब्दवाच्य पदार्थों का जो तेज है' त्रिकालैकरस ब्रह्म का जो तेज है, उस तेज से हम लोग अपने को संसर्ग वाला करें ।। प्र० ६(३) द० १३।१०

(६२५) हे परमेश्वर ! हमारे लिए शत्रुओं का दमन करने वाला वह ओज बल दीजिये। हे महान ! क्योंकि इस बड़े बल वा ब्रह्माण्ड के आप ईश्वर हैं अतः कर्मानुसार धन और स्थिर धान्यादि दीजिए। हमको पापियों में शत्रुओं का नाश घातक कीजिये ।। प्र० ६(३) द० १३।११

(६२६) गौवो ! तुम सब रूपों को धारण करती हुई सांय प्रातःकाल दुग्ध देने वाली सांडों सहित बछड़ों सहित उच्चभाव से प्राप्त होओ। तुम्हारे

लिए वह स्थान लम्बा-चौड़ा होवे। वह जल सुन्दर पीने योग्य होवें। इस प्रकार इस लोक में सुखदायक होओ ॥ प्र० ६(३) द० १३।१२

(६२७) प्रकाशस्वरूप परमात्मन ! वा भौतिकाग्ने ! हमारी आयुओं को तू पवित्र करता है। वह तू हमारे लिए रस और अन्न को प्रेरित कर प्राप्त करा तथा दुष्ट कुत्तों के समान राक्षसों को हम से दूर भगा ॥ प्र० ६(३) द० १४।१

(६२८) प्रकाशमान सूर्यलोक बहुत सोमयुक्त मधुर रस को पीवे। जो सूर्य यजमान के निमित अकण्टक आयु वा अन्न का धारण करता हुआ वायु के चलाने वाला अपने आप से प्रजाओं को पालता है, सब ओर से रक्षा करता है और बहुत से प्रकाश करता है ॥ प्र० ६(३) द० १४।२

(६२९) सूर्य लोक वा परमात्मन तारागणों वा ज्योतिर्गणों के विचित्र समूह को लांघ कर उदय होता है अर्थात् सर्वोपरि प्रकाशमान है। तथा प्राण अपान और अग्नि का प्रकाशक प्रेरक है एवं चलने वाले और न चलने वाले जगत् की आत्मा है। वही द्युलोक, भूलोक, अन्तरिक्षलोक इन तीनों को सब ओर से पालित पोषित करता और प्रकाश से भरपूर करता है ॥ प्र० ६(३) द० १४।३

(६३०) यह अपनी कक्षा में गमनशील वा रसों का चलाने वाला सूर्य लोक स्वस्थान में घूमता हुआ स्थित है तथा पृथ्वी माता, द्युलोक पिता और मध्यस्थ अन्तरिक्ष लोक को सामने आक्रान्त करता है ॥ प्र० ६(३) द० १४।४

(६३१) इस सूर्य की चमक शरीर के भीतर वा द्युलोक और भूलोक के बीच में वायु के ऊर्ध्व गमन से वायु का अधोगमन कराती हुई अथवा उदय से अस्त करती हुई विचरती है। ऐसे पृथ्वी से बड़ा सूर्य अन्तरिक्ष को प्रकाशित करता है। प्राण को सूर्य की चमक प्रेरित करती है, तब स्थावर जंगमों के शरीरों में वायु का नीचे ऊपर जाना आदि व्यवहार होता है ॥ प्र० ६(३) द० १४।५

(६३२) सूर्य के लिए वेदवचन धारण किया जाता है कि अहो प्रतिदिन किरणों से सूर्य ३० घटी परिमित दिनपर्यन्त प्रकाशता है ॥ प्र० ६(३), द० १४।६

(६३३) सब के प्रकाशक सूर्य के लिए जैसे तारागण रात्रियों के साथ भाग जाते हैं, ऐसे ही वे भी जो कि चोर हैं भाग जाते हैं ॥ प्र० ६(३) द० १४।७

(६३४) इस सूर्य की प्रकाशक किरणें प्राणियों को लक्ष्य करके विविध प्रकार से दीखती हैं, जैसे दहकते हुए अंगारे ॥ प्र० ६(३) द० १४।८

(६३५) हे सूर्य ! तू अन्धकारादि से तिराने वाला है, क्योंकि सब का दिखाने वाला है, सब चमकते पदार्थों को तू ही चमकाता है ॥ प्र० ६(३) द० १४।९

(६३६) सूर्य वा परमात्मन ! आप सब को सब कुछ दिखाने वा देखने के लिये देवताओं की प्रजा अर्थात मारुत (वायु) के स्थान अन्तरिक्षलोकस्थों के सामने उदय होते वा वर्तमान रहते हैं। तथा मनुष्यलोक के भी सामने वर्तमान होते हैं और समस्त द्युलोकस्थों के भी सामने हैं ॥ प्र० ६(३) द० १४।१०

(६३७) सब के शोधक ! वरणीय वा अनिष्ट के रोकने वाले सूर्य वा परमात्मन ! प्राणियों का धारण वा पोषण करते हुए इस लोकत्रय को जिस प्रकाश से क्रमपूर्वक आप प्रकाशित करते वा देखते हैं, उस प्रकाश की हम प्रशंसा करते हैं। यह अध्याहार वाक्य जानिये ॥ प्र० ६(३) द० १४।११

(६३८) सूर्य वा परमात्मन ! तू दिनों को रात्रियों से मापता हुआ और प्राणियों को दिखलाता और देखता हुआ विस्तृत आकाश लोक को उदय वा प्राप्त हो रहा है ॥ प्र० ६(३) द० १४।१२

(६३९) सूर्य अपने रमणीय स्वरूप के न गिराने वाली शुद्ध करने वाली सात रंग की किरणों को जोड़ता है, और उन अपनी जोड़ी हुई किरणों से अपने स्थान में घूमता है ॥ प्र० ६(३) द० १४।१३

(६४०) दिव्यगुण युक्त ! सब के प्रकाशक ! सूर्य ! तेज रूपी केशों वाले तुम को सात हारक किरणें प्राणियों तक पहुँचाती हैं। यद्यपि सूर्य एकत्र स्थित है, परन्तु अपनी सात रंग की किरणों से हमें तथा अन्य लोकों को प्राप्त समझा जाता है ॥ प्र० ६(३) द० १३।१४

ओ३म्

सामवेद महानाम्न्यार्चिकः

(६४१) हे परमेश्वर ! आप सब कुछ जानते हैं । अतः मार्ग को आप
प्राप्त करावें । आप दिशाओं का उपदेश करें । हमें लक्ष्य तक पहुँचने की दिशा
दर्शावें । हे पूर्ण शक्तियों के स्वामिन ! हे समस्त प्रजाओं के भीतर बसने और
उनको बसाने वाले, अत्यधिक धन सम्पन्न ! हमें शिक्षा करो ।

(६४२) हे त्रैलोक्यपते ! हे प्रचेतन ! उत्कृष्ट चेतना सम्पन्न !
चिन्मय ईश्वर ! हे इन्द्र परमेश्वर ! आप सबको प्रेरणा करने वाले सूर्य के
समान सर्वव्यापक, इन अभीष्ट उपासनाओं से अन्न और जीवन और ज्ञान-
स्वरूप प्रकाश प्राप्त करने के लिये हमें उत्तम रीति से ज्ञानवान करो ॥

(६४३) हे सबसे महान ! सबसे बड़े दाता और पूजा के योग्य ! हे
पापों का वर्जन करने हारे, ज्ञान से सम्पन्न ! आप शक्तिमान ही हैं । अतः हे
सबसे अधिक बलशालिन ! सर्वव्यापक, वज्रिन ! आप हमें धन, ज्ञान, शक्ति
दान, तेज और बल, अन्न के निमित्त समर्थ करो । हे वज्रिन ! आप हमें समर्थ
बनाओ । आप हमारे हृदय में प्रकट होओ । यह ज्ञान, स्तुतिमय भक्तिरस मेरे
हृदय पात्र में से पान करो और आनन्दमय होकर विराजो ॥

(६४४) हे त्रैलोक्यपते ! आप हमें श्रेष्ठ धन, आत्म ज्ञान के प्राप्त
करने के लिए उत्तम वीर्य, सामर्थ्य, ब्रह्मचर्य को प्राप्त कराओ, जो शूरवीरों
में भी सबसे अधिक बलवान है । हे सबसे महान ! बलवान ! पापनाशक !
आप समस्त ऐश्वर्यों, ज्ञानों और बलों के पति हैं और आपके वशीभूत समस्त
लोकों के हित के लिये उन पर वश करते हैं ॥

(६४५) जो समस्त ऐश्वर्य वालों में सबसे बड़ा है, वही समस्त संसार
में अपनी प्रसरणशील रश्मियों से व्यापक सूर्य के समान शुद्ध कान्तिमान है ।
हे सर्वज्ञ ! आप समस्त ऐश्वर्यशाली हमें भी ज्ञान और बल को प्राप्त कराने
के लिए आगे ले चलो । हे मनुष्य ! तू उसकी ही स्तुति कर ॥

(६४६) क्योंकि सर्वशक्तिमान परमेश्वर ही सब पर शासन करता है,
इसलिए अपनी रक्षा के लिए किसी से भी न हारे हुए, सब पर विजय करने
वाले उस परमात्मा का हम स्मरण करते हैं । वह हमारे शत्रुओं का विनाश
करे । वह महान परमेश्वर ही सब दुनिया का कर्त्ता, वेदज्ञानमय, सबका रक्षक,
सत्य स्वरूप और सबसे बड़ा है ॥

(६४७) परमैश्वर्य को प्राप्त करने के लिए हम न हारे हुए, पराक्रमी
विजेता परमात्मा को पुकारते हैं । वह हमें शत्रुओं से पार करे, वह हमें हमारे
शत्रुओं से पार करे ॥

(६४८) हे ज्ञान स्वरूप ! हे अखण्ड ! सबके पूर्व विद्यमान, मूलकारण !
तेरा जो स्वरूप सर्वव्यापक आनन्द देने के लिए है, हे सबको बसाने हारे ! वह
हमारे सुख के लिए हमें प्रदान कर । हे सर्वशक्तिमान ! तेरा सबका पालन-
पोषण करने वाला स्वरूप ही प्रशंसा किया जाता है । निश्चय से आप शक्ति-
मान होकर सब पर वश करने हारे हो, इसलिए उस स्तुति योग्य आपको ही
मैं अपने हृदय में आराध्य देव के समान स्थापन करता हूँ ॥

(६४९) हे प्रभु ! वृत्रहन ! हे विघ्नविनाशक ! हम स्त्री पुरुष गुरु
वा शिष्य प्राणियों के बड़े-बड़े स्वामियों के भी ऊपर विद्यमान तेरी स्तुति करते
हैं । जो आप वेद वाणियों में प्रतिपाद्य अर्थ के रूप में व्याप्त हैं, वह हमारे
आत्मा के मित्र, उत्तम रीति से सेवा करने योग्य एकमात्र अद्वितीय हैं ॥

अथ पंच पुरीषपदानि

(६५०) (१) हे इन्द्र परमेश्वर ! आप निश्चय से ऐसे ही हो ॥

(२) हे प्रकाशस्वरूप ! आप निश्चय से ऐसे प्रकाशस्वरूप
ही हो ॥

(३) हे सर्वैश्वर्य सम्पन्न ! सबके प्रकाशक, स्वयं प्रकाश-
मान ! निश्चय आप ऐसे ही हो ॥

(४) हे पूजन ! सबके पोषण करनेहारे परमात्मन ! आप ऐसे ही हो ॥

(५) हे समस्त देवगण ! दिव्य गुणों से सम्पन्न पदार्थों ! एवं विद्वानो ! आप सब परमेश्वर के उत्तम गुणों से ही इस प्रकार के हो ॥

॥ महानाम्न्यार्चिकः समाप्त हुआ ॥

सामवेद उत्तरार्चिकः

ओ३म्

सामवेद उत्तरार्चिकः

प्रथम अध्यायः

प्रथम प्रपाठकः

(६५१) हे मनुष्यो ! इस पावन शुद्धिकारक परमैश्वर्यवान देवताओं को लक्ष्य कर के अपना ज्ञानप्रदानरूप यजन करना चाहते हुए परमात्मा के लिये उद्गान करो। इस क्रिया से स्तोमगान की भी ध्वनि ध्वनित है ।। प्र० १ (१) सु० १।१

(६५२) वे स्थिरात्मा ज्ञानी लोग ईश्वर प्राप्ति के लिये दिव्यगुण-युक्त परमात्म देव को चाहने वाले प्राणरूपी अन्न को आत्मज्ञानानन्दरूपी मिठाई से संस्कृत करते हैं ।। प्र० १ (१) सु० १।२

(६५३) हे प्रकाशमान परमेश्वर ! तू हमारी गौ आदि पशुओं के लिये सुख, पुत्रादि वर्ग के लिये सुख, प्राण के लिये सुख, और गेहूं आदि औषधियों के लिये सुख वर्षा ।। प्र० १ (१) सु० १।३

(६५४) श्वेत दूध मिले सोम देदीप्यमान बार-बार अभ्यास की जाती हुई समर्थ दीप्ति से चमकते हैं ।। प्र० १ (१) सु० २।१

(६५५) जिस प्रकार प्रेरिकों से प्रेरित किया हुआ वीर कहने में चलने वाला बलवान अश्व शक्ति भर दौड़ता है, वैसे ही तीव्र गति से चलते हुए सोम दौड़ते हैं ।। प्र० १ (१) सु० २।२

(६५६) बुद्धितत्व के बढ़ाने व जगाने वाले सोम ! बढ़ता-बढ़ता हुआ और आकाश से संगत होता हुआ जैसे सूर्य वृष्टि की सहायता के लिए बढ़ता है, वैसे तू भी सुख के लिये हम से हवन किता हुआ आकाश को प्राप्त हो ।। प्र० १ (१) सु० २।३

(६५७) विद्वन ! योगबलैश्वर्य युक्त पुरुष ! योगाभ्यास से आत्मा

को शोधने वाले तेरे प्राणायामान्तर्गत वायुओं के विसर्ग तेरा यश चाहते हुए छोड़े जाते हैं, जैसे अश्व ॥ प्र० १ (१) सु० ३।१

(६५८) ध्यानी लोग मानस सूर्यमय नाड़ी समूह पर आनन्द टपकाने वाले घट को उघाड़ते हैं और अच्छी प्रकार चाहते हैं ॥ प्र० १ (१) सु० ३।२

(६५९) शान्त स्वभाव भगवदुपासक लोग सत्य वेद के धाम समुद्र-तुल्य गम्भीर परमात्मा को भली प्रकार सानन्द प्राप्त होते हैं, जैसे दुधारु गौवें घर को (जहां से गई थीं) प्राप्त होती हैं ॥ प्र० १।१ सु० ३।३

(६६०) हे परमात्मन ! सर्वत्र प्रकाश देने और व्यापक होने और हव्य अर्थात् दान देने और भोग करने योग्य पदार्थों को प्रदान करने के लिये आप हमें सदा प्राप्त हों । आप स्तुति करने योग्य, सब पदार्थों के देने वाले यज्ञ के आसन पर होता, उपदेष्टा के समान यज्ञ, आत्मा व ब्रह्माण्ड में विराजमान हैं ॥ प्र० १ (१) सु० ४।१

(६६१) प्रकाशमान ! अति बलिष्ट अग्ने, परमात्मन् ! उस पूर्व मन्त्रोक्त आप को समिधाओं वा योगाभ्यासादि साधनों से तथा घृत व प्रीति, आप की ओर झुकाव से हम अत्यन्त प्रज्वलित, वा हृदय में अत्यन्त साक्षात करें और आप बहुत प्रकाश कीजिए ॥ प्र० १ (१) सु० ४।२

(६६२) प्रकाशमान, दिव्यगुणयुक्त ! आप विस्तृत सुनने योग्य प्रशंसनीय बड़े भारी शोभायुक्त वीर्य को हमें प्राप्त कराते हैं ॥ प्र० १(१) सु० ४।३

(६६३) हे मित्र, वरुण, प्राण और अपान दीप्तियों द्वारा इन्द्रियों के मिलने के स्थान, त्रिकुटीभाग अथवा एकमात्र आश्रय आत्मा को योगज आनन्द रसों से सेचन करो । हे उत्तम प्रज्ञा और कर्म के सम्पादन करने हारे तुम दोनों हमारे रजोभाव से युक्त इन्द्रियों अथवा लोकों को मधु अर्थात विशेष चेतना या संवित्सिद्धि या आनन्द रस से सेचन करो । प्राण और अपान की साधना से त्रिकुटी में दीप्ति, इन्द्रियों में विशेष मधुर स्फूर्ति उत्पन्न होती है, जिस को "संवित्" कहते हैं ॥ प्र० १ (१) सु० ५।१

(६६४) बहुत वर्णनीय गुण कर्म स्वभाव वाले, हव्यरूपी अन्न से

बढ़ने वाले शुद्धि कारक मित्र और वरुण नामक मध्यस्थान वृष्टि कारक देव बल की बड़ाई से अत्यन्त लम्बी बिजलियों के साथ विराजते हैं ॥ प्र० १ (१) सु० ५।२

(६६५) मित्र और वरुण संज्ञक आकाश स्थदेव वेदमन्त्रों से वर्णित किये जाते हुए जल के स्थान "गगन मण्डल" में स्थित हों तथा जाज्वल्य-मान दहकते अग्नि से हूयमान सोम आदि औषधि रस को पीवें । उससे वृष्टि जल के बढ़ाने वाले हों ॥ प्र० १ (१) सु० ५।३

(६६६) परमेश्वर ! हमें प्राप्त होजिये, हम आपके लिये हृदय के शुद्ध भाव को उत्पन्न करते हैं । इस भाव को ग्रहण कीजिये और मुझ उपासक इस ज्ञान यज्ञ स्थल को अपनी प्राप्ति से पवित्र कीजिये ॥ प्र० १ (१) सु० ६।१

(६६७) परमेश्वर ! वृत्ति रूप केशों वाले, ब्रह्म में योग करने वाले आत्मा और मन दोनों आपको प्राप्त हों । हमारे वेदोक्त स्तोत्रों को स्वीकार कीजिये ॥ प्र० १ (१) सु० ६।२

(६६८) परमेश्वर ! सौम्य भाव वाले हृदय शुद्ध कर चुकने वाले वेदवेत्ता हम योगी लोग योग से सौम्य भाव वालों के ग्राहक आपको पुकारते हैं ॥ प्र० १ (१) सु० ६।३

(६६९) इन्द्र और अग्नि दोनों भौतिक देव आकाश में वर्तमान यजकर्म्म से प्रेरित प्राप्त हों और वेद मन्त्रों से अभिषुत किये हुए उत्तम सोम रस का पान करें । प्र० १ (१) सु० ७।१

(६७०) विष्णु परमात्मा सब का चेतानेवाला उपदेश करता है कि पूर्व मंत्र में कहे इन्द्र और अग्नि प्राण के सहायक हैं । इस वेद वाणी के साथ इस अभिषुत किये सोम को पीवें ॥ प्र० १ (१) सु० ७।२

(६७१) यज्ञ के सेवन के लिये बुद्धिमानों की अनुकूलता करने वाले इन्द्र और अग्नि इन दोनों का स्वीकार करता हूँ । वे दोनों इस यज्ञ में सोम के पान से तृप्त हों ॥ प्र० १ (१) सु० ७।३

(६७२) हे परमेश्वर ! तेरे प्राण धारण अन्न का जन्म द्युलोक, सूर्य में विद्यमान है । वही उत्तकृष्ट सुखप्रद बल, अन्न भूमि पर भी प्राप्त हैं

अर्थात् सूर्य में विद्यमान जीवन, सुख और ज्ञान दीप्ति आदि हम भूमि पर भी प्राप्त करते हैं ॥ प्र० १ (१) सु० ८।१

(६७३) वह सोम हमारे ऐश्वर्यशील, जीवन यज्ञ के कर्ता, व्यवस्थापक, वरुण स्वरूप जीव, अन्तरात्मा और प्राण स्वरूप इन्द्रियों का भीतरी पञ्च प्राणों के लिए हितकारी पदार्थों का दाता होकर हमारे प्रति प्रकट हो ॥ प्र० १ (१) सु० ८।२

(६७४) हे जगदीश्वर ! आप सबके स्वामी मनुष्यों के समस्त ये धन, रत्नादि हमें प्राप्त करावें । हम इनको सेवन करने वा सब में बाँट देने की इच्छा से याचना करते हैं । प्र० १ (१) सु० ८।३

(६७५) हे अमृत स्वरूप परमेश्वर ! आप अमृत की धारा से पवित्र करते हुए कर्मों और जीवात्माओं को व्यापक होकर आच्छादित किये हुए हमें प्राप्त होते हैं और रमणीय पदार्थों के धारण करने कराने वाले ज्योति स्वरूप कूप के समान गम्भीर अमृत के कूप रूप आप सत्य वेद के कारण अपने निज स्वरूप में सब ओर व्याप कर स्थित हैं ॥ प्र० १(१) सु० ९।१

(६७६) चतुर बुद्धिमान शुद्ध अन्तःकरण योग बल युक्त पुरुष, आनन्द के स्रोत परमात्मा से अलौकिक प्यारे सनातन वास्तव में सदा साथ रहने वाले माधुर्य रस को दुहता हुआ पाता है । फिर बुझने योग्य धारक परमात्मा को योग सिखाने वाले नेताओं के साथ वह शिष्य प्राप्त होता है ॥ प्र० १ (१) सु० ९।२

(६७७) हे सोम ! आत्मन ! तू क्षरित हो । और कोष, ब्रह्माण्ड, मूर्धस्थान को व्याप्त करके विराजमान हो और विद्वान पुरुषों से विवेचित, परिशोधित होकर ज्ञान के प्रति साक्षात प्रवाहित हो, ज्ञान को प्राप्त हो । बलवान, वेगमान अश्व को जिस प्रकार परिमार्जन करते हुए, झाड़ते, पोंछते या सान्त्वना देते हुए बागों से ले जाते हैं उसी प्रकार ज्ञान विभूति से युक्त सोमरूप तुझ आत्मा को परिमार्जन, शोधन करके योगसाधनाओं से हृदयगत बृहत ब्रह्म में ले जाते हैं ॥ प्र० १ (१) सु० १०।१

(६७८) अच्छे यज्ञयज्ञायुधों वाला वा सुशासन, प्रकाशमान, दुःख विनाशक, उपद्रवों से बचाता हुआ, इन्द्रियों का उत्पादक और रक्षक, उत्तम बलयुक्त पुष्टिदायक, अन्तरिक्ष लोकस्थ पदार्थों का थामने वाला पृथ्वीस्थ पदार्थों का धारण करने वाला सोम वा ईश्वर अग्नि में होम हुआ जाता वा पवित्र करता है । प्र० १ (१) सु० १०।२

(६७९) वेदों का उपदेशक, मेधावी मार्ग दिखाने से प्राणियों का अगुवा सर्वेश्वर, सबका धारक दृढ़, अचल, सर्वहितैषु, चेतन स्वरूप परमात्मा वेद द्वारा जतलाता है कि इन किरणों में निर्णय किया हुआ और छिपा हुआ, अज्ञानियों से अज्ञात, प्रसिद्ध सोमनामक वस्तु निधि होकर वर्त्तमान है । प्र० १(१) सु० १०।३

(६८०) व्याख्या नं० २३३ में दी गई है ॥ प्र० १ (१) सु० ११।१

(६८१) वज्रवाले ! परमेश्वर ! आपके तुल्य और कोई द्युलोकस्थ नहीं है और न पृथ्वी लोकस्थ है, न तो पूर्व उत्पन्न हुआ न आगे उत्पन्न होगा। प्राण चाहते हुए अश्व वा बल चाहते हुए और इन्द्रियों को चाहते हुए हम, आपकी स्तुति प्रार्थना करके पुकारते हैं ॥ प्र० १ (१) सु० ११।२

(६८२) इसकी व्याख्या नं० १६६ में हो चुकी है ॥ प्र० १(१)सु० १२।१

(६८३) परमात्मा राजा को उपदेश करता है कि हे राजन ! शत्रु के वास करने की दृढ़ जगह दुर्गादि के तोड़ने को हृष्टि कारक पदार्थों में उत्तम तत्त्वा हृष्टि कारक क्या पदार्थ तुझ को हृष्ट करे ? उत्तर अन्न का ॥ प्र० १ (१) सु० १२।२

(६८४) मेरी सृष्टि में बूढ़े, निर्बल और तुझ से शत्रुभाव न करके मित्र भाव रखने वालों को बहुत अच्छे सर्वता रक्षा के लिये हे राजन ! तू रक्षक हो ॥ प्र० १ (१) सु० १२।३

(६८५) व्याख्या नं० २३६ में आ चुकी है ॥ प्र० १ (१) सु० १३।१

(६८६) हे इन्द्र परमेश्वर ! प्रकाश वाले सुन्दर दानी, सेनाओं से युक्त भरपूर मेघ के समान बहुत पालन करने वाले, अन्न वाले, बहुबल युक्त,

बहुत गौ आदि पशु युक्त, और उनके पालक राजा को शीघ्र हम आप से मांगते हैं ।। प्र० १(१) सू० १३।२

(६८७) व्याख्या न० २३७ में हो चुकी है ॥ प्र० १(१) सू० १४।१

(६८८) जिस स्तुति योग्य, जैसे नासिका सुगन्ध दुर्गन्ध का ज्ञान कराती है तद्वत इष्ट अनिष्ट का बोध कराने वाले, इन्द्र परमात्मा को चञ्चल चित वाले दुर्धर मनुष्य नहीं स्वीकार करते, और जो परमात्मा आदरपूर्वक यज्ञार्थ सोम का अभिषव करने वाले गान रहित शस्त्र मन्त्रों से स्तुति करने वाले, और ज्ञानयुक्त स्तोत्रों से स्तुति करने वाले के लिए अन्न आदि का देने वाला है, उसको पुकारता हूँ ।। प्र० १(१) सू० १४।२

(६८९) व्याख्या न० ४६८ में देखिये ।। प्र० १ (१) सू० १५।१

(६९०) वायु आदि के दुर्विकार रूप राक्षसों का नाशक, विश्व में फैलने वाला सोम सुवर्णमय द्रोण कलश में यज्ञरूप घर को व्याप्त कर स्थित होता है ।। प्र० १(१) प्र० १(१) सू० १५।२

(६९१) सोम श्रेष्ठ पेय पदार्थों में उत्तम कक्षा का सत्कार योग्य दुष्ट शत्रु निवारण के लिए अत्यन्त सामर्थ्यदायक है, और यज्ञ करने वालों के धन आदि ऐश्वर्य को पूरित करता है ।। सू० १५।३

(६९२) व्याख्या न० ५७८ में कर आये हैं ।। प्र० १(१) सू० १६।१

(६९३) वीर्यवान पुरुष वा इन्द्र (वर्षा करने वाला विद्युत) जिस शुभ्र सोम का पान करके वृष के तुल्य पौरुष करता वा सिञ्चन करता है, इस सुखदायक का पान करके सुन्दर बुद्धि युक्त वा प्रकाशयुक्त वह पुरुष वा इन्द्र अन्नों वा खेतियों को सब ओर को प्राप्त होता वा पकाता है अर्थात बलिष्ठ हो जाता है ॥ प्र० १(१) सू० १६।२

(६९४) व्याख्या नं० ५६६ में हो चुकी है ॥ प्र० १(१) सू० १७।१

(६९५) सेवनीय अभिषुत किया हुआ सोम संग्राम वा मेघ विजय के लिए राजा वा विद्युत के लिये प्राप्त होता है । जिस प्रकार चेतन प्राणी के लिए चेतना करते है, तद्वत जयशील इन्द्र को उत्तेजित करता है ।। प्र० १(१) सू० १७।२

(६९६) बिजली वा राजा इस सोम के ही हर्षों के होने पर सेवनीय दाव को सर्वतः ग्रहण करता है और अन्तरिक्ष में वा युद्ध कर्म में जीतने वाला पूर्वोक्त बिजली वा राजा वृष्टि कारक वा शत्रुओं पर प्रहारों की वर्षा करने वाले आकाश में दीखने वाले धनुष चिह्न को वा शस्त्रास्त्र समूह को अच्छे प्रकार धारण करता है ।। प्र० १(१) सू० १७।३

(६९७) व्याख्या नं० ५४३ में देखिये ।। प्र० १(१) सू० १८।१

(६९८) पूर्वोक्त सोम का विशेष वर्णन करते हैं कि अभिषुत किया हुआ सोम सुशिक्षित अश्व वा विद्युत के समान पवित्र करने वाली धारा से सब ओर फैलता वा वेग से जाता है ॥ प्र० १ (१) सू० १८।२

(६९९) पूर्वोक्त विशेषणों वाले यज्ञ के लिये कठिनाई से कुचले जाने वाले सोम रस को यज्ञ के नेता ऋत्विज लोग विश्व व्यापिनी क्रिया से सब ओर फैलावें, जिस से मेघ होवें ।। प्र० १(१) सू० १८।२

(७००) व्याख्या न० ५५४ में आ गई ।। प्र० १ (१) सू० १९।१

(७०१) सत्यभूत यज्ञ की अग्नि की लपट से चटाचट शब्द करने वाला, इस यज्ञ कर्म का पालक, नष्ट न करने योग्य सोम प्यारे रस को प्राप्त कराता है । इस से द्युलोक के अधिकता से प्रकाश ख्याति-यश को धारण करता है, जैसे बेटा माता-पिता के बीच तीसरे छिपे हुए नाम को धारण करता है ।। प्र० १(१) सू० १९।२

(७०२) प्रकाशमान, ऋत्विजों द्वारा कलशों में से नीचा जाता हुआ (निकाला जाता हुआ), सुवर्णमय कोश स्रुवादि में चारों ओर से विराजमान,

प्रातः सवनादि तीनों सवनों में अधिकृत सोम, सूर्य किरणों को विराजित करता है, और शब्द करता है। उस सोम को दुहने वाले ऋत्विज प्रशंसा करते हैं ॥ प्र० १(१) सु० १६।३

(७०३) व्याख्या न० ३५ में देखिये ॥ प्र० १(१) सु० २०।१

(७०४) जो मनुष्य अग्नि का भली प्रकार से उपयोग करना जानते हैं और सोम आदि को काम में लाते हैं वा परमेश्वर की उपासना करते हैं, उन का बल क्षीण नहीं होता, उन के अन्न का पचना, शरीरादि की वृद्धि और रक्षा होती है ॥ प्र० १(१) सु० २०।२

(७०५) व्याख्या मं० नं० ७ पर हो चुकी है ॥ प्र० १(१) सु० २१।१

(७०६) प्राणिजन कर्मानुसार परमेश्वर के वश में रह कर अपने किए कर्मों के भोगार्थ योनि को प्राप्त होते हैं। यद्यपि परमात्मा सर्वेन्द्रिय विवर्जित होने से मन रहित है, तथापि सर्वेन्द्रिय गुण भास० इत्यादि श्वेताश्वतोपनिषद के अनुसार मन शब्द का प्रयोग शुद्ध है, कुछ दोष नहीं ॥ प्र० १(११) सु० २१।२

(७०७) हे ज्ञान प्रकाशक ! आप का पूर्ण और पूरक तेज हमारी आंख आदि ज्ञानेन्द्रियों का पतन कराने वाला न होवे, किन्तु ज्ञान का वर्धक होवे। हे हम अल्पज्ञों के पालक वा स्वामिन ! इस प्रयोजन के लिए हमारी की हुई भक्ति को स्वीकार कीजिये ॥ प्र० १(१) सु० २१।३

(७०८) व्याख्या न० ४०८ पर हो चुकी ॥ प्र० १(१) सु० २२।१

(७०९) प्रजावर्ग को चाहिये कि राजगद्दी के लिए ऐसे पुरुष का वरण करें जो कि व्यवहारों को सुने, देखे, दृढ़ांग और दृढ़ व्यवसाय हो, जिस की उग्रता शत्रुओं को असह्य हो, जो राजभक्तों का सेवनीय और सब का रक्षक हो ॥ प्र० १(१) सु० २२।२

(७१०) व्याख्या न० ४०६ में हो चुकी ॥ प्र० १(१) सु० २३।१

(७११) हे वज्रादि धारी वीर ! राजन ! जैसे नदियों से वा नहरों से जल को बढ़ाते हैं, इसी प्रकार वेदोक्त कर्म वा वेद वृद्धि चाहते हुए आप को प्रति दिन बढ़ाते हैं ॥ प्र० १(१) सु० २३।२

(७१२) कहीं जाना चाहते हुए राजा के बड़े जुवे वाले, बड़े रथ में वचन से ही जुतवाने वाले, सुखदायक राजावाहन घोड़ों को राजा की प्रशंसा के साथ सारथि आदि जोतते हैं ॥ प्र० १(१) सु० २३।३

दूसरा अध्याय

(७१३) व्याख्या न० १५५ में हो चुकी है ॥ प्र० १(२) सु० १।१

(७१४) हे ऋत्विजो ! तुम बहुतों से, वा बहुत पुकारे हुए, बहुत स्तुत किए हुए, गान कीर्तन करने योग्य, सदा से सनातन भाव से प्रसिद्ध परमात्मदेव को इन्द्र नाम से विख्यात कहो ॥ प्र० १(२) सु० १।२

(७१५) परमात्मा ही हमारे लिए बड़े बलों का देने वाला है, वही हमें कर्मानुकूल नचाने वाला है, वही अनन्त घुटनों के बल हम को कर्ममय बन्धनों से बांधता है ॥ प्र० १(२) सु० १।३

(७१६) व्याख्या न० १५६ में देखो ॥ प्र० १(२) सु० २।१

(७१७) मनुष्यों को परस्परोपदेश से परमेश्वर की स्तुति, उपासना, प्रार्थना का प्रचार करना चाहिए, जिससे ज्ञान प्रकाश बढ़े ॥ प्र० १ (२) सु० २।२

(७१८) प्रभु ! आप हमारे लिए ऐसी इच्छा करें कि हमारे पास अन्न पशु लक्ष्मी आदि सब सुख सामग्री विद्यमान हो ॥ प्र० १(२)० सु २।३

(७१९) व्याख्या नं० १५७ में हो चुकी है।। प्र० १ (२) सु० ३।१

(७२०) ज्ञान लाभ के लिए मनुष्यों को परमात्मा का परित्याग करके अन्य की स्तुति नहीं करनी चाहिए ।। प्र० १ (२) सु० ३।२

(७२१) परमात्मा का साक्षात्कार चाहने और यज्ञ करने वालों के निद्रा, आलस्यादि तमोगुण दूर हो जाते हैं ।। प्र० १(२)सु० ३।३

(७२२) व्याख्या नं० १५८ में हो चुकी है ।। प्र० १ (२) सु० ४।१

(७२३) सात योग भूमियों में आसन जमाने वाले पुरुष जिस परमेश्वर में सब योग लक्ष्मियों का अधिकता से वर्णित करते हैं, मन शुद्ध होने पर उस परमेश्वर को हम पुकारते हैं ।। प्र० १ (२) सु० ४।२

(७२४) विद्वान लोग त्रिकद्रुकनामक यज्ञ के ३ दिनों में ज्ञान साधन यज्ञ का विस्तार करते हैं । उसी यज्ञ को हमारी वाणी बढ़ावे । प्र०१ (२) सु० ४।३

(७२५) व्याख्या नं० १५९ में आ गई ।। प्र० १ (२) सु० ५।१

(७२६) समर्थ किरणयुक्त किरणों के समर्थक मेघ के अवयवों को खण्ड खण्ड करने वाले सूर्य ! यह सोम तेरे मेघों के साथ संग्राम और विजय के लिए खींच कर रक्खा है और आह्वान वा वर्णन किया जाता है अर्थात् सूर्य की किरणें समर्थ हैं और सूर्य उनका समर्थक है । इसलिए सूर्य और मेघ के युद्ध में सूर्य की विजय अर्थात् वृष्टि के लिए सोम से यज्ञ करना चाहिए ।। प्र० १(२) सु० ५।२

(७२७) रश्मियों से वर्षाने वाले सूर्य का पतन न करने वाले अर्थात् अपने स्थान पर स्थित रखने वाले इन्द्र ! अतिशय करके न गिराने वाला (रक्षा करने वाला) तेरा कुण्डपाय्य यज्ञविशेष है, उस यज्ञ में ऋत्विगादि लोग चित्त को नितरां धारण करते हैं ।। प्र १(२) सु० ५।३

(७२८) व्याख्या नं० १६० में हो चुकी है ।। प्र० १ (२) सु० ६।१

(७२९) हे राजन् ! आप की की हुई हमारी रक्षाओं से आप को बहुकर्म युक्त, पुरुषार्थी, बहुदानी, बहुत धनी और बहुत बड़े परिमाण वाला हम जानते हैं, निश्चय ।। प्र० १ (२) सु० ६।२

(७३०) दैवी और मानुषी कोई बाधा विघ्न नहीं कर सकती । विज्ञान बल से दैवी, और बाहुबल से मानुषी रुकावटों को आप हटा सकते हैं ।। प्र० १ (२) सु० ६।३

(७३१) व्याख्या म० नं० १६१ में हो चुकी ।।प्र० १ (२) सु० ७।१

(७३२) इन्द्रयागादि कर्मानुष्ठान के विरोधी, स्वार्थी, मूढ़ लोग यज्ञ के नाश से वृष्टिकारक इन्द्र के विघातक न हों, और इन्द्र से उन्हें आनुकूल्य भी न हो । यह परमात्मा का अनुग्रह प्रार्थित है ।। प्र० १ (२) सु० ७।२

(७३३) किरणों में मिले हुए शुभ्र इन्द्र को इस यज्ञ में बड़े अन्नादि धन के लिए (वृष्टि द्वारा) मनुष्य सोम से हृष्ट अर्थात् वृष्टि आदि स्वकार्य करने में अनुकूल करें । और तू उस सोम को शोध, जैसे गौर मृग सोमरस रूप जल को पीता है ।। प्र० १ (२) सु० ७।३

(७३४) व्याख्या के लिए देखो नं० १२४ ।। प्र० १(२) सु० ८।१

(७३५) (७३६) कर्म के नेता ऋत्विजों से धोया हुआ, फिर अश्मा (पत्थरों) से छेद कर निचोड़ा हुआ, और ऊर्णामय दशापवित्रों से सर्वथा स्वच्छ किया हुआ सोम है, जैसा नदियों में स्नान कराया हुआ घोड़ा ।। उस सोम को आप के लिए दुग्धादि में मिला कर पकाते हुए हम लोग स्वाद बनाते हैं, जैसे गौवों के लिए यवादि से सिद्ध किया दलिया आदि रातिब स्वादु बनाते हैं तद्वत । हे राजन् ! यजमान ! इस यज्ञ में आप को हम सोम पिलाते हैं । प्र० १ (२) सु० ८।- २, ३

(७३७) व्याख्या नं० १६५ में देखो ।। प्र० १(२) सु० ९।१

(७३८) मनुष्यों को सोमरस खींच कर राजा को अर्पण करना चाहिए और राजा को उसका सेवन करके व्यायामादि से शरीर की उन्नति

करनी चाहिए ।। प्र० १ (२) सु० ६।२

(७३६) शूरवीर राजन् ! आपकी दोनों कोखों में सोमरस व्याप जावे। भोजन के रस के साथ शिर को व्याप जावे और धनैश्वर्य के साथ दोनों भुजाओं को व्याप जावे ।। प्र० १ (२) सु० ६।३

(७४०) व्याख्या न० १६४ में हो चुकी ।। प्र० १(२) सु० १०।१

(७४१) हे मित्रो ! बहुत शत्रुओं के नाशक, बहुत धनादि वरणीय पदार्थों के स्वामी परमात्मा को सोम अभिषुत होने पर मिल कर गाओ ।। प्र० १ (२)सु० १०।२

(७४२) हे मित्रो ! वही ईश्वर हमारे योग साधन में साक्षात हो, वही धन के लिए अनुकूल हो, वही बुद्धि से अनुकूल हो, वही हम को बलों वा अन्नों से प्राप्त हो ।। प्र० १ (२) सु० १०।३

(७४३) व्याख्या न० १६३ में देखो ।। प्र० १ (२) सु० ११।१

(७४४) शिष्य प्रशिष्यों को गुरु परम्परा से परमात्मा की स्तुति प्रार्थना उपासना करनी चाहिए ।। प्र० १ (२) सु० ११।२

(७४५) परमेश्वर जो हमारे स्तोत्र वा पुकार को सुन ले स्वीकार कर ले, तो उसी समय बहुत सी रक्षाओं और बलों के साथ हम को प्राप्त होवे ।। प्र० १ (२) सु० ११।३

(७४६) व्याख्या न० ३८१ में हो चुकी ।। प्र० १ (२) सु० १२।१

(७४७) वह परमेश्वर सूर्यादि के स्थान विस्तृत आकाश में महिमा से स्थित, भक्तों के कार्य भली प्रकार करने वाला, अत्युत्तम यश वाला, कर्मों में भली प्रकार जीतने वाला अर्थात् कर्मानुसार फलदायी है।। प्र० १ (२) सु० १२।२

(७४८) बलों का जिस में लाभ है ऐसे, कामादि शत्रुओं से संग्राम

के लिए, उस ही महाबली परमेश्वर को पुकारता हूँ कि हे परमेश्वर ! आप हमारी वृद्धि और सुख के निमित्त समीपवर्ती मित्र हूजिए ।। प्र० १ (२) सु० १२।३

(७४६) व्याख्या नं० ४५ में देखें ।। प्र० १ (२) सु० १३।१

(७५०) वह अग्नि यजमानादि जनों के धनों में उत्तम धन को युक्त करता है। वह अच्छी प्रकार आहुति दिया हुआ उत्तम श्रद्धा वाला शोभन शमी आदि काष्ट वाला होम संसार के रक्षक तेज से दूर तक जाता है ।। प्र० १(२) सु० १३।२

(७५१) व्याख्या नं० ३०३ में हो चुकी है ।। प्र०१ (२) सु० १४।१

(७५२) मनुष्यों को सदा सूर्यादि के प्रकाश में ही भोजन करना चाहिए, अन्धकार में नहीं। सूर्य लोक सदा उदय रहता है, नक्षत्र और किरणों वाला है, और वह एक साथ ही किरणों को ऊपर को छोड़ता है ।। प्र० १ (२) सु० १४।२

(७५३) व्याख्या नं० ३०४ में आ गई है ।। प्र० १ (२) सु० १५।१

(७५४) सब जगत के नेता समान मन वाले सूर्य और चन्द्रमा ! तुम दोनों वैदिक वाणी वाले, यज्ञानुष्ठान संपन्न पुरुष के लिए अनेक प्रकार का भोजन देते हो, कर्म में प्रवृत्त करते हो, जगत के सामने अपने रमणीय स्वरूप को नियमपूर्वक लाते हो। सो तुम दोनों सोम का रस शोधन करो ।। प्र० १ (२) सु० १५।२

(७५५) इस सोम की पुरातन चमक को पहचान कर विद्वान ऋत्विज श्वेत वसुओं के सेवनीय बुद्धिवर्द्धक दुग्ध को दुहते हैं ।। प्र० १(२) सु० १६।१

(७५६) वह सोम सूर्य सा नेत्रसहायक है। यह सोम ३० उकथ पात्रों अथवा महीने के ३० दिनों को तथा सात नदियों रूप भूरादिकों को द्युलोक-

पर्यन्त जाता है ॥ प्र० १ (२) सु० १६।२

(७५७) यह सोम सब भवनों को शुद्ध करता हुआ आकाश में स्थित होता है, जैसे प्रकाशमान सूर्य सब भवनों को किरणों से शोधता हुआ स्थित है॥ प्र० १ (२) सु० १६।३

(७५८) हरित वर्ण यह सोम प्राचीन जन्म से अभिषुत किया हुआ पोतनाम दशापवित्र पर रखा हुआ वायु आदि देवों के लिए प्राप्त होता है ॥ प्र० १ (२) सु० १७।१

(७५९) यह सोम पुराणे ज्ञान साधन से प्रकाशमान बुद्धि तत्वका उभारने वाला विद्वान ऋत्विज से वायु आदि के लिए सब ओर बहता है ॥ प्र० १ (२) सु० १७।२

(७६०) पुराणो ही रस को पूर्ण करता हुआ सोम दशापवित्र पर सर्वतः सेवन किया जाता है। अग्नि में पड़ने से चटपट करता हुआ वायु आदि देवों को जनता है ॥ प्र० १(२) सु० १७।३

(७६१) सोम ! विरोध में खड़े होने वालों को दण्ड से शिक्षा दे, शत्रु के लिए भय रख, और राज्यलक्ष्मी का लाभ करा। सोम सेवन करने वालों (वीरों) के शत्रुओं का नाश और राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति होती है ॥ प्र० १(२) सु० १८।१

(७६२) व्याख्या नं० ४८७ में हो चुकी ॥ प्र० १(२) सु० १८।२

(७६३) इसकी व्याख्या नं० ६५१ में हो चुकी ॥ प्र०१(२) सु० १८।३

(७६४) इसकी व्याख्या नं० ४७८ में हो चुकी ॥ प्र० १(२) सु० १९।१

(७६५) पीतवर्ण पके हुए चमकीले सोम बल की परिणाम रूप वर्षा से इन्द्रियसुक्त बल वा अन्न को धौनों अर्थात् मणों वा बहुत सर्वतः वर्षाते हैं॥ प्र० १ (२) सु० १९।२

(७६६) खींचे हुए प्रसिद्ध २४ प्रकार के सोम, इन्द्र, वायु, जल, ऋत्विजों और व्यापक सूत्रात्मा वायु के लिए बल द्वारा जावें ॥ प्र० १ (२) सु० १९।३

(७६७) इसकी व्याख्या नं० ५१४ में देखो ॥ प्र०१ (२) सु० २०।१

(७६८) इच्छा करने योग्य श्वेत रंग का प्यारा शोधने योग्य पुत्र सा सोम पकाने पर निथड़ जाता है। इस सोम को नाद करते हुए वसतीवरी नामक जलों में दोनों भुजाओं की अंगुलियें चलाती हैं। इसमें दृष्टान्त—जैसे शूरवीर लोग रथ को संग्रामों में चलाते हैं॥ प्र० १ (२) सु० २०।२

(७६९) व्याख्या नं० ४७७ में देखें॥ प्र० १ (२) सु० २१।१

(७७०) और यह सोम जैसे सूर्य लोकसमूह को वश में करता है वैसे सब की बुद्धि को वश में करता है। अश्व के समान लगामों के तुल्य अंगुलियों से वश में किया जाता है॥ प्र० १(२) सु० २१।२

(७७१) और इस हरे सोम को (१) विद्या (२) शिक्षा (३) ब्रह्मचर्य युक्त ऋत्विक की मिलाने वाली अंगुलियें दृष्टिकारक विद्युद्विशेष के शोषण के लिए पत्थरों से अभिषुत करती हैं॥ प्र० १(२) सु० २१।३

(७७२) वायु आदि को चाहने वाला सोम, इस हवन की जाती हुई धारा से टपकता है। फिर शब्द करता हुआ सब ओर को फैलता है॥ प्र० १(२) सु० २२।१

(७७३) व्याख्या नं० ५७६ में हो चुकी है॥ प्र० १ (२) सु० २२।२

(७७४) व्याख्या नं० ५५३ में हो चुकी है॥ प्र० १(२) सु० २२।३

तीसरा अध्याय

द्वितीय प्रपाठकः

(७७५) हे शान्त स्वरूप ! परमात्मन ! सब में मुख्य आप सब स्तोत्रों और प्रार्थनाओं को अनेक प्रकार की रक्षाओं से सर्वतः पवित्र कीजिये॥ प्र० २(१) सु० १।१

(७७६) हे सर्वशक्तिन ! मुख्य आप आकाशस्थ मेघ के जलों और वेद वाणियों को प्रेरित करते हैं । वह आप हमें पवित्र कीजिए ।। प्र० २(१) सु० १।२

(७७७) हे शक्तिन ! आपकी महिमा के लिए ये भुवन उपस्थित है । आप के लिए वेदवाणियें दौड़ती है ।। प्र० २(१) सु० १।३

(७७८) व्याख्या (४७६) में हो चुकी है ।। प्र० २ (१) सु० २।१

(७७९) हे परमेश्वर ! जिस आपके मित्रभाव में रहने वाले हम आपके श्रेष्ठ यश में शत्रुओं को तिरस्कृत करें, वह आप ऐसी कृपा कीजिए ।। प्र० २(१) सु० २।२

(७८०) हे परमेश्वर ! जो तेरे तीक्ष्ण भयानक विद्युतादि शस्त्रास्त्र कुन्द नाशार्थ हैं, उनसे सब दुष्टगण का निरन्तर विदारण कीजिए और आपके भक्त हम लोगों की रक्षा कीजिए ।। प्र० २(१) सु० २।३

(७८१) व्याख्या नं० ५०४ में हो गई है ।। प्र० २(१) सु० ३।१

(७८२) वीर्य कारक सोम ! तेरा बल वीर्यकारक है । तेरा सेवन वीर्यकारक है । तेरा अभिषुत किया हुआ रस भी वीर्यकारक है । वह तू वीर्यकारक ही असि है ।। प्र० २(१) सु० ३।२

(७८३) सोम ! तू विद्युत के समान शब्द करता और गौ आदि पशुओं को मिलाता तथा अश्वादिकों को संगत कराता है । हमारे द्वारों को ऐश्वर्य के लिए खोल ।। प्र० २(१) सु० ३।३

(७८४) इसकी व्याख्या नं० ४८० में हो गई ।। प्र० २(१) सु० ४।१

(७८५) जब मनुष्यों से अतिशयता से शोधा जाता हुआ सोम वसतीवरी संज्ञक जलों से सर्वतः छिड़का जाता है, तब द्रोण कलश में यश को प्राप्त होता है ।। प्र० २(१) सु० ४।२

(७८६) सुन्दर यज्ञपात्ररूप आयुधों वाले सोम ! इस यज्ञ में

प्राप्त हो और हर्ष प्राप्त कराता हुआ सुन्दर वीर्य को सर्वतः प्राप्त करा ।। प्र० २(१) सु० ४।३

(७८७) हे परमेश्वर ! प्राण को शुद्ध करते हुए शुद्धि संपादक आपके मित्र भाव का हम वरण करते हैं ।। प्र० २(१) सु० ५।१

(७८८) हे अमृतस्वरूप ! परमात्मन ! जो आपकी अमृत की लहरें प्रवाह से प्राण का अभिषेक करती हैं उनसे हमको आनन्दित कीजिए ।। प्र० २(१) सु० ५।२

(७८९) हे अमृतस्वरूप ! परमात्मन ! सबके स्वामी पवित्र करते हुए आप हमारे लिए पुत्रादि सहित धन और अन्न को प्राप्त कीजिए ।। प्र० २(१) सु० ५।३

(७९०) इसकी व्याख्या नं० ३ में हो चुकी ।। प्र० २(१) सु० ६।१

(७९१) प्रजापालक हव्य वा भोग्यफल पहुँचाने वाले बहुतों को प्यारे अग्नि वा परमेश्वर को होम साधनों वा पुकारने के मन्त्रों से सर्वदा होम करते वा पुकारते है ।। प्र० २(१) सु० ६।२

(७९२) हे अग्नि ! वा परमेश्वर ! वायु आदि देवों वा शील सन्तोषादि उत्तम दिव्यगुणों को इस यज्ञ में वा ध्यानयोग यज्ञ में प्राप्त करा । यथार्थ आसन रचने वाले यजमान वा योगी के लिए अरणियों में प्रकट वा हृदयकमल में साक्षात हुआ हमारा होम का सिद्ध करने वाला वा कर्म फल दाता प्रशंसनीय है ।। प्र० २(१) सु० ६।३

(७९३) हम याज्ञिक लोग सोमपान के लिए प्राण और अपान को पुकारते हैं, जो दोनों पवित्र बलयुक्त हुए हैं । "यज्ञ से" यह शेष है ।। प्र० २(१) सु० ७।१

(७९४) जो यज्ञ से यज्ञ के बढ़ाने वाले सच्ची ज्योति के पालक हैं, उन प्राण और अपान को चाहता हूँ ।। प्र० २(१) सु० ७।२

(७९५) अपान रक्षक समर्थ होवे । प्राण सब रक्षाओं से समर्थ होवे । वे दोनों हमको बहुत धन युक्त करें ।। प्र० २(१) सु० ७।३

(७९६) व्याख्या नं० १९८ में हो चुकी है ।। प्र० २ (१) सु० ८।१

(७९७) परमेश्वर ही वेदवचन से बँधे हुए से चलने वाले शुभ और अशुभ कार्यों के मध्य साथ-साथ सब जगह व्यापक है और परमेश्वर ज्योतिः स्वरूप तथा दुष्टों को दण्ड देने वाला है ।। प्र० २(१) सु० ८।२

(७९८) हे सर्वोपरिवर्तमान ! इन्द्र ! परमेश्वर ! सर्वोपरिवर्तमान रक्षाओं से संग्रामों में और असंख्य महाधन वाले महायुद्धों में हमारी रक्षा कीजिए ।। प्र० २(१) सु० ८।३

(७९९) परमेश्वर ने बड़ी आँख के लिए द्युलोक में सूर्य को चढ़ाया है । वह सूर्य किरणों से मेघ को इधर उधर फैलाता है ।। प्र० २(१) सु० ८।४

(८००) सूर्य वा विद्युत और अग्नि के निमित्त बहुत हव्य का हम होम करते हैं और अपनी रक्षा चाहते हुए हम यज्ञ कर्म के साथ वेदवाणियों को उच्चारित करते हैं । तथा ऋत्विज आदिकों का भली प्रकार वरण करते हैं ।। प्र० २(१) सु० ९।१

(८०१) उन दोनों इन्द्र और अग्नि के अन्न लाभ के लिए और रक्षा के लिए बुद्धिमान बहुत से ऋत्विज लोग ऐसे जिस कारण प्रशंसा करते हैं, इस कारण हम भी प्रशंसा करते हैं ।। प्र० २(१) सु० ९।२

(८०२) उन दोनों इन्द्र और अग्नि की यज्ञ सेवनार्थ सेवन को चाहते हुए हव्य अन्न वाले बुद्धिमान हम वेदवाणियों से प्रशंसा करते हैं ।। प्र० २(१) सु० ९।३

(८०३) व्याख्या नं० ४९९ में हो चुकी है ।। प्र० २(१) सु० १०।१

(८०४) पवित्रता सम्पादक सोम ! द्युलोक और पृथ्वी लोक को अपने प्रभाव से धारण करने वाले; सूर्य के समान दृष्टि के सहायक बलयुक्त और बलदायक तुझको बलों के निमित्त प्रसन्न करता हूँ ।। प्र० २(१) सु० १०।२

(८०५) हे पवमान सोम ! तू जानेवाली इस धारा से विद्वान ऋत्विज द्वारा हवन किया हुआ हरित वर्ण निकला हुआ फैज और सहयोगी इन्द्र को मेघ-बूंदों में परिवर्त्त कर । अर्थात् जब विद्वान चलती धारा से सोम का हवन करते हैं तब वह हरितवर्णधूम्र रूप में परिणित होता हुआ मेघों तक पहुँचता और वर्षा का हेतु होता है ।। प्र० २(१) सु० १०।३

(८०६) जैसे साँड गौवों को देखकर शब्द करता है ऐसे ही सोम ! तू भी पृथ्वी और द्युलोक को शब्द से पूरित करता हुआ आकाश को जाता है । तब विद्युत का शब्द मेघ और सूर्य के संग्राम में सब ओर सुना जाता है । इस प्रकार पीतवर्ण सोम इस चटचटा शब्द रूपिणी वाणी को बोलता हुआ सब ओर जाता है । प्र० २(१) सु० ११।१

(८०७) शोधे जाते हुए सोम ! तू रसालु और प्राण से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ, सूर्य के लिए ऊपर उठता हुआ, मधुररसयुक्त किरणगति जल कणों को प्राप्त होता है, सब ओर वर्षता और विस्तार को करता हुआ जाता है ।। प्र० २(१) सु० ११।२

(८०८) इस प्रकार हर्षदायक प्रकाशित, श्वेत रंग को सर्वशः धारण करता हुआ, अग्नि में टपकाया हुआ सूर्य किरणों को मानो चाहता हुआ मेघ के, टपकते सानु को नमाता हुआ हमारे हर्ष के लिए सब ओर फैलता है ।। प्र० २(१) सु० ११।३

(८०९) व्याख्या नं० २३४ में हो चुकी है ।। प्र० २(१) सु० १२।१

(८१०) हे आश्चर्यमय, अपने सुख स्वरूप में दुष्ट दमनार्थ दण्ड धारण करने वाले मेघों के स्वामी परमेश्वर ! आप शत्रुओं को दबाने वाले, महान्, स्तुति किए जाते हुए, हमारे लिए गौ, बैल, घोड़े आदि पशु बाहने योग्य सदा दीजिए । जैसे जीतने वाले वीर को अन्न आदि उपहार भोगार्थ देते हैं ।। प्र० २(१) सु० १२।२

(८११) इसकी व्याख्या नं० २३५ में हो गई ।। प्र० २(१) सु० १३।१

(८१२) तेजस्वी वीर बहुत सी शत्रु सेनाओं को जीतता और नष्ट

करता है वैसे ही परमेश्वर पापों को जीतता और नष्ट करता है। तथा असंख्य धन वाले इस परमेश्वर के दान, यज्ञ आदि करने वाले यजमान के लिए प्रवाह से बहते हैं जैसे पर्वत से जल बहते हैं ॥ प्र० २(१) सु० १३।२

(८१३) व्याख्या (६०२) में हो चुकी ॥ प्र० २(१) सु० १४।१

(८१४) हे उत्तम व्याप्ति वाले, कर्मों की धरोहर रखने वाले, स्तुति, वाणियों से भजनीय परमेश्वर ! आप से हम मांगते हैं, प्रार्थना करते हैं कि आपकी सहायता से बोध युक्त उपासक लोग शोभमान होते हैं। आपके यश उपमान हैं; न कि किसी से उपमेय। वह आप पुत्र तुल्य भक्तों पर प्रसन्न हूजिए ॥ प्र० २(१) सु० १४।२

(८१५) इसकी व्याख्या नं० ४७० में हो गई॥ प्र० २(१) सु० १५।१

(८१६) सोम शत्रु का घातक, बल का दायक, इन्द्रियों का दाता और प्राणप्रद है ॥ प्र० २(१) सु० १५।२

(८१७) सोम, सुन्दर उत्थान वाली गौओं के समान वेदवाणियों के साथ मिला हुआ वेदों में होम होते हुए स्थित हुआ श्येन पक्षी सा तीव्र-गामी होता है ॥ प्र० २(१) सु० १५।३

(८१८) व्याख्या नं० ५४६ में हो चुकी है ॥ प्र० २(१) सु० १६।१

(८१९) प्रसिद्ध है कि प्रीतिकरी अत्यन्त दीप्ति वाणियाँ हर्ष के लिए सोम का भली प्रकार वर्णन करती हैं और शुद्ध करते हुए दीप्तिमान सोम मार्गों को आकाश गमनार्थ करते हैं ॥ प्र० २(१) सु० १६।२

(८२०) सोम वा शुद्ध स्वरूप परमात्मन! जो अतिबलवान तेरा रस वा आप के आनन्द का रस है, और जो पांच (पहला यजमान और चार होता आदि ऋत्विज) इन पांच मनुष्यों को वा पंच ज्ञानेन्द्रियों को व्याप कर वर्तमान है, और जिससे धन आदि ऐश्वर्य को हम सभंजन करते हैं, उस श्रवण करने योग्य प्रशंसनीय रस वा आनन्द रस को हमें प्राप्त करा वा कराइये ॥ प्र० २(१) सु० १६।३

(८२१) इसकी व्याख्या नं० ५५९ में हो चुकी है ॥ प्र० २(१) सु० १७।१

(८२२) यह सोम विद्वानों द्वारा शुद्ध किया जाता है। फिर पुराना बुद्धि तत्व वाला, कर्मकर्ता पुरुषों से यत्नपूर्वक प्रयोग में लाया जाता हुआ, द्रोण कलशों को छोड़ कर (उन से निकल कर) तीनों लोकों में फैले हुए वायु विशेष के नमाने वाले जल को उत्पन्न करता हुआ, मधुर रस को बर्षाता हुआ, स्नेह व मित्रता के लिये इन्द्र नामक वायु विशेष को बढ़ाता हुआ बर्षाता है ॥ प्र० २ (१) सु० १७।२

(८२३) यह सोम पवित्र करता हुआ प्रभात समयों को प्रकाशित करता है और यह सोम नदियों से लोकों का कर्ता है। वह सोम एक मन, दश इन्द्रियों, दस प्राण, सब इक्कीसों रस से भरता हुआ हृदय के लिए उत्तम हर्ष कारक पवन के समान बहता है ॥ प्र० २(१) सु० १७।३

(८२४) इसकी व्याख्या २३२ में हो चुकी है ॥ प्र० २ (१) सु० १८।१

(८२५) हे बहुत कोष धन वाले राजन ! सब कर्म धारक राजपुरुषों से आपका वेतन आदि देना धारण किया जाता है। और आप हम प्रजाजनों के भी धन आदि देने से ही व्यापार में सहायक हूजिये ॥ प्र० २(१) सु० १८।२

(८२६) हे सेना व बलों के रक्षक राजन ! तू इन्द्रियों की शक्ति के उत्तेजक अभिषुत सोम के पान से, अच्छी प्रकार हृष्ट हो। और धन आदि सम्पत्ति के प्रमाद से आलस्य युक्त मत हो। जैसे ब्राह्मण लोग प्रायः धन आदि भोग साधनों में रति न होने से उनका संचय नहीं करते और इसी से प्रमाद नहीं करते, तद्वत ॥ प्र० २ (१) सु० १८।३

(८२७) इसकी व्याख्या नं० ३४३ में हो चुकी है ॥ प्र० २(१) सु० १९।१

(८२८) हे परमेश्वर तेरी मित्रता में हम अन्न और बल वाले होवें और किसी से न डरें। हे बलपते ! जीतने वाले, किसी से भी न हारने वाले तुझको सर्वतः अत्यन्त स्तुति करते हैं ॥ प्र० २ (१) सु० १९।२

(८२९) जब गौ के सहित अन्न का धन, ऋत्विजों को कोई यजमान श्रद्धा से दान करता है, तब परमात्मा की रक्षाएं और दान क्रियायें जो सनातन हैं, उस यजमान पर क्षीण नहीं होतीं। अर्थात् श्रद्धा और विधि से यज्ञ करते

हुए गौ आदि धन धान्य की दक्षिणा देने वाले यजमान को परमात्मा कृपया अनेक प्रकार के धन्यधान आदि दान से उपस्कृत करता है और उसकी रक्षा करता है। प्र० २ (१) सु० १६।३

चौथा अध्याय

(८३०) तिरछे दशापवित्र के प्रति शीघ्र आने वाले ये सोम सब सौभाग्यों को लक्ष्य में रख कर अग्नि में छोड़े जाते हैं ॥ प्र० २(२) सु० १।१

(८३१) सोम दुःखों को नष्ट करते हुए बलयुक्त और बलदायक हैं, तथा सन्तान के लिए बहुत सुगम प्राणों के आत्मा के सहित करने वाले हैं, इस लिए सोम सेवनीय है ॥ प्र० २ (२) सु० १।२

(८३२) इन्द्रियों के लिए अन्न के रस को संबद्ध करते हुए और हम सोम सेवियों के लिए धनैश्वर्य करते हुए सोम शोभन प्रशंसा को सर्वतः प्राप्त होते हैं ॥ प्र० २ (२) सु० १।३

(८३३) शुद्धि करता हुआ सोम आकाश मार्ग से जाने के लिए यज्ञ में बुद्धि तत्वों के सहित प्राप्त होता है ॥ प्र० २ (२) सु० २।१

(८३४) सोम देवताओं के देने अर्थात् होम के लिए अभिषुत किया हुआ हमारे लिए तेज के निमित्त शत्रुदमन योग्य बल और सौन्दर्य देता है ॥ प्र० २ (२) सु० २।२

(८३५) सोम हमारे लिए बहुतसी इन्द्रियों की शक्ति वाली, इस से इन्द्रियों की पुष्टि, उत्तम अश्वों के भाव और ऐश्वार्य का दान रक्षा के लिए प्राप्त करता है ॥ प्र० २ (२) सु० २।३

(८३६) हे शान्त स्वरूप सोम ! अनन्त आकाश के साथ वाले सब लोकों में और उससे भी बाहर व्यापक धनों वा बलों को धारते हुए आनन्द स्वरूप उस अनेक वैदिक स्तोत्रों से स्तुत आप को सुकर्म से हम पाते हैं ॥ प्र० २(२) सु० ३।१

(८३७) हे सोम ! परमात्मन ! शत्रु विनाशक, स्तुति योग्य, प्रशंसनीय, अनन्त कर्मों के कर्त्ता, आनन्द स्वरूप, असंख्य प्राणि देहों के मृत्यु द्वारा विनाशक, आप को हम पाते हैं ॥ प्र० २ (२) सु० ३।२

(८३८) हे उत्तम कर्मों के अधिष्ठाता सोम ! परमात्मन ! क्योंकि सुन्दर पालनादि गुणों वाले दुःख रहित निरञ्जन आप त्रिलोकी का पोषण करते हैं, इस से ऐश्वर्य और उसका चाहने वाला पुरुष आकाशगत लोक लोकान्तरों के राजा आप को सब ओर से शरण लेता है ॥ प्र० २।२ सु० ३।३

(८३९) और अभीष्ट फलदाता, विविध मनुष्यों का स्वामी, वा विशेष द्रष्टा जगत् का साक्षी परमात्मा अपने आपे से व्याप्त जगत को प्रेरित करता हुआ बड़े उत्तम महत्व को प्राप्त है ॥ प्र० २।२ सु० ३।४

(८४०) सूर्यादि लोकों के घुमाने वाले, यज्ञ के रक्षक, सर्व आनन्द दिखाने के लिये साधारण ही वर्तमान सोम शान्त स्वरूप परमात्मा का पक्षी जीवात्मा ध्यान करे ॥ प्र० २ (२) सु० ३।५

(८४१) व्याख्या नं० ५०५ में हो चुकी है ॥ प्र० २(२) सु० ४।१

(८४२) वाणियों से प्रशंसनीय सोम ! परमात्मन वा ओषधि ! जगद्धर्ता वा हरित वर्ण हुआ सोम शुद्धि करता हुआ और प्राण को देता हुआ ध्यानयज्ञ वा देवयज्ञ के यजमान के लिए धन वा सुख और बल सपादन कीजिए वा करता है। ध्यान, स्मरण किया हुआ परमात्मा वा हवन किया हुआ सोम यजमान के धन, ध्यान, बल, पौरुषादि को बढ़ाता है ॥ प्र० २(२) सु० ४।२

(८४३) हे सोम ! निरुपद्रव परमात्मन ! अपवित्रों को पवित्र करने वाले अन्धियारे को उजियाला करने वाले, प्राणायामों के साथ धारण किये हुए आप, विद्वान भक्तों को प्राप्त होने के लिए, इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव के शुद्ध किये हुए अन्तःकारण स्थान में सर्वज्ञ होने से वर्तमान भी साक्षात अनुभूत हूजिये ॥ प्र० २ (२) सु० ४।३

(८४४) यहाँ से आज्यों का वर्णन है, जिस में यह आग्नेय आज्य का

आरम्भ है ! मेधा तत्वशोधक यज्ञानुष्ठान संपन्न घर का रक्षक, कभी वृद्ध न होने वाला, हव्य पहुँचाने वाला, यज्ञपात्र जुहू जिसका मुख है जो आवहनीय अग्नि अरणि मन्थन से उत्पन्न हुए अग्नि द्वारा भली प्रकार सुलगाया जाता है ॥ प्र० २ (२) सु० ५।१

(८४५) दिव्यगुणयुक्त अग्ने ! सामग्री वाला जो यज्ञ कर्त्ता, हव्य पहुँचाने वाला तेरा होम करता है, उसका अत्यन्त रक्षक हो ॥ प्र० २ (२) सु० ५।२

(८४६) जो हव्य सामग्री वाला देव यजन के लिए अग्नि को होमता है, उस के लिए शोधक अग्ने ! सुख कर ॥ प्र० २ (२) सु० ५।३

(८४७) मैं यज्ञकर्ता यजमान पवित्र बल वाले प्राण वायु और हिंसक दुःखदायक वायु के अणुओं के नाश करने वाले अपान वायु का उद्देश कर के होम करता हूँ। जो कि प्राण और अपान जल वर्षाने वाले कर्म को साधने वाले हैं ॥ हमारे शरीर के प्राण अपान की भांति अन्तरिक्ष में भी प्राण और अपान हैं, जो हमारे देहस्थ प्राणाऽपान का आप्यायन करते हैं। उन के शुद्ध तृप्त बनाने के लिए इस मन्त्र में होम करने का विधान सिद्धान्त रूप से वर्णित है ॥ प्र० २ (२) सु० ६।१

(८४८) यज्ञ के बढ़ने और यज्ञ को स्पर्श करने के स्वभाव वाले प्राण और अपान अनुष्ठित किये यज्ञ से बड़े कर्म को व्यापते हैं ॥ प्र० २ (२) सु० ६।२

(८४९) बुद्धिवर्धक बहुतों के उपकारक हो कर उत्पन्न बहुत निवास वाले प्राण और अपान हमारे बल और कर्म को धारण करते हैं ॥ प्र० २(२) सु० ६।३

(८५०) हे जीवात्मन ! तू भय रहित निर्भय परमात्मा से ही मिला हुआ (मुक्त हुआ) जब जाना जाता है, तब तुम परमात्मा और जीवात्मा दोनों आनन्द युक्त समान तेज वाले होते हैं। यह समानता चेतनत्व धर्म को ले कर कही गई है, सर्वांश में नहीं ॥ प्र० २ (२) सु० ७।१

(८५१) जीवात्मन ! पृथ्वी और द्युलोक को लक्ष्य करके मोक्षानन्द के अनुभव के अनन्तर आश्चर्य के साथ यज्ञ सम्बन्धी नमाने वाले बल को धारण करते हुए मरुद्गण वायु तुझ को फिर गर्भभाव को प्राप्त करते हैं ॥ प्र० २(२) सु ७।२

(८५२) इन्द्रियों के प्रवर्तक जीवात्मन ! इस रीति से जन्म ग्रहण करता हुआ तू छिपी जगह में भी और दृढ़ को भी भेदन करने वाले मार्गदर्शक ज्ञानाग्नियों से पञ्चज्ञानेन्द्रियों के अनुसार हो कर प्राप्तव्य विषय को प्राप्त करता है ॥ प्र० २ (२) सु० ७।३

(८५३) अब इन्द्राग्नि के उद्देश्य का आज्य कहते हैं। जिन दोनों की सृष्टि के आरम्भ काल में सहायता से बना यह चराऽचर जगत् प्रशंसित किया जाता है, उन इन्द्र और अग्नि को उद्देश्य करके होम करता हूँ, जिस से वे सूर्य और अग्नि दुःखदायक न हों ॥ प्र० २ (२) सु० ८।१

(८५४) बलिष्ठ रोगादि शत्रुओं को नष्ट करने वाले सूर्य और अग्नि को उद्दिष्ट करके हम होम करें। ऐसा यज्ञ करने पर वे दोनों हम को सुखदायक हों ॥ प्र० २ (२) सु० ८।२

(८५५) यज्ञानुष्ठानी सत्पुरुषों के रक्षक सूर्य और अग्नि आर्यों के रोकने वाले द्रव्यों का नाश करें। उनके उपक्षय कारक पदार्थों का निवारण करें और उनको सब हानिकारिणी प्रजाओं से दूर करें। अत्यादि दिव्य पदार्थों की अनुकूलता से रोगादि की निवृत्ति द्वारा हम को सुख हो, यह भाव है ॥ प्र० २ (२) सु० ८।३

(८५६) व्याख्या नं० ५१८ में हो चुकी है ॥ प्र० २(२) सु० ९।१

(८५७) प्रकाशमान दिव्यस्वरूप स्वयं पवित्र और दूसरों को पवित्र शिक्षा देने वाला पुरुष तरङ्ग सहित बड़े सत्य संकल्प मन को पार हो जाता है (मन का निग्रह कर लेता है) और प्राण अपान के धारण द्वारा उन्नति करता हुआ बड़े सत्य ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ प्र० २ (२) सु० ९।२

(८५८) योग शिक्षकों से शिक्षा पाया हुआ पुरुष मन भावना, तीव्र बुद्धि, प्रकाशमान, दिव्य स्वरूप मन को हित "हो जाता है" ॥ प्र० २ (२) सु० ९।३

(८५९) इस की व्याख्या नं० ५२५ में देखें ॥ प्र० २ (२) सु० १०।१

(८६०) प्रसन्न करने वाली वेदवाणियाँ परमात्मा को चाहती हुई सी प्राप्त होती हैं, क्योंकि वह केवल वेद से ही जानने योग्य है। विद्वान लोग अपनी-अपनी बुद्धियों से परमात्मा को खोजते हैं। ध्यान किया हुआ, हृदय को शुद्ध करता हुआ परमात्मा ऋचाओं से स्तुत किया जाता है। परन्तु त्रिष्टुप आदि छन्दों वाले मन्त्र परमात्मा के विषय में झुक जाते हैं, क्योंकि वाणी का विषय न होने से वे उसे सम्पूर्ण वर्णित नहीं कर सकते ॥ प्र० २ (२) सु० १०।२

(८६१) हे परमात्मन ! आप सब ओर अमृत बर्षाते हुए पवित्रता सम्पादन करते हैं और हम उपासकों को पवित्र कीजिये, जिस से हमारा कल्याण हो, हमारी आत्मा को आप व्याप रहे हैं। इसलिए महान आनन्द से अपनी स्तुति को बढ़ाइये, और बहुत बुद्धियुक्त विज्ञान को हमारे लिए उत्पन्न कीजिये ॥ प्र० २ (२) सु० १०।३

(८६२) व्याख्या नं० २७८ में कर आये हैं ॥ प्र० २(२) सु० ११।१

(८६३) यथेष्ठ कामनाओं के वर्षाने वाले, बलिष्ठ इन्द्र ! आप बड़प्पन और बल से सब वीर्यवानों को व्याप्त कर रहे हैं। सो आप इन्द्रियों से युक्त क्षरक रूप देह में विचित्र रक्षाओं से हम को रक्षित कीजिए ॥ प्र० २(२) सु० ११।२

(८६४) व्याख्या नं० २६१ में हो चुकी है ॥ प्र० २ (२) सु० १२।१

(८६५) हे निर्धनों के धन ! परमेश्वर ! कितने ही मनुष्य स्तोता अन्नादि लाभ निमित निरन्तर आप को पुकारते हैं, जैसे स्वच्छ जल को प्यासा पुकारता है कि सुचाल उत्तम जलदाता कब स्थान पर आवे ॥ प्र० २(२) सु० १२।२

(८६६) हे परमात्मन ! सर्वोपरि विराजमान ! सर्वतः अभय आप पका, बहुत, गौ, बैल आदि सहित धान्य बुद्धिमानों के लिए शीघ्र देते हैं। हे शासिन ! अतएव आप से हम मांगते हैं ॥ प्र० २ (२) सु० १२।३

(८६७) इस की व्याख्या नं० २३८ में है ॥ प्र० २ (२) सु० १३।१

(८६८) हे धनपते ! धनादि दाताओं के विषय में कल्पित (दिखावटी) स्तुति नहीं कही जाती है। हिंसादि पराया अपकार करते हुए को धनादि ऐश्वर्य नहीं प्राप्त होता है। दान जो कुछ बिना रोक वाले इस अनन्त अवकाश में है, सो धनपति आप ही की उत्तम शक्ति है। अन्य कोई क्या देगा ॥ प्र० २ (२) सु० १३।२

(८६९) व्याख्या नं० ४७१ में देखें ॥ प्र० २ (२) सु० १४।१

(८७०) परमात्मा की प्रकाशित, महती, यज्ञ की माता के समान मान करने वाली, पवित्र करने वाली वेदवाणियाँ द्युलोक के प्रशंसनीय पुत्र के समान सोम की सर्वतः प्रशंसा करती हैं ॥ प्र० २ (२) सु० १४।२

(८७१) परमात्मन ! बहुत संख्या वाले मणिमुक्तादि रत्न धन के भरे चारों दिशास्थ समुद्रों को हमारे लिए सब ओर प्राप्त कराइये ॥ प्र० २ (२) सु० १४।३

(८७२) व्याख्या नं० ५४७ में हो चुकी है ॥ प्र० २ (२) सु० १५।१

(८७३) सोम वाणी का पालक, सब बल पराक्रम के उत्पादन में समर्थ, यज्ञ चाहता और वृष्टिकारक वायु वा विद्युत के लिए जाता है। सोम गुण जानने वाले विद्वान उपदेश करें। यह ईश्वराज्ञा है ॥ प्र० २(२) सु० १५।२

(८७४) अनेक धाराओं वाला, रस भरा, वाणी का संस्कार कर्ता, हव्य धन वाले यजमानों का पोषक, प्रतिदिन वायु या विद्युत का पोषक होने से हितकारी सोम आकाश को जाता है ॥ प्र० २।२ सु० १५।३

(८७५) इस की व्याख्या नं० ५६५ में देखें ॥ प्र० २।२ सु० १६।१

(८७६) तेजस्वी सोम का पवित्र अंग द्युलोक के उन्नत स्थान में फैला है। इस सोम के वायुगत तार चमकते हुए अनेकधा स्थित होते हैं। इस सोम के शीघ्रगामी रस यजमान की रक्षा करते हैं। फिर होम किये हुए द्युलोक की पीठ पर तेज के साथ चढ़ जाते हैं॥ प्र० २।२ सु० १६।२

(८७७) इस सोम के बुद्धि तत्व से बुद्धिमान लोग या बुद्धि तत्व युक्त पदार्थ बने हैं, तथा मुख्य आदित्य सूर्य वृष्टि करने में समर्थ लोकों में अन्नोत्पत्ति के लिये जल वर्षाता है तथा प्रभातों को प्रकाशित करता है। मनुष्यों को दिखाने वाली चन्द्र किरणें जो कि पालन करती है सोमगर्भ का आधान करती हैं॥ प्र० २ (२) सु० १६।२

(८७८) व्याख्या नं० १०[?]में हो चुकी है॥ प्र० २ (२) सु० १७।१

(८७९) भली प्रकार अग्नि में होम करने से मनुष्य पुत्रादि सन्तान, उत्तम बुद्धि, बहुत धनधान्यादि को प्राप्त होते हैं॥ प्र० २ (२) सु० १७।२

(८८०) व्याख्या नं० ३८३ में हो चुकी है॥ प्र० २ (२) सु० १८।१

(८८१) हे परमेश्वर! जिस कारण इस उपासक के योगयज्ञ के मध्य में आप विराजते हैं, इस कारण आनन्द स्वरूप आप मन और प्राण के लिए ज्योतियों को प्राप्त (कराओ) कराते हैं॥ प्र० २ (२) सु० १८।२

(८८२) हे परमेश्वर! वृष्टिकर्ता! जो कि आप मेघों के स्थी रूप जलों को स्वाधीन करते हैं, सो आप के यश को वैदिक स्तोत्रों वाले मनुष्य प्रतिदिन अब भी पूर्व के समान प्रशंसा करते हैं॥ प्र० २ (२) सु० १८।३

(८८३) व्याख्या नं० ३४६ में देखिए॥ प्र० २ (२) सु० १९।१

(८८४) हे परमेश्वर! जो स्तोता उपासक आप के लिये अत्यन्त स्तुतिरूपिनि आनन्द दायिनी वाणी को उच्चारण द्वारा उत्पन्न करता है, प्रज्ञान युक्त मन वाली सनातनी यज्ञ की पोषण करने वाली वेदरूप बुद्धि को आप देते हैं॥ प्र० २ (२) सु० १९।२

(८८५) हम उसी की स्तुति करें, जिस परमात्मा के ज्ञान को वेद-वाणियाँ बढ़ाती है। और इस परमात्मा के स्तुति योग्य अनन्त अखिल ब्रह्माण्ड मण्डलधारणादि पुरुषार्थों को वर्णन करना चाहते हुए हम भेजते हैं॥ प्र० २ (२) सु० १९।३

पाँचवाँ अध्याय

तृतीयः प्रपाठक

(८८६) शुद्धिकारक चन्द्रकिरणस्थ सोम! तेरी व्याप्त प्रसन्नता करने वाली अन्तरिक्षस्थ किरण जल से युक्त धारक मेघमण्डल में प्रसृत हो जाती हैं। इसीलिए जो विद्वान ऋत्विज तुझ लतारूप सोम को यज्ञ में अभिषुत करते हैं, वे स्थूल जलधारों को अन्तरिक्ष से वर्षा लेते हैं॥ प्र० ३ (१) सु० १।१

(८८७) जब सोम दशापवित्र पर अभिषुत किया जाता है और उस की सत्ता स्थान द्रोण कलशों में स्थिर होती है, तब स्थिर हुये सोम की ज्ञापक किरणें इधर-उधर सब ओर फैलती हैं॥ प्र० ३ (१) सु० १।२

(८८८) सब की आँखों को हितकारी होने से दिखाने वाले सोम! सर्व साक्षिन् ईश्वर! प्रभावशाली हुए वा समर्थ और नित्य तेरी बड़ी किरणें (लहरें) वा व्याप्तियें सब स्थानों को सर्वतः प्राप्त हो जाती वा होती हैं। व्याप्ति वाला तू अपने प्रभाव या स्वभाव से पवित्र करता है। इस प्रकार तू सब जगत् का राजा है॥ प्र० ३ (१) सु० १।३

(८८९) हे परमात्मन! वा सोम! प्रकाशक! तेरा दोष रहित शुद्धिकारक आनन्द वा रस सूर्यादि के मण्डल वा उन के दशापवित्र को प्राप्त होता है॥ प्र० ३ (१) सु० २।१

(८९०) इस की व्याख्या नं० ४८४ पर देखें॥ प्र० ३ (१) सु० २।२

(८६१) पवित्र परमात्मन ! वा सोम ! आप का वा तेरा तेजोयुक्त बलवान आनन्द वा रस सब ज्योति और सुख को दिखाने के लिए विराज रहा है ॥ प्र० ३ (१) सु० ३।३

(८६२) व्याख्या नं० ४६१ में हो चुकी है ॥ प्र० ३ (१) सु० ३।१

(८६३) अभिषुत सोम की हम प्रशंसा करते हैं, जिस से हम मर्यादा के तोड़ने वाले, जिस का रोकना कठिन हो, उस कर्म के त्यागी वा विरोधी शत्रु को तिरस्कृत करें ॥ प्र० ३ (१) सु० ३।२

(८६४) बलवान सोम का शब्द, वर्षा के शब्द सा सुनाई दिया करता है, बिजुलियें आकाश में घूमती-चमकती हैं ॥ प्र० ३ (१) सु० ३।३

(८६५) गीले वा करुणामृतवारिधे ! ओषधे वा परमात्मन ! कृपया गौवों से युक्त अश्वयुक्त सुवर्णादि धनयुक्त और पुत्रादिसहित बहुत अन्न को प्राप्त कराइये ॥ प्र० ३ (१) सु० ३।४

(८६६) सब की आंखों के हितकारक ! वा सर्वद्रष्टा परमेश्वर ! जैसे सूर्य किरणों से प्रभातों को भर देता है, वैसे ही बड़े द्युलोक और पृथ्वी लोक को भर दीजिए ॥ प्र० ३ (१) सु० ३।५

(८६७) ओषधिराज ! परमात्मन ! हमारे लिए सुखदायिनी धारा से सब ओर प्राप्त हूजिये ; जैसे नदी नीचे प्रदेश को ॥ प्र० ३ (१) सु० ३।६

(८६८) बुद्धिवर्धक सोम ! प्यारे स्वरूप से शीघ्रगामी जहां वायुादि देव हैं—ऐसे बोलता हुआ सा सब ओर फैल ॥ प्र० ३ (१) सु० ४।१

(८६९) सोम ! अपवित्र को पवित्र करता हुआ और लोगों के लिए अन्नों को प्राप्तव्य करता हुआ आकाश से वर्षा को चुवा ॥ प्र० ३ (१) सु० ४।२

(९००) यह वे सोम है, जो दशापवित्र पर आसिञ्चन किया जाता है और समुद्र (अन्तरिक्ष) की लहर (वायु) में द्युलोक में हलकीचाल वाला हो कर विचित्र प्रकार से पहुँचता है ॥ प्र० ३ (१) सु० ४।३

(९०१) दशापवित्र पर अभिषुत सोम शब्द करता हुआ और प्रकाश करता हुआ तथा तेज का लोकों में आधान करता हुआ बल से द्युलोक को जाता है ॥ प्र० ३ (१) सु० ४।४

(९०२) अभिषुत किया सोम दूरस्थ और समीपस्थ वायु आदि को मिठास प्राप्त करता हुआ वृष्टिकारक विद्युत वा वायु के लिए होमा जाता है ॥ प्र० ३ (१) सु० ४।५

(९०३) भद्र पुरुष ऋत्विज लोग हरे-नीले सोम को पत्थरों से अभिषुत करते हैं। और इन्द्र वा सोमयाजी यजमान राजा के लिए पानार्थ प्रशंसा करते हैं ॥ प्र० ३ (१) सु० ४।६

(९०४) जैसे सूर्य किरणें आपस में भगिनियां स्त्री रूपिणियां पालक सूर्य को मानो प्रीति से सेवन करती हैं, वैसे ही पृथ्वी से छूटी हुई सोमकिरणें प्रशंसनीय सोम का सेवन करती हैं ॥ प्र० ३ (१) सु० ५।१

(९०५) दिव्यगुणसंपन्न सोम वा परमात्मन पूर्ण तेज के साथ वायु आदि वा विद्वानों के लिए अभिषुत किया हुआ वा ध्यान किया हुआ सब धनों में आविष्ट किये हुए है । इसलिए सोमयाग से वा परमात्मा के ध्यान से सब पदार्थों की प्राप्ति हो सकती है ॥ प्र० ३ (१) सु० ५।२

(९०६) सोम ! परमात्मन् ! देवों की देवयजन के लिए अन्नोत्पत्त्यर्थ ठीक समय और नियम से प्रशंसनीय वर्षा को वर्षाइये ॥ प्र० ३ (१) सु० ५।३

(९०७) लोक का रक्षक जागने और जगाने वाला, सुन्दर बलवान अग्नि अतिनवीन, सुख वा कल्याण के लिए वेदी में उत्पन्न होता और घृतमुख शुद्धिकारक वह अन्तरिक्षगामी बड़े तेज से ऋत्विज आदि के हितार्थ प्रकाश करता है ॥ प्र० ३ (१) सु० ६।१

(९०८) अग्ने ! अङ्गारवाले ! ज्ञानी लोग तुम को गुहा में छिपे स्थित वन-वन में रहते हुए का खोज कर पाते हैं । वह तू बड़े बल से रगड़ा हुआ प्रकट होता है । इसलिए तुम को बल का पुत्र कहते हैं ॥ प्र० ३ (१) सु० ६।२

(९०९) उपासक वा याज्ञिक लोग इडा पिङ्गला सुषुम्ना तीन नाड़ियों

के सहस्थान वा प्रातः-सायं माध्यन्दिन ३ सवन वाले यज्ञ में ज्ञानयज्ञ वा कर्मयज्ञ की ध्वजा रूप, मुख्य, अग्रसर, जीवात्मा वा बिजुली और इन्द्रियों वा वायु आदि के साथ समान स्थानी, प्रकाशक परमेश्वर वा अग्नि को प्रकाशमान साक्षात करते वा सुलगाते हैं। वह अग्नि यज्ञ का सुधारने वाला, कर्मों का वा अध्वरों का साक्ष्य, यजन के लिए योग यज्ञ व कर्म यज्ञ में साक्षात व स्थिति प्रज्वलित होता है ॥ प्र० ३ (१) सु० ६।३

(६१०) यज्ञ से बढ़ने वाले प्राण और अपान ! उन दोनों के लिए यह सोम अभिषुत किया जाता है। अतैव इस लोक में मेरे बुलाने को सुनो ॥ प्र० ३ (१) सु० ७।१

(६११) द्रोह न करने वाले प्रकाशमान प्राण और अपान उत्तम स्थिर सहस्रदल कमल स्थान में व्याप्त हैं ॥ प्र० ३ (१) सु० ७।२

(६१२) यह दोनों भली प्रकार प्रकाशमान, जिनका अन्न-घृत है, जो प्रकृति के पुत्र हैं, यज्ञ की रक्षा करने वाले वह प्राण और अपान अध्वर यज्ञ को समधिक प्राप्त होते हैं ॥ प्र० ३ (१) सु० ७।३

(६१३) व्याख्या न० १०६ में हो चुकी है ॥ प्र० ३ (१) सु० ८।१

(६१४) सूर्य वा परमेश्वर्यवान राजा शीघ्रगामी मेघ वा शत्रु का जो कटाक्षिर पर्व वाले अन्य मेघों वा पर्वताकार दुर्गों में गिर गया, उसको चाहता हुआ आकाश वा बाणों की वर्षा वाले संग्राम में पाता है वा पावे, ॥ प्र० ३ (१) सु० ८।२

(६१५) व्याख्या (१४७) में हो चुकी है ॥ प्र० ३ (१) सु० ८।३

(६१६) हे अध्यापक और अध्येताओ ! इस मन्त्र से यह तुम्हारी सनातनी प्रशंसा प्रकट होती है। जैसे बादल से वर्षा होती है, तद्वत ॥ प्र० ३ (१) सु० ६।१

(६१७) हे अध्यापक और अध्येताओ ! प्रशंसा करने वाले मन्त्र के

आह्वान को सुनो और वाणियों को विभागशः उच्चारित करो। समर्थ तुम बुद्धियों को आप्यायित करो ॥ प्र० ३ (१) सु० ६।२

(६१८) हे ? नर अध्यापक और अध्येताओ ! तुम दोनों हमको पाप होने के लिए मत प्रेरित करो; निन्दा के लिए मत प्रेरित करो। और हमको निरे नाश वाले काम के लिये मत प्रेरित करो ॥ प्र० ३ (१) सु० ६।३

(६१९) व्याख्या ४७४ में हो चुकी है ॥ प्र० ३ (१) सु० १०।१

(६२०) अपने स्थान आकाश में स्थित हितकारी, वृष्टिकर्ता, बुद्धि-तत्व का उद्बोधक, नाश न करने योग्य सोम, इन्द्र वायु आदि देवों के साथ शोभित होता है ॥ प्र० ३ (१) सु० १०।२

(६२१) सोम ! कर्म से हितकर हो, अपने स्थान को लक्ष्य करके, शब्द करता हुआ अपने स्वभाव से वायु मण्डल पर चढ़ ॥ प्र० ३ (१) सु० १०।३

(६२२) व्याख्या न० ५१६ में हो चुकी है ॥ प्र० ३ (१) सु० ११।१

(६२३) इसका तात्पर्य यह है कि हम प्रातःकाल उठकर, दिन में और रात्रि में परमात्मा के अतिरिक्त अन्य की उसके स्थान में उपासना न करें। यद्यपि वह अनन्त अचिन्त्य और अप्रमेय से हमें सर्वात्मरूप से प्राप्त नहीं हो सकता तथापि जैसे पक्षी सूर्य व आकाश की ओर वहाँ तक उड़ते हैं, जहाँ तक उनके पंखों में बल है, वैसे ही हमको अपनी अल्पशक्ति भी समस्त रूप से परमात्मा के भजन में लगा देनी चाहिए। वह अत्यन्त तेजस्वी सूर्य आदि का भी प्रकाशक है। इसीलिए हमको, जो उसके भक्त हैं, कृतार्थ करेगा ॥ प्र० ३(१) सु० ११।२

(६२४) व्याख्या न० ४८८ में हो चुकी है ॥ प्र० ३ (१) सु० १२।१

(६२५) रक्त-वर्ण सोम अपने स्थान को चढ़े और स्थिर स्थान आकाश में स्थिर होवे। इस प्रकार वृष्टिकारक वायु विशेष वा विद्युत विशेष सोम को प्राप्त हो ॥ प्र० ३ (१) सु० १२।२

(६२६) गीला सोम शीघ्र हमारे लिए बहुत धन और धान्य आदि का

सब ओर से वर्षावे ॥ प्र० ३ (१) सु० १२।३

(६२७) व्याख्या ३६८ में हो चुकी है ॥ प्र० ३ (१) सु० १३।१

(६२८) हरण किरण, शीघ्र गौ अश्वादि सेना वाले राजन्, प्रभाव शालिन, वा बहुत धनयुक्त, जो सोम तेरा प्रयोजनीय शोभन हर्षकारक है, जिससे तुम मेघों वा शत्रुओं का नाश करते हो, वह सोम तुमको हर्ष दे। सूर्य के पक्ष में उसका सुप्रभाव ही हर्ष है ॥ प्र० ३ (१) सु० १३।२

(६२९) धनवान वा यज्ञवाले इन्द्र ! वा सूर्य ! जिस तुम्हारी प्रशंसा रूप वाणी को उत्तम विद्वान प्राप्त करता है, उस वाणी को मेरी उच्चारित को भली प्रकार सम्मुख होकर ग्रहण करो। इन वेद वचनों का यज्ञ में सेवन करो ॥ प्र० ३ (१) सु० १३।३

(६३०) व्याख्या २७० में हो चुकी है ॥ प्र० ३ (१) सु० १४।१

(६३१) स्तोत्रादि कर्मों में फुर्तीले सुन्दर दीप्ति वाले किसी से द्रोह न करने वाले बुद्धिमान ऋत्विज ब्राह्मण लोग यज्ञ में मन्त्रों से उपदेश से [तुम्हारे मर्यादावर्ती कामपूर्वक [प्रकरण से इन्द्र=राजा यजमान को] कान के [समीप और दूर स्थित भी अच्छी प्रकार भनित श्रद्धादि वर्धक वाक्य जप आदि से नम्र करते हैं ॥ प्र० ३ (१) सु० १४।२

(६३२) यज्ञ में स्तोता ऋत्विज लोग इन्द्र राजा को बुलाते है, जिससे कि इन्द्र=राजा वृद्धि के लिए व्रत को धारण करने वाला निश्चय बल और बलोत्पन्न रक्षाओं से संगत हो जावे ॥ प्र० ३ (१) सु० १४।३

(६३३) व्याख्या न० २७३ में हो चुकी है ॥ प्र० ३ (१) सु० १५।१

(६३४) हे बहुज्ञानिन ! उस इन्द्र=राजा को रक्षा के लिए प्रसन्न कर जिसके हाथ ने अस्त्रशस्त्र समूह धारण किया है [इससे उग्र है] और जो दर्शनीय भी है [इससे अभिगम्य है], इस प्रकार राजा बड़े देव सूर्य के समान ब्रह्माण्ड में दो प्रकार से वर्तमान है ॥ प्र० ३ (१) सु० १५।२

(६३५) व्याख्या न० ४७६ में हो चुकी है ॥ प्र० ३ (१) सु० १६।१

(६३६) उत्पन्न हुवा शुद्ध बड़ा उत्तम हव्य (वह सोम पुत्र) बड़ी यश की बढ़ाने वाली सबकी उत्पादिका अपनी माता द्युलोक और पृथ्वी को प्रकाशित करता है ॥ प्र० ३ (१) सु० १६।२

(६३७) सोम उच्चस्थानी व्यवहार करने वाले स्तोता द्रोहरहित पुरुष के लिए भक्षणार्थ मिलता है ॥ प्र० ३ (१) सु० १६।३

(६३८) व्याख्या न० ५८३ में हो चुकी है ॥ प्र० ३ (१) सु० १७।१

(६३९) जिस उत्तम वाक्तत्व वाले सोम से वाणी फैलती है, जिससे विद्वान लोग सुख को वा बल को प्राप्त होते हैं और जिस सोम से विद्वानों के आनन्द में सुन्दर अमृत के यशों को पाते हैं ॥ प्र० ३ (१) सु० १७।२

(६४०) व्याख्या न०५७२ में हो चुकी है ॥ प्र० ३ (१) सु० १८।१

(६४१) बलदायक बलयुक्त, वसतीवरी नामक जल में क्रीड़ा करते हुए, ऊर्णामय दशापवित्र को उल्लंघित करने वाले सोम को ऋत्विज लोग अंगुलियों से स्वच्छ करते हैं। कैसे=तीन [१. द्रोणकलश २. आधवनीय ३. पूतभृत] पात्रों को छूने वाले सोम को मंत्रवाणियाँ सब ओर से प्रशंसित करती हैं ॥ प्र० ३ (१) सु० १८।२

(६४२) घोड़े के समान बलिष्ठ और सेवन समर्थ पवमान सोम द्रोण कलशों में छोड़ा जाता है, तब वाणी को उत्पन्न करता हुआ टपकता है ॥ प्र० ३ (१) सु० १८।३

(६४३) व्याख्या न० ५२७ में हो चुकी है ॥ प्र० ३ (१) सु० १९।१

(६४४) ओषधिराज सोम विद्वान ऋत्विजों में ब्रह्मा सा मुख्य वा राजा है, तथा कवियों का ठीक-ठीक पद जुड़वाने वाला है, और बुद्धिमानों का दर्शक वा बुद्धिवर्धक है, तथा वन्य पशुओं को बढ़ाने वाला है, अथच गिद्धों और श्येनोपलक्षित अन्य पक्षियों का गतिसम्पादक है। इस प्रकार के प्रभाव वाला सोम शब्द करता हुआ ऊर्णामय दशापवित्र को लांघता है ॥ प्र० ३ (१) सु० १९।२

(६४५) सोम धारणावती बुद्धियों को, भोजन शक्तियों को, वक्तृत्व शक्तियों को और वाणियों को प्रेरता है। दृष्टान्त—जैसे नदी लहरों को प्रेरती है, तद्वत। तथा भीतर दृष्टि की सहायता करता हुआ दूसरों से न हटाने योग्य

इन बलों को प्राप्त करता है, वृष्टिकर्ता सोम ज्ञानेन्द्रियों में बोध शक्ति प्रदान करता हुआ वर्तमान है ॥ प्र० ३ (१) सु० १९।३

(६४६) व्याख्या न० २१ में हो चुकी है ॥ प्र० ३ (१) सु० २०।१

(६४७) इस यशस्वी अग्नि के यजन से वह अग्नि हमारे लिए फाड़ने योग्य काष्ठादि रूपों को जैसे बढ़ई जैसे होवे, वैसा हम यत्न करें ॥ प्र० ३ (१) सु० २०।२

(६४८) यह यजन किया हुआ अग्नि, वायु आदि देवों में सब संपदाओं को सब ओर से पहुँचाता है। वह अग्नि खेती की वृद्धि द्वारा अन्नों से हमको प्राप्त हो ॥ प्र० ३(१) सु० २०।३

(६४९) व्याख्या न० ३४४ में हो चुकी है ॥ प्र० ३(१) सु० २१।१

(६५०) हे राजन्! जो कि तुम दो शीघ्र गामी अश्वों को प्राप्त होते हो, इससे तुमसे बढ़कर उत्तम रथी कोई न हो और तुमसा बल शाली भी कोई न मिले ॥ प्र० ३ (१) सु० २१।२

(६५१) हे प्रजाजनो! राजा के लिए अवश्य सत्कार करो। उसकी स्तुतियाँ उच्चारण करो, अभिपुत सोम उसे हृष्ट करे, बलवान बड़े राजा को नमस्कार करो ॥ प्र० ३(१) सु० २१।३

(६५२) हे राजन्! हे दस्युनाशन्! हे वीर! अभिषव किये हुए सोम का हर्ष के लिए तृप्ति चाहते हुए शोभन आप सेवन करें। उसका पान करें, प्राप्त हों और शत्रुओं पर चढ़ाई करें। दृष्टान्त जैसे वृद्धि सोमपान से प्राप्त होती और शोभन होती है, तद्वत ॥ प्र० ३ (१) सु० २२।१

(६५३) हे राजन स्वर्ग के तुल्य अभिषव किये हुए इस सोम के सुन्दर वाणी युक्त हर्ष तुमको उपस्थित हों और तुम उससे देव तुल्य अपने उदर को क्रूपवत्‌ा भरो अर्थात् अनोखी तृप्ति करो ॥ प्र० ३ (१) सु० २२।२

(६५४) मित्र के समान सर्वहितकारी, संन्यासी वा निष्पक्ष सूर्य किरण सा तेजस्वी शीघ्र शत्रुओं का तिरस्कर्ता राजा सोम के हर्ष में मार्गविरोधी डाकू को मारता और शत्रु सेना को छिन्न-भिन्न करता तथा शत्रुओं को तिरस्कृत करता है ॥ प्र० ३ (१) सु० २२।३

छठा अध्याय

(६५५) परमैश्वर्यवन! शान्ताऽमृत स्वरूप परमात्मन! आप धनवान और धनदाता, तेजस्वी और तेजोदाता, बल वीर्य के दाता, लोक-लोकान्तरों में ओत-प्रोत व्यापक, अत्यन्त बली और सर्वज्ञ हैं। उस आप को हम मनुष्य वाणी द्वारा स्तुति से उपासना करते हैं। हमें पवित्र कीजिये ॥ प्र० ३ (२) सु० १।१

(६५६) हे शान्ताऽमृत स्वरूप, पवित्रकारक, सब कामनाओं के पूरक! आप सब ओर से साक्षी हैं। उन पदार्थों को सर्वज्ञ होने से सर्वत्र प्राप्त हैं। वह आप हमारे लिए धन-धान्ययुक्त तेजोयुक्त ऐश्वर्य की वर्षा कीजिये, जिस से हम संसार में जीवन के लिए समर्थ हों ॥ प्र० ३ (२) सु० १।२

(६५७) परमेश्वर! शान्ताऽमृत स्वरूप! आप वश में करते हुए इन भुवनों को सम्यक प्राप्त है। हरितादि विविध रंग वाली, सुन्दर पतन वाली सूर्य चन्द्रादि किरणों को युक्त करते हुए हैं। आप स्वामी की मिलकियत वे किरणें मधुर रस युक्त घृतवत पुष्टिकारक जल को बर्षावें और मनुष्य आप के नियम में ठहरें ॥ प्र० ३ (२) सु० १।३

(६५८) हे सर्वज्ञेश्वर! पवित्र करते हुए आप की वैदिक ऋचारूपिणी धारायें ऐसे छूटती हैं, जैसे सूर्य की किरणें। जैसे सूर्य किरणें उदय हो कर मनुष्यादि प्राणियों की आंखों में सहायता देती हैं, वैसे ही परमात्मा से वेद प्रकट होकर मनुष्यों की बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रवृत्त करते हैं ॥ प्र० ३(२) सु० २।१

(६५९) हे परमात्मन! आप समुद्रवत गम्भीर हैं और इस अनन्त संसार में सब रूपों को पवित्र करते हैं और प्रज्ञान करते हुए पोषण करते हैं ॥ प्र० ३ (२) सु० २।२

(६६०) जैसे प्रातःकाल होते ही उदित सूर्य प्रकाश फैलाता है, उसी प्रकार परमात्मा सृष्टि के आरम्भ में ऋषियों के पवित्र अन्तःकरण में वेदो-

पदेश करके उन की वाणी को प्रेरित करता है ।। प्र० ३ (२) सु० २।३

(६६१) पवित्र प्रकाशमान सोम आकाश को जाते तथा सूर्य किरणों से पकते हुए मेघस्थित जलों में चले जाते हैं ।। प्र० ३ (२) सु० ३।१

(६६२) किरणों में परिणत सोम सब ओर फैलते हैं और पवित्र करते हुए सूर्य वा मेघराज को व्याप जाते हैं, जैसे नीचान के देश से जाते हुए जल ।। प्र० ३ (२) सु० ३।२

(६६३) शोध्यमान सोम कर्मकाण्ड के नायकों से नियत हुआ जब अग्नि में होमा जाता है, तब हृष्टिकारक हुआ मेघराज वा सूर्य के लिए उग्रता से जाता है ।। प्र० ३ (२) सु० ३।३

(६६४) सोम जब मेघों से आग में अभिषुत किया हुआ पवित्रता पूर्वक सब ओर अर्पित होता है, तब वृष्टिकर्ता के धारणार्थ पर्याप्त होता है ।। प्र० ३ (२) सु० ३।४

(६६५) जो तू शुद्ध प्रशंसनीय मनुष्यों से धारण किया हुआ नरों का हृष्टिकारक होता है, सोम ! सो तू पवित्रता कर ।। प्र० ३ (२) सु० ३।५

(६६६) मेघों का अतिशय वर्षाने वाला वेद-मन्त्रों से प्रशंसनीय स्वयं शुद्ध तथा अन्यों का शोधक आश्चर्यकारक बलयुक्त सोम पवित्रता करे ।। प्र० ३ (२) सु० ३।६

(६६७) वह स्वयं शुद्ध तथा अन्यों का शोधक सोम मधुरता युक्त अभिषुत किया हुआ वायु आदि देवों की तृप्ति का कर्ता दुष्ट रोगादि शत्रुनाशक कहता है ।। प्र० ३ (२) सु० ३।७

(६६८) देवों के पानार्थ बुद्धितत्व युक्त सोम सब शत्रु सेनाओं को सामना करके दबाने वाला है ।। प्र० ३ (२) सु० ४।१

(६६९) वही सोम स्तोता आदि ऋत्विजों और यजमानों के लिए गौ आदि पशुयुक्त बहुत-सा धन-धान्य देता है ।। प्र० ३ (२) सु० ४।२

(६७०) सोम ! तू हम से बुद्धि और चित्त लगा कर शोधा जाता है । वह तू हमारे लिये अन्न प्राप्त कराता है पवित्र करता है ।। प्र० ३ (२) सु० ४।३

(६७१) सोम ! यज्ञकर्ता स्तोता आदि ऋत्विजों के लिए बड़ा यश और स्थिर धन प्राप्त करा और अन्न दे ।। प्र० ३ (२) सु० ४।४

(६७२) यज्ञ के पहुँचाने वाले, आश्चर्यरूप सोम ! तू राजा के समान सुन्दर कर्म वाला शुद्धिकारक वाणियों को प्रवेश करता अर्थात् प्रशंसा से अनुकूल सम्पन्न हो जाता है ।। प्र० ३ (२) सु० ४।५

(६७३) यह सोम यज्ञ का नेता है । हाथों से शोधा जाता हुआ वसतीवरी नामक जलों में दुस्तर चमसों में रखा जाता है ।। प्र० ३ (२) सु० ४।६

(६७४) सोम ! यज्ञ के समान प्रशंसनीय क्रीड़ा करने वाला स्तोता आदि यज्ञानुष्ठानियों के लिए सुन्दर बल धारण करता हुआ दशापवित्र पर जाता है ।। प्र० ३ (२) सु० ४।७

(६७५) सोम ! हमारे लिए पुष्कल रस अन्न के सहित और सब सौभाग्य वर्षाओ ।। प्र० ३ (२) सु० ५।१

(६७६) सोम ! देवताओं के अन्न ! तेरी जैसी प्रशंसा है और जैसा तेरा जन्म है वैसा ही प्यारे यज्ञ में स्थित हो अर्थात् वेदों में जिस प्रकार के सोम की प्रशंसा की गई है, वैसा करके यज्ञ में वर्तना चाहिए ।। प्र० ३ (२) सु० ५।२

(६७७) सोम ! हमारे लिये इन्द्रियप्रद और प्राणप्रद शीघ्रतम दिनों से अन्नादि के साथ वर्ष ।। प्र० ३ (२) सु० ५।३

(६७८) जो बहुतों का जीतने वाला, शत्रु को घेर कर मारता और जीतता है, किन्तु हारता नहीं, वह सोम पवित्रता करे ।। प्र० ३ (२) सु० ५।४

(६७९) सोम ! अपनी रक्षा के लिए तेरी जो मधुर रस टपकाने वाली धारायें छोड़ी जाती हैं, उन धाराओं से दशापवित्र पर स्थित हो ।। प्र० ३ (२) सु० ६।१

(६८०) वह सोम ऊर्णामय दशापवित्र को छोड़ कर यज्ञ की वेदी में स्थित हुआ वृष्टिकारक सूर्य वा विद्युत के लिए पानार्थ जावे ।। प्र० ३ (२) सु० ६।२

(६८१) हे सोम ! तुम स्वादिष्ट, धन-धान्यादि का प्रापक दीप्त रस को बर्षाओ ।। प्र० ३ (२) सु० ६।३

(६८२) प्रकाशादि गुणयुक्त तेरी किरण रूप विभूतियां जानी जाती हैं। जैसे वर्षा के मेघ की बिजुलियां और जैसे प्रभात वेलाओं के चलने वाले प्रकाश। कब ? जब कि चावल, जौ आदि और जङ्गलों के प्रति छूट कर आप ही लपट रूप मुख में वृक्षादिक अन्न को चारों ओर से चुनता है, तब ।। प्र० ३ (२) सु० ७।१

(६८३) अग्ने जब कि वायु से प्रचण्डित हो प्यारे वनस्पति आदि की ओर शीघ्रता से प्रेरित हुआ भक्षणीय वनस्पत्यादि में व्याप्त हुआ इधर उधर फैलता है, तब जरा रहित फूंकते हुए के तेरे तेज वा लपटें रथी सी अनोखी प्रतीत होती हैं ।। प्र० ३ (२) सु० ७।२

(६८४) तेजस होने से वृद्धि के उत्पादक, मन प्रेरक, यज्ञ के उत्तम साधन, देवों को बुलाने वाले, थोड़े और बहुत हव्य के समान ही फूंकने वाले तुम अग्नि को हम याज्ञिक वरण करते हैं, क्योंकि इस निमित्त लोग तुझे ही वरते हैं। तुझ से अन्य को नहीं ।। प्र० ३ (२) सु० ७।३

(६८५) प्राण ! अपान ! तुम्हारी दी हुई उत्तम बुद्धि को मैं सेवन करूं। अवश्य ही अवश्य तुम्हारी की हुई रक्षा बहुत ही बहुत है ।। प्र० ३ (२) सु० ८।१

(६८६) उन द्रोहरहित अनुकूल तुम दोनों प्राणअपान के प्रस्तुत अन्न और स्थिति को हम प्राप्त हों और तुम्हारे मित्र हों ।। प्र० ३ (२) सु० ८।२

(६८७) प्राण और अपमान ! हम अनुकूल बस्तियों को रक्षाओं से पालें। हम अपने बलिष्ठ शरीरों से दुष्टों को दबावें ।। प्र० ३ (२) सु० ८।३

(६८८) हे राजन ! वा वृष्टिकारक देव ! सेना वा चमसों में अभिषुत सोम को पी कर बल-वीर्य के साथ उठता हुआ ठोडियों को फड़का ।। प्र० ३ (२) सु० ९।१

(६८९) शत्रुओं पर स्पर्धा करते हुए ! व राजन ! जब कि आप शत्रुनाशक हों, तब आप के साथ पृथ्वी-आकाश वासी प्रसन्न हों ।। प्र० ३ (२) सु० ९।२

(६९०) मैं स्तुति करने वाला थोड़ी वाणी को इन्द्र वा राजा से ४ दिशा ४ विदिशा=८ स्थानों में फैली हुई वा चार वेद वा चार उपवेदों में प्रस्तुत ऊपर की दिशा में गिन कर ९ स्थानों वा द्वारों वाली वा त्रिवृत्स्तोम वाली यज्ञ को बढ़ाने वाली को पूरी करता हूं ।। प्र० ३ (२) सु० ९।३

(६९१) सूर्य और अग्ने ! तुम्हारी ये त्रिवृत पञ्चदशादि यज्ञ स्तोत्र प्रशंसा करते हैं। सुख के दाता वा कर्ता इन्द्र और अग्नि सोम को पीवें ।। प्र० ३ (२) सु० १०।१

(६९२) यदि सूर्य वा अग्नि न हों तो समस्त लोक जड़वत् गिर जावें, हिलना-चलना बन्द हो जावे, इसलिए इन को नायक कहा गया है। इन की किरणें जगत के रोगादि जनित भय दूर करने से अमृत का काम देती हैं। इस से सब को इन की चाहना होती है। ये किसानों को तो भली प्रकार मिलनी भी दुर्लभ हैं। सो यज्ञ करने वालों को सुलभ हों, यह इस मन्त्र में प्रार्थना है ।। प्र० ३ (२) सु० १०।२

(६९३) जगत के नेता सूर्य और अग्नि इस अभिषुत सोम यज्ञ में सोमपानार्थ उन किरणों से प्राप्त हों ।। प्र० ३ (२) सु० १०।३

(६९४) व्याख्या न० ५०३ में हो चुकी है ।। प्र० ३(२)सु० ११।१

(६९५) जल में मिले हुए सोम, इन्द्र, वरुण, मरुत और विष्णु इन इन नामक वायु विशेषों के लिए प्राप्त हों ।। प्र० ३ (२) सु० ११।२

(६९६) सोम ! हमारी सन्तान के लिए अन्नादि धारण करो, और हमारे लिए सब ओर से बहुत शुद्धि कर ।। प्र० ३ (२) सु० ११।३

(६९७) व्याख्या न० ५१५ में देखिये ।। प्र० ३ (२) सु० १२।१

(६९८) इन्द्रिय शक्तियों का उदबोधन करने वाला, हृष्टिकारक, सोम, हर्ष के लिए अभिषुत किया जाता है, वह दुही गौओं के समान अपनी इन्द्रियों के साथ मन में जाता है, जैसे नीचान में जल जाते हैं। तद्वत ।। प्र० ३ (२) सु० १२।२

(६९९) सोम ! जो विविध प्रशंसनीय आकाश का और पृथ्वी का अन

धन है, वह हमारे लिए पवित्रता करता हुआ प्राप्त करा ।। प्र० ३(२)सु० १३।१

१०००) वृष्टिकारक, जीवनों को शुद्ध करता हुआ यज्ञ में हुत होने से हरितरङ्ग हुआ गरजता हुआ सोम गगन मण्डल में स्थित होता है ।। प्र० ३ (२) सु० १३।२

(१००१) सोम ! तू और सूर्य ही सुख के स्वामी और इन्द्रियों के पोषक हो । शक्तिमान तुम दोनों कर्मों व बुद्धियों को समृद्ध करो ।। प्र० ३ (२) सु १३।३

(१००२) व्याख्या नं० ४११ में हो चुकी है ।। प्र० ३ (२) सु० १४।१

(१००३) इन्द्र ! राजन ! आप सेना के योग्य हैं । आप ही बहुत से शत्रुओं के पकड़ने वाले हैं । थोड़ों को भी बढ़ाने वाले हैं । आपके लिए सोम अभिषव करने वाले यजमान को बहुत धन देते हैं ।। प्र० ३ (२) सु० १४।२

(१००४) व्याख्या नं० ४१४ में हो चुकी है ।। प्र० ३ (२) सु० १४।३

(१००५) व्याख्या नं० ४०६ में हो चुकी है ।। प्र० ३(२) सु० १५।१

(१००६) संसार का हित करने वाली वह, सब को छूना चाहते वाली, अनेक रंगों वाली, जगत निवास हेतु भूता, इस सूर्य की किरणें स्वप्रकाश सूर्य के साथ-साथ वज्रवान सा छोड़ती अर्थात् वज्रवत् प्रहार युक्त बाण के समान फैलती और सोम आदि औषधियों को पकाती हैं ।। प्र० ३ (२) सु० १५।२

(१००७) बसाने वाली इस सूर्य की किरणें बुद्धि तत्व को जगाने वाली, सूर्य के साथ-साथ उत्पादित अन्न से लोक के बल को बढ़ाने से सत्कृत करती हैं; और इस सूर्य के बहुत से अन्न उत्पादन आदि कर्मों को पूर्व जगाने के लिए सेवन करती हैं ।। प्र० ३ (२) सु० १५।३

(१००८) इसकी व्याख्या नं० ४७३ में देखिए ।।प्र० ३ (२) १६।१

(१००९) सूर्य किरणें उज्ज्वल, अन्न रूप देवों के भोजन बसतीवरी नामक जलों में धोये हुए ऋत्विजों द्वारा अभिषुत किये हुए सोम को जलों सहित चूसती हैं ।। प्र० ३ (२) सु० १६।२

(१०१०) ऋत्विज लोग यज्ञ में इस सोम के रस को अमृत तत्व के

लिए शोभित करते है, जैसे शीघ्रगामी अश्व को सजाते हैं ।। प्र० ३ (२) सु० १६।३

(१०११) व्याख्या नं० ५७६ में हो चुकी है ।। प्र० ३ (२) सु० १७।१

(१०१२) शोभन, बलवान सोम ! अभिषव के फलकों में अभिषुत किया हुआ राजा-सा प्रजाओं को ले चलने वाला होकर प्राप्त हो और आत्मार्थ गौ आदि धनार्थी यजमान के लिए कर्मों को प्रेरित करता हुआ जलों की वर्षा को कर ।। प्र० ३ (२) सु० १७।२

(१०१३) व्याख्या नं० ५१७ में हो चुकी है ।। प्र० ३ (२) सु० १८।१

(१०१४) विद्या, शिक्षा, धर्मविषयों को विस्तृत करने वाले विद्वान के यहाँ हविर्धान में वर्तमान पाषाण के समान कठिन दो दो अधिषवन फलकों में जिस सोम पद को अध्वर्यु समीप से सेवित करता है, फिर उस प्यारे सोम को गात धारक गायत्री आदि छन्दों से प्रशंसित करते हैं ।। प्र० ३ (२) सु० १८।२

(१०१५) विद्वान के यज्ञ में अनुष्ठित सोम रस की धारा से प्रष्ठि संज्ञक सोमों में तीन सवन होते हैं । इस सोम की योजनाओं को जो शोभन कर्म वाला विद्वान मान पूर्वक अनुष्ठित करता है, वह धन-धान्य को प्राप्त करेगा ।। प्र० ३(२) सु० १८।३

(१०१६) सोम दशापवित्र पर धारा से अभिषुत किया हुआ अति माधुर्य युक्त अन्न उत्पत्ति लाभ के लिये इन्द्र, विष्णु इत्यादि नामक वायु विशेषों के लिये पवित्रता करा करता है ।। प्र० ३(२) सु० १९।१

(१०१७) सोम ! जैसे जातमात्र बछड़े को उसकी माता गौयें चाटती हैं, ऐसे ही प्रेम से द्रोह रहित पुरुष के विविध अश्वों के धारक यज्ञ में ऋत्विज की अंगुलियाँ हरे तुझ सोम को दशपवित्र पर स्पर्श करती हैं ।। प्र० ३(२) सु० १९।२

(१०१८) बड़े काम वाले सोम ! तू द्युलोक और पृथ्वी लोक का अन्यन्त धारण पोषण करता है और बड़प्पन से कवच को ढक-सा लेता है ।। प्र० ३(२) सु० १९।३

(१०१९) व्याख्या नं० (५४०) में देखिये ॥ प्र० ३(२) सु० २०।१

(१०२०) फिर पत्थरों से अभिषुत सोम मधुर धारा से चिपकता हुआ दशापवित्र को बीच में करके द्रोण कलश में जाता, और वृष्टिकारक वायु का इति सेवन करता हुआ प्रकाशमान तुष्टिकारक सोम उसी वृष्टिकारक देव वायु के वृद्धि अर्थ होम द्वारा जाता है ॥ प्र० ३(२) सु० २०।२

(१०२१) धारक पोषक कर्मों को ऋतु के अनुसार धरता हुआ सोम शुद्धि करता हुआ सब ओर जाता, और प्रकाशमान सोम, अपने रस से वायु आदि देवों को चिपकाता है ॥ प्र० ३(२) सु० २०।३

(१०२२) व्याख्या नं० ४१६ में हो चुकी है ॥ प्र० ३(२) सु० २१।१

(१०२३) अग्ने वीर्यवान तेरे याज्यानुवाक्यादि मंत्र के साथ तेरे लिए प्रोडाशादि हव्य होमा जाता है। सो ज्योति के स्वामिन ! हव्य पहुँचाने वाले ! प्रजापालक ! भले प्रकार आह्लादन करने वाले ! दाहक ! अग्ने ! ऋत्विज आदि के लिये अन्न प्राप्त करा ॥ प्र० ३(२) सु० २१।२

(१०२४) शोभनाह्लादिक अग्ने ! दोनों हव्य भरे जुहू आदि पात्रकों को मुख में पकाता है और हमको यज्ञों में बलों से भर। बलवते ! ऋत्विज आदि के लिये अन्न प्राप्त करा ॥ प्र० ३(२) सु० २१।३

(१०२५) व्याख्या नं० ३८८ में हो चुकी है ॥ प्र० ३(२) सु० २२।१

(१०२६) परमेश्वर, तू सबको दबा सकने वाला है। तू ही सूर्य को प्रकाश देता है, तू जगत्स्रष्टा जगत का देव सर्वव्यापी है ॥ प्र० ३(२) सु० २२।२

(१०२७) परमेश्वर तू अपने ज्योति स्वरूप से जगत को प्रकाश पहुँचाता हुआ द्युलोक के प्रकाशक अपने अनन्त स्वरूप को प्राप्त है। विद्वान लोग तेरी मित्रता के लिये यत्न करते हैं ॥ प्र० ३(२) सु० २२।३

(१०२८) व्याख्या नं० ३४७ में हो चुकी है। प्र० ३(२) सु० २३।१

(१०२९) हे शत्रु विनाशक ! आपके लिए चढ़ाई के समय उचित ईश्वर प्रार्थना त्रिदेवयक मन्त्र से दो घोड़े जोड़े हैं। उस घोड़े जुड़े रथ में बैठिये।

सोम अभिशव करने का पत्थर आपके हृदय को शब्द से नवीन अच्छे प्रकार करे ॥ प्र० ३(२) सु० २३।२

(१०३०) किसी से न दबने वाले बलयुक्त राजा को ही उक्त अश्व ले चलते हैं। दृष्टाओं की स्तुतियाँ और मनुष्यों के यज्ञ को भी इन्द्र ही प्राप्त होता है ॥ प्र० ३(२) सु० २३।३

सातवाँ अध्याय

चतुर्थ प्रपाठकः

(१०३१) यज्ञ की ज्योति, वायु आदि देवों का पालक उनको संस्कारापेक्षया जन्म देने वाला, बहुत धनवान, अतिशय हर्षदायक, हर्षयुक्त इन्द्र से सेवित सोमरस प्यारे माधुर्य को टपकाता और द्युलोक और पृथ्वी में गुह्य सार वस्तु को याज्ञिकों को धारण कराता है। सोम को उत्पादक इसलिए कहा है कि वह होम में हुत होकर मनु के लेखानुसार वृष्टि अन्न और प्रजा को उत्पन्न करता है ॥ प्र० ४(१) सु० १।१

(१०३२) वेग वा बल वाला, दृष्टि को प्रसन्न करने वाला, हरा, वृष्टि करने का हेतु, टपकाने के साधन, दशा पवित्रों से शोधा जाता हुआ, शब्द करता हुआ द्रोण कलश में जाता, और फिर होम से अनेक धाराओं वाला होकर सूर्य के द्युलोकों में उपस्थित होता है। तब द्युलोक का पालक होता है ॥ प्र० ४(१) सु० १।२

(१०३३) सोम तू बादल जलों के आगे शोधा हुआ जाता है अर्थात् वृष्टि से जल उत्पन्न करने हेतु आहुति द्वारा अन्तरिक्ष में जाता है ॥ प्र० ४(१) सु० १।३

(१०३४) व्याख्या नं० ४८२ में हो चुकी है ॥ प्र० ४(१) सु० २।१

(१०३५) यश चाहने वाले ऋत्विजों से शोभित किए जाने वाले और अंगुलियों में शोधे जाते हुए सोम ऊनी बालों से बने दशापवित्र पर स्वच्छ किये जाते हैं ॥ प्र० ४ (१) सू० २।२

(१०३६) वे सोम इस सूक्त की प्रथम ऋचा के अनुकूल यज्ञानुष्ठान के लिए सब दिव्यानि, पार्थिवा, आन्तरिक्ष या तीनों लोकों के गौअश्वादि धन सर्वतः वर्षावें ॥ प्र० ४ (१) सू० २।३

(१०३७) गीले सोम ! देवों का चाहा वृष्टिकारक तू वेग से पवित्रता के लिए वर्ष । और वृष्टिकारक वायु में प्रवेश करा ॥ प्र० ४ (१) सू० ३।१

(१०३८) सोम ! वृष्टिकारक इसी से अत्यन्त धन धान्यवान और तू इसी से विश्व का धारक तू बहुत जल वा अन्न को हमें प्राप्त करा और तू अपने स्थान आकाश में विराज ॥ प्र० ४ (१) सू० ३।२

(१०३९) जिस अभिषुत वृष्टि आदि के विधाता, सोम की धार प्यारे मधुर रस को दोहती है, वह सुकर्मी सोम मेघस्थ जलों को आच्छादित करे ॥ प्र० ४ (१) सू० ३।३

(१०४०) सोम ! तू जब किरणों के साथ आच्छादन करेगा, तब गुणों में बड़े तुझ को लक्ष्य करके बहने वाली बड़ी वर्षाएँ आवेंगी ॥ प्र० ४ (१) सू० ३।४

(१०४१) रस भरा आधार और इसी से द्युलोक का धारक हमारा हितकारक सोम वसतीवरी नामक जलों में दशापवित्र पर अभिषुत किया जाता है ॥ प्र० ४ (१) सू० ३।५

(१०४२) व्याख्या नं० ४६७ में हो चुकी है ॥ प्र० ४ (१) सू० ३।६

(१०४३) सोम ! तेरे किये बल के साथ वे कर्म—पुरुषार्थ चाहने वाली वाणियाँ शोधी जाती हैं, जिन वाणियों सहित हर्ष के लिए शुद्ध किया जाता है । तात्पर्य यह है कि सोमपान से ओज बल, हृष्टि, पुष्टि और वाणी सुधरती है, एतदर्थ इसका अभिषव करना चाहिए ॥ प्र० ४ (१) सू० ३।७

(१०४४) हम यजमान लोग हृष्टि के सहायक उस पूर्वोक्त वाणी

सुधारने वाले बलपराक्रमादिवर्धक तुझ सोम को निश्चय तुझ सोम को बड़ी प्रशंसा के लिए तथा शत्रुओं को रगड़ डालने में समर्थ हृष्टि-पुष्टि के लिए चाहते हैं । अर्थात् मनुष्यों को हृष्टि वाणी बल शत्रुनाश इत्यादि प्रयोजनों के लिए सोम रस की इच्छा करनी चाहिए ॥ प्र० ४ (१) सू० ३।८

(१०४५) सोम गौ वा इन्द्रियों का दाता घोड़े वा प्राणों का दाता अन्न वा बल का दाता वीर पुत्रादि का दाता और यज्ञ वा सनातन आत्मा (रूह) है ॥ प्र० ४।२ सू० ३ ९

(१०४६) सोम ! इन्द्र से सेवित वा वीर्यवर्धक रस को मधुरामृत की धार से वर्षा वाले बादल सा हम यजमानों के लिए वर्षा ॥ प्र० ४ (१) सू० ३।१०

(१०४७) हे महाकीर्ते ! पवित्र वा परमेश्वर ! धनादि दान का अनुग्रह करो और विजय करो और हम को श्रेष्ठ करो ॥ प्र० ४ (१) सू० ४।१

(१०४८) परमेश्वर ! प्रकाश देवो, सुख देवो और सब सौभाग्य देवो इत्यादि पूर्वमन्त्र के तुल्यार्थ जानिये ॥ प्र० ४ (१) सू० ४।२

(१०४९) परमेश्वर ! बल और पुरुषार्थ दीजिए तथा शत्रुओं का नाश कीजिए ॥ प्र० ४ (१) सू० ४।३

(१०५०) हे सोम के अभिषुत करने वालो ! वा परमेश्वर के उपासको! तुम वायु विशेष वा परमेश्वर के लिए शोधणार्थ वा स्वीकारार्थ सोम वा कोमल हृदय को शुद्ध करो ॥ प्र० ४ (१) सू० ४।४

(१०५१) सोम वा परमेश्वर ! तू अपनी स्वाभाविकी क्रिया से तथा की हुई रक्षाओं से हम को कर्मण्य लोक में पहुँचा दे ॥ प्र० ४ (१) सू० ४।६

(१०५२) सोम वा परमेश्वर ! तेरी स्वभाविकी क्रिया से तथा तेरी की हुई रक्षाओं से हम चिरकाल तक कर्मण्य लोक को देखें ॥ प्र० ४ (१) सू० ४।७

(१०५३) हे भले धर्मानुकूल युद्ध के साधनभूत ! सोम वा परमेश्वर ! दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोक स्थानों में बढ़ा-चढ़ा कर धनैश्वर्य प्राप्त करा ॥ प्र० ४ (१) सु० ४।७

(१०५४) बलदायक सोम ! अन्यों से न दबने वाला और अन्यों को स्वयं दबाने में समर्थ तू संग्रामों में सर्वतः प्रभाव जमा ॥ प्र० ४ (१) सु० ४।८

(१०५५) पावन स्वरूप ! सोम वा परमेश्वर ! कर्मयज्ञ वा योगयज्ञ में तुझ को आहुतियों वा स्तुतियों से यजमान बढ़ाते वा उपासक स्तुत करते हैं ॥ प्र० ४ (१) सु० ४।९

(१०५६) सोम वा परमेश्वर ! अनेक प्रकार के प्रण को हित और पूर्णायु रूप धन प्राप्त कराओ ॥ प्र० ४ (१) सु० ४।१०

(१०५७) व्याख्या नं० ५०० में देखिये ॥ प्र० ४ (१) सु० ५।१

(१०५८) धनों को देने वाली प्रकाशमाना सोमधारा मनुष्य की रक्षा करना जानती है, वह हृष्टि-पुष्टिकारक सोम त्वरा करता हुआ गमन करता है ॥ प्र० ४ (१) सु० ५।२

(१०५९) चलने वाली पुरुषार्थवती दो सोमधाराओं के असंख्य समूहों को हम ऋत्विज लोग ग्रहण करते हैं ॥ प्र० ४ (१) सु० ५।३

(१०६०) जिन दो सोम की उक्त धाराओं के तीस हजार (३०,०००) संख्योपलक्षित विस्तृत सुखों को हम ग्रहण करते हैं, वह त्वरा करता हुआ सोम गमन करता है ॥ प्र० ४ (१) सु० ५।४

(१०६१) अत्यन्त हृष्टिकारक सोम की धारा से ये सोम रस प्रशंसित किये जाते हुए बड़े बल के लिए अग्नि में छोड़े जाते हैं ॥ प्र० ४ (१) सु० ६।१

(१०६२) अन्नोत्पादन से अन्नदाता शुद्धिकारक सोम धन के समान अतिप्रिय सूर्यकिरणगत भागों में व्याप्तता और बर्षता है ॥ प्र० ४ (१) सु० ६।२

(१०६३) तथा आहिताग्नि पुरुष से प्रशंस्यमान सोम हम याज्ञिकों के

लिए इन्द्रियों को बलदायक, सर्वतः प्रशंसनीय, सब अन्नों को वृष्टि द्वारा प्राप्त कराता है ॥ प्र० ४ (१) सु० ६।३

(१०६४) व्याख्या नं० ६६ में हो चुकी है ॥ प्र० ४ (१) सु० ७।१

(१०६५) यज्ञ के अग्रणी ! हम याज्ञिक लोग तेरे लिए सुलगाने की २१ (इक्कीस) द्रव्यों की समिधाओं के समूह को बनावें, तथा चरुपुरोडाशादिनामक अन्नों को बनावें और प्रति पर्वदिन अमावस पूर्णमासी को किए दर्श पूर्णमासी से सावधान हुए हम तेरी अनुकूलता में न दुःख पावें ॥ प्र० ४ (१) सु० ७।२

(१०६६) अग्ने ! तुझको प्रदीप्त करने को हम समर्थ हों । तू हमारे दर्श पूर्णमासादि नित्य नैमित्तिक कर्मों को सिद्ध कर । क्योंकि अग्नि से ही ये सब कर्म सधते हैं । अग्नि में होम किए हव्य को वायु आदि देवता खाते हैं और अग्नि देवों को हमारे यज्ञ में बुला, क्योंकि अग्नि देवदूत है । उन देवों को निश्चय हम चाहते हैं ॥ प्र० ४ (१) सु० ७।३

(१०६७) मैं यजमान प्राण और अपान इन दोनों को प्रत्येक को जो शत्रुओं को दबा सकने वाले और न्याय के सम्वर्धक हैं, इन को सूर्य उदय होते ही प्रतिदिन प्रातःकाल स्तुत करता हूँ ॥ प्र० ४ (१) सु० ८।१

(१०६८) हे बुद्धिमानो ! यह विचारण सुवर्णादि धन सहित अहिंसा बल और रत्नलाभार्थ होवे ॥ प्र० ४ (१) सु० ८।२

(१०६९) प्रकाशमान प्राण ! हम तेरे होवें । अपान ! हम तेरे होवें । तेरे संयम होने पर बुद्धिमानों सहित अन्न और सुख का धारण करें ॥ प्र० ४ (१) सु० ८।३

(१०७०) व्याख्या नं० १२४ में देखिए ॥ प्र० ४ (१) सु० ९।१

(१०७१) जिस प्राण के दिए हुए बहुत धन को जगत जानता है, वह अभिलषणीय धन हमें दीजिये । हे परमेश्वर ! यह अव्याहत है ॥ प्र० ४ (१) सु० ९।२

(१०७२) व्याख्या नं० २०७ में हो चुकी है ॥ प्र० ४ (१) सु० ९।३

(१०७३) हे इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनों निश्चय ज्योतिष्टोमादि

यज्ञ के ऋतु-ऋतु में यजनीय हो। अतः प्राप्तव्य बलों और यज्ञ क्रियाओं में चतुर उस हमारे किये यज्ञ को जानो ॥ प्र० ४ (२) सु० १०।१

(१०७४) हे इन्द्र और अग्ने! तुम शत्रुहिंसक रमणीयगमन वाले वृत्र के घातक और किसी अन्य से न हारने वाले होते हुए उस यज्ञ को जानो ॥ प्र० ४ (१) सु० १०।२

(१०७५) हे इन्द्र और अग्ने! तुम्हारे लिये अभिषवग्रावाओं से तृप्ति पुष्टि कारक मधुर सोम रस को ऋत्विज लोग पूर्ण करते हैं ॥ प्र० ४(१) सु० १०।३

(१०७६) व्याख्या नं० ४७२ में देखिये ॥ प्र० ४ (१) सु० ११।१

(१०७७) उस सुख धारक सोम को वेदज्ञ मेधावी लोग प्रशंसित करते हैं और उन से सुनकर अन्य मनुष्य सुख को शोधते हैं॥ प्र० ४(१) सु० ११।२

(१०७८) बुद्धिवर्धक! सोम! बुद्धिकारक तेरे रस को मित्र, वरुण, अर्यमा और मरुत् देव पीवें ॥ प्र० ४ (१) सु० ११।३

(१०७९) व्याख्या नं० ५१७ में देखिये ॥ प्र० ४(१) सु० १२।१

(१०८०) वृष्टि करने में समर्थ अभिषुत किया जाता हुआ सोम तर्कं में भेड़ के ऊन से बने दशापवित्र और काष्ठमय द्रोणकलश में शब्द करता है ॥ प्र० ४ (१) सु० १२।२

(१०८१) पूर्वोक्त समुद्र के पुत्र इस सोम को दस (१०) अंगुलियाँ शोधती हैं और यह सूर्य किरणों से मिल जाता है ॥ प्र० ४(१) सु० १३।१

(१०८२) दशापवित्र पर अभिषुत सोम इन्द्र नामक वायुविशेष से चारों ओर मिल जाता है और सूर्य की किरणों से मिल जाता है ॥ प्र० ४(१) सु० १३।२

(१०८३) वह मधुर रुचिर सोम भग, पूषा, मित्र और वरुण नामक वायुविशेष के लिए और हमारे लिए वर्षे ॥ प्र० ४ (१) सु० १३।३

(१०८४) व्याख्या नं० १५३ में है ॥ प्र० ४ (१) सु० १४।१

(१०८५) हे परमात्मन! आप सा कोई नहीं। अतः आप ही प्रार्थना किए हुये चेतन स्वरूप से युक्त हम उपासकों के लिये अवश्य सर्वतः सब कुछ देवें, जैसे रथ के दोनों पहियों की नाभी सब का केन्द्र हो कर सब अरों-अवयवों का उपकार करती है, ऐसे ही आप भी सब प्रार्थियों की प्रार्थनाओं के केन्द्रभूत हैं; सब की सुनते हैं ॥ प्र० ४(१) सु० १४।२

(१०८६) जो धन है सो हे अनन्तकर्मा जगतकर्ता! बुद्धियों सहित स्तोताओं के लिये प्राप्त कराइये। और उन की इच्छा पूर्ण कीजिये ॥ प्र० ४ (१) सु० १४।३

(१०८७) व्याख्या नं० १६० में हो चुकी है॥ प्र० ४(१) सु० १५।१

(१०८८) इन्द्र हमारे प्रातः सवनादि तीनों सवनों को प्राप्त होता और सोम पीने वाला इन्द्र सोम रस का पान करता है और उस धनवान इन्द्र का हर्ष वृष्टि से गौ आदि का दाता है ॥ प्र० ४ (१) सु० १५।२

(१०८९) फिर हे इन्द्र! तेरे समीपतर वर्त्ती उत्तम बुद्धि वाले पुरुषों के मध्य में स्थित होकर तेरे महात्म्य को हम जानें। और तू हम को मत प्रत्याख्यात कर किन्तु प्राप्त हो ॥ प्र० ४ (१) सु० १५।३

(१०९०) व्याख्या नं० २१९ में हो चुकी है ॥ प्र० ४(१)सु० १६।१

(१०९१) हे ज्ञानिन! इन्द्र! परमेश्वर! जैसे बड़े भारी मदान्ध हाथी के भी थामने वाले अंकुश का धारण करते हैं, वैसे आप सब जगत की थामने वाली शक्ति को धारते हैं। और जसे बकरा-बकरी अगले पांव से अनायास शाखा को खींच कर रखती है, तद्वत अनायास ही आप उस शक्ति से जगत को आकर्षणपूर्वक धारित करते हैं ॥ प्र० ४ (१) सु० १६।२

(१०९२) परमेश्वर! दुःखदायी हरण करने वाले शत्रु मनुष्य के स्थिर बल को गिराइये। और इस शत्रु को हमारे पांवों के नीचे कीजिए। जो कि हम धार्मिकों की हिंसा करता है। शेष पूर्व मन्त्र के तुल्य है ॥ प्र० ४(१) सु० १६।३

(१०९३) व्याख्या ं० ४०५ पर हो चुकी ॥ प्र० ४(१)सु० १७।१

(१०६४) सोम ! तू अनेक प्रकार से प्रसन्न करने वाला वा ब्राह्मण के सदृश सब का हितकारी तथा बुद्धि तत्व वाला होने से धारणावती बुद्धि का दाता, तेरे सेवन से हुए हर्षों के होने पर सब का धारक पालक-पोषक है, सो तू अन्न से उत्पन्न मधुर रस को देता है ॥ प्र० ४ (१) १७।२

(१०६५) सोम ! सब समान प्रीति वाले देवता तुझ में पान को प्राप्त होते हैं ॥ प्र० ४ (१) सु० १७।३

(१०६६) व्याख्या नं० ५८२ में हो चुकी है ॥ प्र० ४ (१) सु० १८।१

(१०६७) सोम ! जिस तेरे रस को इन्द्र नामक वायुविशेष देव पीवे, जिस के रस को मारुत नामक वायु भेद पीवें, अथवा जिस के रस को अर्यमा नामक वायु-विशेष देव के सहित भग नामक सूर्य किरणा विशेष पीवे, जिस सोम रस से मित्र और वरुण वायुओं को हम अभिषुत करते हैं, वह सोम बड़ी रक्षा के लिये हो ॥ प्र० ४ (१) सु० १८।२

(१०६८) व्याख्या नं० ५६६ में है ॥ प्र० ४ (१) सु० १६।१

(१०६६) अभिषुत किया जाता हुआ सोम भली प्रकार सिक्त होता है। जैसे बछड़ा माता गौओं से भली प्रकार सिक्त होता है। देवों का रक्षक हर्ष कारक सोम बुद्धिमानों से परिशोधित होता है ॥ प्र० ४ (१) सु० १६।२

(११००) यह सोम बल के लिये साधन है और यह बलयुक्त भोजन के लिये है। यह वायु आदि देवों के लिये अभिषुत सोम अतिमाधुर्ययुक्त है ॥ प्र० ४ (१) सु० १६।३

(११०१) व्याख्या नं० ५५८ में है ॥ प्र० ४ (१) सु० २०।१

(११०२) पवित्र से शोधित बुद्धितत्व युक्त दधि-मिश्रित वसतीवरी नामक जल में गमनशील वहाँ स्थिरता से वर्तमान वे सोम सूर्य से पात्रों में सब से देखने योग्य होते हैं ॥ प्र० ४ (१) सु० २०।२

(११०३) पृथ्वी के पृष्ठ पर पहुचाने जाते हुये पत्थरों से अनेक प्रकार सुन्दर अभिषुत किये जाते हुये सोम हम सोमसेवियों के लिये सर्वतः अन्नादि धनधान्य देते हैं ॥ प्र० ४ (१) सु० २०।३

(११०४) व्याख्या नं० ५४१ में है ॥ प्र० ४ (१) सु० २१।१

(११०५) सोम इस पवित्र धारा से श्रवणीय अपने विख्यात स्थान में हम सोमसेवियों को अधिकता से पवित्र करता है। और नीचे खड़ा पुरुष जैसे पके फलों वाले वृक्ष को हिलाता अर्थात फल प्राप्त करता है, ऐसे ही सोम भी ६० सहस्र धन मानों हिला कर शत्रुविजयार्थ गिराता है ॥ प्र० ४ (१) सु० २१।२

(११०६) इस सोम के ये दो वृष्टि और नम्रता रूप दो कर्म बड़े और अश्व तुल्य बलयुक्त और दिव्य सुखदायक मृत्यु के बचाने वाले हैं। यह सोम शरणागत नम्र शत्रुओं को प्यार करता और विरोधियों को सुलाता मार बिछाता तथा अग्निचयनोपलक्षित यज्ञ मात्र के विरोधी नास्तिकों को चेताता है अर्थात धार्मिक बनाता है ॥ प्र० ४ (१) सु० २१।३

(११०७) व्याख्या नं० ४४८ में है ॥ प्र० ४ (१) सु० २२।१

(११०८) सर्व के वास कराने वाले प्रकाशक वसु धनी यशस्वी और अतिप्रकाशमान ! आप भली प्रकार सामने प्राप्त हुजिये और विद्यादि धन दीजिये ॥ प्र० ४ (१) सु० २२।२

(११०६) हे ज्योतिस्वरूप प्रकाशमान ! उस पूर्वोक्त तुझ से सुख को मित्रों के लिए निश्चय हम याचना करते हैं ॥ प्र० ४ (१) सु० २२।३

(१११०) व्याख्या नं० ४५२ में देखिये ॥ प्र० ४ (१) सु० २३।१

(११११) परमेश्वर हमारे ज्योतिष्टोमादि और ब्रह्मयज्ञादि यज्ञ और देह और सन्तान को सूर्यादि देवों को साथ रखे, अर्थात जिस परमात्मा ने सूर्यादि देवों को यज्ञादि की उत्पत्ति को और सार्थकता के लिये रचा है, वह उन से हमारे यज्ञादि सिद्ध करे ॥ प्र० ४ (१) सु० २३।२

(१११२) परमेश्वर सर्वशक्तिमान सूर्यकिरणों और विविध वायुओं से गण सहित हमारे लिए औषधें करे ॥ प्र० ४ (१) सु० २३।३

(१११३) व्याख्या नं० ४४६ में हो चुकी है ॥ प्र० ४ (१) सु० २४।१

(१११४) व्याख्या नं० ४४५ में हो चुकी है ॥ प्र० ४ (१) सु० २४।२

(१११५) व्याख्या नं० ४४४ में हो चुकी है ॥ प्र० ४ (१) सु० २४।३

आठवाँ अध्याय

(१११६) व्याख्या म० नं० २२४ में हो चुकी है ॥ प्र० ४ (२) सु० १।१

(१११७) सूर्य किरणें वृष्टि कारक गण हैं, वे बल से क्षिप्र प्रकार करने वाली अभिषव के शब्द की ओर लक्ष्य कर के यज्ञ ग्रह की उत्कृष्टता से प्राप्त होती हैं । फिर मित्रभूत ऋत्विज लोग सब को प्राप्त करने योग्य दुःसह बाण के तुल्य सोम को साथ मिलकर गाते हैं । सोमयाग करने वाले सामगान करते हैं और उनके उन यज्ञयुक्त घरों पर हितकारी वृष्टिकारी सूर्य किरणें पड़ती हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० १।२

(१११८) यह सोम ! बहुगीयमान अपनी गति को प्रेरित करता है । बिना परिश्रम सहज में ही आकाश में मंडलाते हुए सोम को किरणें नहीं माप सकतीं । किञ्च तीक्ष्ण तेजस्वी सोम बहुत तेज करता है और दिन में हरा दीखता है तथा रात्रि में स्पष्ट प्रकाशमान प्रतीत होता है ॥ प्र० ४ (२) सु० १।३

(१११९) अभिषव के समय "उपस्थ" नामक गड्ढों में शब्द करते हुए सोम रथ के रमणीय और घोड़ों से वेगवान होते हुए यजमान के अन्न को चाहते हुए यजमानार्थ धन के लिए यत्न करते हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० १।४

(११२०) रथ के तुल्य रमणीय यज्ञ देश के प्रति जाते हुए सोम ऋत्विजों की बाहुओं में धरे जाते है जैसे भार—बोझें मजदूरों की बाहुओं पर धरे जाते हैं, शङ्गत ॥ प्र० ४ (२) सु० १।५

(११२१) जैसे राजा लोग प्रशंसाओं से, और जैसे यज्ञ, सात होताओं से संस्कृत किया जाता है, वैसे सोम सूर्य किरणों से संस्कृत किये जाते हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० १।६

(११२२) महती आनन्ददायिनी वाणी के साथ अभिषुत किये जाते हुए सोम वृष्टि के लिए मधुर रस की धारा से सब ओर फैलते हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० १।७

(११२३) सूर्य के पानभूत और उषा की शोभा को बढ़ाते हुए सूर्य तुल्य प्रकाशमान सोम सूक्ष्म कुछ वितानचन्दोवा सा बना लेते हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० १।८

(११२४) बुद्धियों के उत्पादक अनुभवी वृद्ध ऋत्विज लोग दीप्ति वा तेज के लिए वीर्यवान सोम के दरवाजे को खोल देते हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० १।९

(११२५) सत्पुरुष जन (१) होता, (२) मैत्रावरुण, (३) ब्राह्मणाच्छंसी, (४) पोता, (५) नेष्टा, (६) अच्छावाक और (७) अग्नीध ये सातों आपस के एक के स्थान को दूसरे पूरे करते हुए व्याप्ते हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० १।१०

(११२६) यज्ञ की नाभिरूपी सोम को हम अपनी नाभि में ग्रहण करते अर्थात् पीते हैं । किसलिये ? उत्तर आँख से सूर्य को देखने के लिए और क्रान्त दर्शी सोम के सन्तान रूपी अंशु को हम पूरते हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० १।११

(११२७) सूर्यवत् प्रकाशमान विद्वान पुरुष विद्या रूपी नेत्र से प्यारे सुख के स्थान तथा यज्ञकर्ताओं से आकाश में स्थापित सोम के प्रभाव को सब ओर देखते हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० १।१२

(११२८) इस सोम के प्रयुक्त करने को जानने वाले, सुन्दर शोभा वाले ऋत्विज लोग सत्य के धर्म अनुकूल मार्ग "यज्ञ" में सोमों को छोड़ते हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० २।१

(११२९) अन्य हवियों में प्रशंसनीय मुख्य हवि 'सोम' बड़ी भारी मधुर रस की धाराओं वाले जलों को बिलोय डालता है ॥ प्र० ४ (२) सु० २।२

(११३०) हवियों में मुख्य सोम वाणियों को युक्त ठीक करता है अर्थात् वृष्टिकारक स्थिर फलवाला यज्ञ स्वरूप सोम, यज्ञ स्थान में दशोवरी नाम के जल में शब्द करता है ॥ प्र० ४ (२) सु० २।३

(११३१) वाणी का सुधारने वाला सोम धनों वा बलों को शोधता हुआ कवि के कर्म काव्य "वैदिक स्तोत्रों को" जबकि प्राप्त होता है, तथापि अपने को वेद मन्त्रों में उक्त प्रशंसाओं के तुल्य दर्शाता है, तब सुख को बलवान बलदायक सोम मानो बाँटना चाहता है ॥ प्र० ४ (२) सु० २।४

(११३२) जब कि इस सोम को कर्मकर्ता ऋत्विज लोग अभिषुत करते हैं, तब यह सोम स्पर्धमान दुष्टों को नष्ट करने चलता है। स्पर्धमान प्रजाओं को जैसे राजा, तद्वत ॥ प्र० ४ (२) सु० २।५

(११३३) सोम प्यारा वस्तीवरी नामक जल में शब्द करता हुआ प्रसन्नता से सेवित होता है ॥ प्र० ४ (२) सु० २।६

(११३४) जो यजमान इस सोम के अभिषवादि कर्म से रमण करता है, वह इन्द्र नामक वायु को और द्यावा पृथ्वी को हर्ष के साथ प्राप्त होता है। प्र० ४ (२) सु० २।७

(११३५) जो पुरुष इस मधुर रस युक्त सोम की लहरों को जानते हुए मित्र वरुण भग नामक सूर्य किरण भेद रूपी देवों में वृद्धि करते हैं, वे पुरुषार्थों से युक्त होते हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० २।८

(११३६) द्यावा पृथ्वी दोनों मधुर सोम रूपी अन्न के दानार्थ हमें यश धन और पशु आदि धन देवें ॥ प्र० ४ (२) सु० २।९

(११३७) व्याख्या नं० ४६८ में हो चुकी है ॥ प्र० ४(२)सु० २।१०

(११३८) हृष्टि कारक सोम का हम सर्वतः वरण करते हैं। वरणीय वा भजनीय सोम का हम वरण करते हैं। धारणावती बुद्धि तत्व वाले सोम का हम वरण करते हैं। साधारण बुद्धि तत्व युक्त सोम का हम वरण करते हैं। रक्षा करते हुए तथा बहुतों से चाहे हुए सोम का हम वरण करते हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० २।११

(११३९) हे यज्ञ सुधारने वाले ! हम सोम रूपी धन का सर्वतः वरण करते हैं। बुद्धि सुधारने वाले सोम जलों में छुआ मिला हुआ भेड़ के बाल की ऊनी दशापवित्र पर रहता है और अभिषव के समय उपरवों का वरण करते

हैं, हम अपने देहों के निमित्त सोम का वरण करते हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० २।१२

(११४०) व्याख्या नं० ६७ में हो चुकी है ॥ प्र० ४ (२) सु० ३।१

(११४१) मरण रहित अग्ने ! सब वायु आदि देवता वा ऋत्विज लोग उत्पद्यमान तुझ को प्रशंसित करते वा तेरी ओर झुककर आते हैं, जैसे उत्पद्यमान बच्चे को पिता आदि प्रशंसित करते वा उसकी ओर झुककर आते हैं ॥ हे अग्ने ! तेरे कर्मों व यज्ञों से यजमान लोग देवबल को प्राप्त हो जाते हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० ३।२

(११४२) अग्निष्टोमादि यज्ञों के केन्द्रभूत धनों के स्थान बड़े आहुतिस्थान यज्ञ। वर्षा के जल की धाराओं के चीवच्चे रूप अग्नि को ऋत्विज लोग सब ओर से भली प्रकार स्तुत करते हैं तथा यज्ञों के रथी [जैसे रथ को यथेष्ट ले जाता है, तद्वत यज्ञों को ले जाने वाले] यज्ञ के ध्वजा रूप अग्नि को ऋत्विज लोग मन्थन से उत्पन्न करते हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० ३।३

(११४३) हे मनुष्यो ! तुम तुम्हारी अपनी विस्तृत वैदिक वाणी से महाबली वरुण और मित्र को यथार्थ बहुत प्रशंसित करो। प्र० ४ (२) सु० ४।१

(११४४) वे मित्र वरुण कैसे हैं ? सो कहते हैं कि जो मित्र वरुण दोनों देव अन्य देवों में श्रेष्ठ जल के उत्पन्न करने वाले और भली प्रकार प्रकाशमान हैं, उनको प्रशंसित करो ॥ प्र० ४ (२) सु० ४।२

(११४५) वे दोनों मित्र वरुण हमारे लिए पृथ्वी सम्बन्धी और आकाश सम्बन्धी बड़े धन के देने को समर्थ हों, उन मित्र वरुण का बल बड़ा है ॥ प्र० ४ (२) सु० ४।३

(११४६) विचित्र प्रकाश युक्त वायु विशेष प्राप्त हो क्योंकि ये तुझे चाहने वाले से सदा अंगुलियों से शोधे हुए अभिषुत सोम हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० ५।१

(११४७) वायो ! मेधावी लोगों ऋत्विजों से प्रेरित कर्म=यजन से प्राप्त हुआ अभिषुत सोम युक्त ऋत्विजों को जो वेद मन्त्रों को उच्चार रहे हैं, उनके समीप प्राप्त हो ॥ प्र० ४ (२) सू० ५।२

(११४८) इन्द्र वायो । मन्त्रों को उच्चारते हुए हमें शीघ्रता करता हुआ समीप व्याप्त हो और हमारे लिए सोम अभिषुत करने पर अन्न को धारित कर ॥ प्र० ४ (२) सू० ५।३

(११४९) हे मनुष्य ! तू उस अग्नि की प्रशंसा कर, जो लपट से सब जङ्गलों को लपेटता और उनको फूंक कर काला कर देता है ॥ प्र० ४ (२), सू० ६।१

(११५०) जो मनुष्य इन्द्र के रुचिकर हव्य को समिद्ध अग्नि में होम करके परिचर्या करता है, उस प्रकाशमान मनुष्य के लिए अति उत्तम जल इन्द्र बर्षाता है ॥ प्र० ४ (२) सू० ६।२

(११५१) वे दोनों अग्नि और इन्द्र हमारे लिये बलवान अन्न और शीघ्रगामी घोड़े देते हैं ॥ प्र० ४ (२) सू० ६।३

(११५२) व्याख्या नं० ५५७ में हो चुकी है ॥ प्र० ४ (२) सू० ७।१

(११५३) हे हर्ष चाहने वालो, स्तुति चाहने वालो, स्तुति करने वालो स्तोताओ ! तुम क्रीडा करते हुए हरित वर्ण सोम की प्रशंसा करो जैसे दुग्ध से गौवें सर्वतः आश्रय करती हैं, ऐसा करने पर तुम्हारे कर्म यज्ञ ग्रहों में प्रचलित हों ॥ प्र० ४ (२) सू० ७।२

(११५४) गीले सोम ! तुम हमारे लिए संग्रह किये हुये बहुबलयुक्त अन्न को लहरी से वर्षा । जो निर्विघ्न अन्न अन्य युक्त, बल युक्त, माधुर्य युक्त शोभन वीर्य को भरता है ॥ प्र० ४ (२) सू० ७।३

(११५५) व्याख्या नं० २४३ में है ॥ प्र० ४ (२) सू० ८।१

(११५६) अतएव, अत्यन्त बल युक्त शत्रु सेनाओं में दबाव डाल सकने वाले इन्द्र या राजा की प्रशंसा करता हूं । जिसके उत्पन्न होने पर बड़ी

बहु वेग वाली सूर्य किरणें भली प्रकार स्तुति करती हैं । और द्युलोकस्थ, तथा पृथ्वीलोकस्थ लोग स्तुति करते हैं ॥ प्र० ४ (२) सू० ८।२

(११५७) व्याख्या नं०५६८ में हो चुकी है ॥ प्र० ४ (२) सू० ९।१

(११५८) हे ऋत्विजो ! तुम प्राण, गृह, धन या सन्तान के साधन, देवों के रक्षक, हृष्टि-पुष्टिकारक, दोनों लोकों के बल इस सोम को माता के समान वसतीवरी नामक जलों से सर्वतः मिलाओ, जैसे बछड़े को माताओं गौवें से मिलाते हैं ॥ प्र० ४ (२) सू० ९।२

(११५९) हे ऋत्विजो ! बल और भोजन के लिये जैसे बल का साधन हो वैसे, और प्राण तथा अपान के लिए जैसे सुखदायक हो वैसे, सोम का शोधन करो ॥ प्र० ४ (२) सू० ९।३

(११६०) बलवान वा वेगवान बहुत से धाराओं वाला सोम भेड़ की ऊर्णामय दशापवित्र को अन्तर्हित करके विविध प्रकार से वर्तता है ॥ प्र० ४(२) सू० १०।१

(११६१) बलिष्ठ, बहुत वीर्य वाला, जलों से शोधा जाता हुआ, किरणों से आश्रयवान वह सोम सींचता है ॥ प्र० ४ (२) सू० १०।२

(११६२) ऋत्विजों से नियमपूर्वक होम किया जाता हुआ, मेषों से सींचा हुआ सोम इन्द्र के उदर में प्रकर्ष से जाता है ॥ प्र० ४ (२) सू० १०।३

(११६३, ११६४, ११६५) जो सोम दूर देशों में और जो समीप देश में और जो इस भूमि में और जो सम किये हुए स्थानों में और जो गृहों के मध्य में, और जो चार ऋत्विज और पांचवां यजमान—इन पांचों में अभिषुत किये जाते हैं, वह अभिषूयमान दिव्य सोम हमारे लिए आकाश के सकाश से जिससे सुन्दर वीर्य होवे वर्षा को सर्वतः वर्षावें ॥ प्र० ४ (२) सू० ११।१, २, ३

(११६६) व्याख्या नं० ८ में हो चुकी है ॥ प्र० ४ (२) सू० १२।१

(११६७) हे स्वप्रकाश रूप परमात्मन ! आप सर्वत्र ही सम दर्शी

हैं और सब पूर्व आदि दिशाओं को लक्ष्य करके ईश्वर है। इस प्रकार के आपको संग्रामों और तत्तुल्य कठिन समयों में हम पुकारते हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० १२।२

(११६८) कामादि शत्रुओं के साथ युद्धों में बल चाहते हुए हम उन संग्रामों में विचित्र धनी प्रकाशस्वरूप परमात्मा को रक्षार्थ पुकारते हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० १२।३

(११६९) व्याख्या नं०४०५ में हो चुकी है ॥ प्र० ४ (२) सु० १३।१

(११७०) सबके अंतर्यामित्व से सब में बसने वाले ! सृष्टि उत्पत्ति स्थितियों के कर्ता ! आप ही हमारे पिता और आप ही माता, सृष्टि आरम्भ में हुए थे। इसीलिए आपके ही सुख आनन्द को हम माँगते हैं ॥ प्र० ४ (२) सु० १३।२

(११७१) बलवान ! बहुतों से पुकारे हुए परमेश्वर ! बल देते हुए आपको मैं स्तुत करता हूँ। वह आप हमारे लिए सुन्दर वीर्य को दीजिए ॥ प्र० ४(२) सु० १३।३

(११७२) व्याख्या म० न० ३४५ में है ॥ प्र० ४(२) सु० १४।१

(११७३) हे परमेश्वर ! जिसको आप उत्तम समझें, उस अन्न को हमें प्राप्त करावें। आपके उस अनिन्दित परिपाक वाले अन्न दान से हम योग्य होवें ॥ प्र० ४(२) सु० १४।२

(११७४) हे वज्रवन्, इन्द्र, परमेश्वर ! दिशाओं में विख्यात जो बड़ा आराधनीय आपका ज्ञान है, उस ज्ञान से दान या संभजन के लिए पुष्ट अन्न को सब ओर से दुहाते (भरमार से देते) हो ॥ प्र० ४(२) सु० १४।३

नवाँ अध्याय

पञ्चम प्रपाठकः

(११७५) सूर्यकिरणें या ऋत्विज लोग अपने समूह से नवीन उत्पन्न हुए मनोहर बुद्धितत्वयुक्त सोम को शोधते और सुशोभित करते हैं। कान्त बुद्धितत्व युक्त शब्द करने के स्वभाव वाला सोम, शब्द करता हुआ, वेद पाठ से और उससे भी सोम की प्रशंसायुक्त ऋचाओं की वाणियों के साथ दशापवित्र को उल्लंघन कर जाता है ॥ प्र० ५(१) सु० १।१

(११७६) जो ऋषियों का मन है, जिसमें अतएव ऋषि बनाने वाला सुन्दर गति वाला, बहुत प्रकाश वाला, कवियों, बुद्धिमानों का उत्पत्तिकर्ता, प्रशंसनीय, प्रशस्यमान, द्युलोक को विभक्त करना चाहने वाला सा सोम है, वह इन्द्र वायु को प्रकाशित करता है ॥ प्र० ५(१) सु० १।२

(११७७) द्युलोक और पृथ्वी लोक के मध्य में स्थित शिखरा (बाज) पक्षी सा बलवान आकाशविहारी सूर्यकिरणों में गया, जल में मिला, बिजली रूपी शस्त्रों को धारण करता हुआ, जलों की लहरी युक्त अन्तरिक्ष को सेवन करता हुआ, महान सोम द्युलोक पृथ्वीलोक और अन्तरिक्ष लोक इन तीनों में चतुर्थ से अद्भुत स्थान को सेवित करता है ॥ प्र० ५(१) सु० १।३

(११७८) वे सोम इस इन्द्र के वीर्य को बढ़ाते हुए प्यारी कामना को सर्वतः बर्षाते हैं ॥ प्र० ५(१) सु० २।१

(११७९) जो अभिषुत किए जाते हुए और फिर पृथ्वी आकाश के बीच में स्थित हुए वायु को और उसमें के प्राण अपान को प्राप्त होते हुए सोम हैं, वे हमारे लिए उत्तम वीर्य को धारण करें ॥ प्र० ५(१) सु०२।२

(११८०) हे सोम ! तू अभिषुत किया हुआ इन्द्र नामक वायु विशेष वृष्टिकारक की सिद्धि के लिए हृदय के स्थान को उत्तेजित कर। मैं इसीलिए देवों के स्थान = यज्ञस्थल में आकर बैठता हूँ ॥ प्र० ५(१) सु० २।३

(११८१) सोम ! तुझ को दस अंगुलियाँ शोधती हैं । सात होता लोग अग्नि में पहुँचाते हैं, फिर बुद्धिमान लोग हृष्ट-पुष्ट होते हैं ॥ प्र० ५(१) सु० २।४

(११८२) सोम ! हम देवों के लिये हर्षार्थ दशापवित्र को उल्लंघन करके छोड़ते हुए तुझ को, जिससे सुख हो, सूर्य की किरणों से सुवासित करते हैं ॥ प्र० ५(१) सु० २।५

(११८३) द्रोण कलशों में सर्वतः अभिषूयमान प्रकाशमान और अग्नि सम्बन्ध से धूम रूप में परिणत होकर हरा हुआ सोम किरणमय वस्त्रों को पहर लेता है ॥ प्र० ५(१) सु० २।६

(११८४) सोम ! हम सोमयाजियों को धनी बना, और सब शत्रुओं को मार तथा अपने मित्र इन्द्र वायु को प्रवेश कर ॥ प्र० ५(१) सु० २।७

(११८५) चक्षु को हितकारी होने से मनुष्यों को दिखाने वाले जिस का इन्द्र ने पान किया है, उस सुखप्रापक अन्न तुझ सोम को हम याज्ञिक भक्षण करें और सन्तान को पावें ॥ प्र० ५(१) सु० २।८

(११८६) औषधिराज ! तू पृथ्वी के ऊपर वर्षा, और अन्न को सर्वतः वर्षा, और हमारे लिये संग्रामों में बल को धारण कर ॥ प्र० ५(१) सु० २।९

(११८७) भेड़ के रोम के दशापवित्र को उल्लंघित करने वाला, शोधा हुआ, बहुत धारायुक्त सोम इन्द्र जो कि वायु है, उसके स्थान को जाता है ॥ प्र० ५(१) सु० ३।१

(११८८) हे रक्षा को चाहने वालो ! तुम वायु आदि के भक्षण यज्ञार्थ अभिषुत किये जाते हुए मेधातत्व युक्त सोम को प्रशंसित करो ॥ प्र० ५(१) सु० ३।२

(११८९) यज्ञसिद्ध और बल प्राप्ति के लिये प्रशंस्यमान बहुबलयुक्त सोम पवित्रता करता है ॥ प्र० ५(१) सु० ३।३

(११९०) सोम ! हमारे लिये बल दानार्थ बहुत बड़े अन्नों को और प्रकाशमान शोभन वीर्य को वर्षा ॥ प्र० ५(१) सु० ३।४

(११९१) जैसे बाण चलाने वालों से चलाये हुए संग्राम के लिये छोड़े जाते हैं, वैसे ही निरन्तर गमनयोग्य सोम भी भेड़ के बालमय दशापवित्र को विसर्जन किये जाते हैं ॥ प्र० ५(१) सु० ३।५

(११९२) अभिषव किये जाते हुए वे दिव्य सोम हमारे लिये बहुत धन तथा उत्तम वीर्य को सर्वतः वर्षावें ॥ प्र० ५(१) सु० ३।६

(११९३) सोम दोनों बाहुओं में धारण किये जाते और सर्वतः जाते फैलते हैं । जैसे शब्द करती हुई माता गौवें बछड़े के प्रति दौड़ती हैं ॥ प्र० ५(१) सु० ३।७

(११९४) राजा या वायुविशेष वा यजमान के लिये सेवन किया हुआ तृप्तिकारक सोम शब्द करता हुआ और सब शत्रुओं का नाश करता है ॥ प्र० ५(१) सु० ३।८

(११९५) सुख दिलाने वाले, अधार्मिकों का नाश करने वाले सोम वा सोमपायी लोग यज्ञ के स्थान में ठहरते हैं ॥ प्र० ५(१) सु० ३।९

(११९६) यज्ञ के अभिषुत अति माधुर्ययुक्त गीले सोम इन्द्र के लिये धार से छोड़े जाते हैं ॥ प्र० ५(१) सु० ४।१

(११९७) मेधावी ऋत्विज लोग सोम के पानार्थ इन्द्र को अभिमुख्य से स्तुत करते अर्थात् सोम अभिषुत होने पर इन्द्र की स्तुति वाले मन्त्रों को पढ़ते हैं, जैसे दुधारु गौवें बछड़े की प्रीति से रंभा कर पुकारती हैं ॥ प्र० ५(१) सु० ४।२

(११९८) बुद्धितत्वयुक्त हर्ष का टपकाने वाला सोम मन रूपी समुद्र की लहरों रूपी स्थान में वाणी में आश्रित हुआ निवास करता है ॥ प्र० ५(१) सु० ४।३

(११९९) जो सोम यज्ञ की शोभा और कान्त बुद्धितत्वयुक्त तथा विशेष कर दृष्टि को प्रसन्न करने वाला है, वह भेड़ के बालमय ऊनी दशापवित्र पर आकाश की नाभि (यज्ञ) में महिमा पाता है ॥ प्र० ५(१) सु० ४।४

(१२००) जो सोम द्रोणकलशों में भरा रहता और दशापवित्र के

मध्य में रखा जाता है, उस सोम को आकाशस्थ चन्द्रमा किरणों द्वारा आलिंगन करता है ।। प्र० ५(१) सु० ४।५

(१२०१) चन्द्रमा आकाश के विष्टब्ध स्थान में स्थित हुआ मधु टपकाने वाले कोश (अपने मण्डल) को किरण रूप से वाणी के प्रति भेजता है अर्थात् सोम का प्रभाव वाणी की मधुरता पर पड़ता है ।। प्र० ५(१) सु० ४।६

(१२०२) निरन्तर प्रशंसनीय औषधियों का राजा सोम मनुष्यों के जोड़े स्त्री-पुरुषों के प्रति सनृत दुहने वाली वाणीरूप गौ को प्रेरित करता हुआ वर्तमान है ।। प्र० ५(१) सु० ४।७

(१२०३) हे शुद्ध किये गये या शुद्ध करने वाले सोम ! हम में बहुत प्रकाश वाले घर की शोभारूप धन को सब ओर से रख ।। प्र० ५(१) सु०४।८

(१२०४) वह उत्तम स्थान यज्ञ में, धार से, अभिषुत किया हुआ कान्तकर्मा वृद्धिरथयुक्त सोम द्युलोक के प्यारे स्थानों को सर्वतः जाता है ।। प्र० ५(१) सु० ४।९

(१२०५) समुद्र की लहरों के शब्द से तेरे वेग ऊपर को उठते हैं, सो तू वायुविशेष वृष्टिकारक इन्द्र के धनुष में प्रयुक्त बाणतुल्य वेग के अभ्र को प्रेरित कर अर्थात् वर्षा का प्रेरक हो ।। प्र० ५(१) सु० ५।१

(१२०६) सोम ! जब कि पर्वतशिखर की आकृति वाले उच्च ऊनी दशापवित्र पर तू जाता है, तब यज्ञार्थ यजमानादि को तेरे अभिषव विषयक ऋग्यजुः सामवेदों की वाणियाँ उच्चारित होती हैं ।। प्र० ५(१) सु० ५।२

(१२०७) देवताओं के प्रसन्न करने वाले हरे मधुर रस को टपकाने वाले सोम को भेड़ के बालों से बने दशापवित्रों और दशरेटों से पीस-छेत-छान कर तैयार करते हैं ।। प्र० ५(१) सु० ५।३

(१२०८) हे हृष्टिकारकतम ! कान्तकर्मन ! सोम ! सूर्य के स्थान आकाश में पहुँचने को पवित्र किरण समूह को धारा से शोध ।। प्र० ५(१) सु० ५।४

(१२०९) अत्यन्त हृष्टिकारक, गमनशील किरणों से सना हुआ सोम

सूर्य के उदर (आकाश) में घूमता और शुद्धि करता है ।। प्र० ५(१) सु०५।५

(१२१०) व्याख्या न० ४६५ में है ।। प्र० ५(१) सु० ६।१

(१२११) सोमरस शीघ्र सत्यकर्ता सोमयाजी और सोमपायी यजमान के लिये उस सुख शान्ति में विघ्नकारक समीपस्थ शत्रु पुरुष को और उसकी पुरियों को नष्ट करता है ।। प्र० ५(१) सु० ६।२

(१२१२) सोम ! प्राणों के लाभदायक ! तू हमारे लिये इन्द्रियों से युक्त, तेज से युक्त प्राण को तथा बहुत से अन्नों को अभिवर्षित कर ।। प्र० ५(१) सु० ६।३

(१२१३) व्याख्या न० ४९२ में देखें ।। प्र० ५(१) सु० ७।१

(१२१४) प्रकाशमान पवित्र स्वरूप परमात्मन ! सोम ! हमारे लिए महाधनों को दीजिये और शत्रुओं को मारिये तथा पुत्रादियुक्त यश दीजिये ।। प्र० ५(१) सु० ७।२

(१२१५) हे सोम ! परमात्मन ! जब कि शुद्धस्वरूप तू धन देना चाहता है, तब बहुत भी हरणशील हमारे शत्रुधनादि देना चाहते हुए तुझ को नहीं मार सकते ।। प्र० ५ (१) सु० ७।३

(१२१६) व्याख्या न० ४८३ में देखिये ।। प्र० ५(१) सु० ८।१

(१२१७) सोम=चन्द्रमा आकाशमार्ग से प्रकाशित होकर जाने के लिए सूर्य के किरण को मन रूपी आपे में युक्त करता है ।। प्र० ५ (१) सु० ८।२

(१२१८) और चन्द्रमा प्रकाशित हो कर जाने के लिए सूर्य मुझ में प्रकाशता है, ऐसे मानो बोलता हुआ उन सूर्य की किरणों को अपने रमणीय मण्डल में जोड़ता है ।। प्र० ५ (१) सु० ८।३

(१२१९) हे समान-प्रीति-सेवा-युक्त याज्ञिको ! तुम जो मनुष्यों में निरन्तर स्थिर, सत्य और यश वाला, ताप युक्त तपाने वाला, सदा ऊपर को लपट रखने वाला, घी हरनेवाला, वृद्धि करने वाला है, उस प्रकाशमान, यजनीयतम अग्नि को अङ्गारों से तुम अपने हिंसारहित यज्ञ में हुत बनाओ, जिस

से उस २ देवता के उद्देश्य का हव्य पहुँचावे ॥ प्र० ५ (१) सु० ९।१

(१२२०) जब अग्नि घास को खाने को तयार हींसते हुए घोड़े के समान, भारी रुकावट (काष्ठ के ढेर) से निकलता हुआ स्थित होता है, तब ही इस अग्नि की लपट के साथ वायु चल पड़ता है और उस अग्नि की मार्ग काली है ॥ प्र० ५ (१) सु० ९।२

(१२२१) जब वृष्टि के हेतु अरणियों में नवोत्पन्न जिस वायु से सहायता पाये हुए की तेरी बुढी नहीं, किन्तु जवान प्रदीप्त लपटें ऊपर को चलती हैं। हे अग्ने ! तब तू प्रकाशमान और यज्ञधूम युक्त हुआ देवता आकाश की ओर जाता है। इस कारण सूर्य आदि दूरस्थित देवों से मिल जाता है ॥ प्र० ५ (१) सु० ९।३

(१२२२) व्याख्या नं० ११६ में हो चुकी है ॥ प्र० ५ (१) सु० १०।१

(१२२३) वह वृष्टिकर्ता अन्नधनादि देने के लिए परमेश्वर ने बनाया है; वह अतिबलयुक्त है, वह बलवान सोम में रखा गया है, अन्न वाला इसी से कीर्ति वाला यह सोम आहुति के योग्य है ॥ प्र० ५ (१) सु० १०।२

(१२२४) वज्र सा बलयुक्त, शिथिलता रहित, तीव्र, न मारा हुआ [इन्द्र] हमारे लिए जलादि का वाहन करना चाहता है। इसलिए वेदवाणी [द्वा]रा परमात्मा ने धारण किया और कराया है ॥ प्र० ५ (१) सु० १०।३

(१२२५) व्याख्या नं० ४९९ में हो चुकी है ॥ प्र० ५ (१) सु० ११।१

(१२२६) हे सोम ! स्वयं शुद्ध और अन्यों के शोधक तथा मधुर अन्न [वाले] तेरा वे वायु और तत्रस्थ अन्य देवता विविध भोजन करते है ॥ प्र० ५ (१) [सु]० ११।२

(१२२७) हे अध्वर्यु लोगो ! तुम अति मधुर आकाश के अमृत उत्तम [सो]म रस को बिजुली वाले मेघवर्धक वायुविशेष के लिए अभिषुत करो ॥ [प्र]० ५ (१) सु० ११।३

(१२२८) व्याख्या नं० ५५८ में हो चुकी है ॥ प्र० ५ (१) सु० १२।१

(१२२९) कर्मकाण्डार्थी बुद्धिमान ऋत्विजों से हवन किया हुआ

सोम वृष्टिकारक वायु विशेष के बल को प्रेरता हुआ, बढ़ाता हुआ सूर्य किरणों से मिलता है, जैसे रथी शूरवीर योद्धा स्वाधीनतारूप सुख को चाहना चाहता हुआ दोनों में खड्ग, चर्म, परशु, पाश इत्यादि अस्त्र-शस्त्रों को धारण करके तैयार होता है। ऐसे ही सूर्य किरणों के यज्ञों में सोम इन्द्र को तैयार करता है ॥ प्र० ५ (१) सु० १२।२

(१२३०) हे शोध्यमान ! सोम ! तू वृद्धि को प्राप्त होवेगा, सो वायुविशेष इन्द्र के पेटों में लहरी द्वारा प्रवेश कर, जैसे कि बिजुली बादलों में प्रवेश करती है और द्युलोक और पृथ्वीलोक को दुह अर्थात् वृष्टि तथा खेती को सम्पन्न कर, और यज्ञ कर्म से हमारे लिए बहुत अन्न, धन, बल आदि पदार्थों को प्राप्त करा ॥ प्र० ५ (१) सु० १२।३

(१२३१) व्याख्या नं० २७९ में है ॥ प्र० ५ (१) सु० १३।१

(१२३२) हे परमेश्वर ! यद्यपि आप क्या रमणीय देश और क्या हिंसकदुष्ट, तथा क्या अंधियारे, और क्या समर्थ, सर्वत्र एक साथ ही एक रस अपने आनन्द स्वरूप से वर्त्तमान हैं, तथापि वेदवाहक मेधा (धारणवती बुद्धि) वाले लोग जब आप को वैदिक स्तुति मन्त्रों से ढूँढते हैं, तब आप प्राप्त होते है ॥ प्र० ५ (१) सु० १३।२

(१२३३) व्याख्या नं० २६० में देखो ॥ प्र० ५ (१) सु० १४।१

(१२३४) परमेश्वर ! इन्द्र ! पूर्वोक्त स्वयंराजमान उस काम वर्धक आप को द्युलोक और पृथ्वीलोक के निवासी परम पुरुषार्थ आत्मिक बल से ढूँढ पाते हैं। क्योंकि आप का ज्ञान हृद्गत सौम्य भाव को चाहता है और आप आकाश आदि उपमानों में मुख्य अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म हैं और व्यापक होने से निरन्तर सर्वत्र वर्तमान हैं ॥ प्र० ५ (१) सु० १४।२

(१२३५) व्याख्या नं० ४८३ में हो चुकी है ॥ प्र० ५ (१) सु० १५।१

(१२३६) शुद्धिकारक सोम मेघ को वर्षाता है, सो तू अत्यन्त प्रशस्त धन धान्यप्रद आकाश में चुल ॥ प्र० ५ (१) सु० १५।२

(१२३७) व्याख्या नं० ४९२ में हो चुकी है ॥ प्र० ५ (१) सु० १५।३

(१२३८) व्याख्या नं० ५४६ हो में चुकी है ।। प्र० ५ (१) सु० १६।१

(१२३९) हे परमेश्वर ! ऐसी कृपा हो कि जब तक हम जीवें, तब तक धन-धान्य आदि सम्पत्ति ऐहिक सुख-साधन प्राप्त रहें और अन्त में मोक्ष के आनन्द भागी हों ।। प्र० ५ (१) सु० १६।२

(१२४०) सूर्यकिरणों का चाहने वाला ऊर्ध्वगामी जो सोम प्रकाशमान दीप्ति के साथ जैसे जाता है, तद्वत दीप्ति के साथ यज्ञ में धार के साथ जाता है, अभिपूयमान वह गीला सोम रस हर्ष के लिए वेद मन्त्रों से प्रेरित हुआ ऊर्णामय दशापवित्र पर सर्वतः टपकता है ।। प्र० ५ (१) सु० १६।३

(१२४१) व्याख्या नं० ४०६ में है ।। प्र० ५ (१) सु० १७।१

(१२४२) हे शान्तिधाम ! आशुकारी आप सूर्यादि देवों, अन्तरिक्ष पृथ्वीलोक और वहाँ-वहाँ की प्रजाओं के लिए सुख वर्षाइये ।। प्र० ५ (१) सु० १७।२

(१२४३) हे शान्तिस्वरूप परमेश्वर ! तू शीघ्र सृष्टि आदि करने वाला, अमृत स्वरूप अति बलवान है, जो सर्वशक्तिमत्ता से द्युलोकादि का धारक है। सो ऐ पिता ! तू कारण के नाश न होने से सत्य विविध धर्म वाले जगत में हमें पवित्र कर ।। प्र० ५ (१) सु० १७।३

(१२४४) व्याख्या नं० ५ में हो चुकी है ।। प्र० ५ (१) सु० १८।१

(१२४५) जिस अग्नि का विद्वान गार्हपत्य और आहवनीय रूप दो प्रकार से आधान करते हैं, उसकी प्रशंसा कर, जो विद्वान के समान प्रशंसनीय है ।। प्र० ५ (१) सु १८।२

(१२४६) हे अखिलवत्सल ईश्वर ! दानादि से परोपकार-रत मनुष्यों की रक्षा कीजिए, उनकी स्तुतियों को सुनिये, और उन के पुत्रादि सन्तान वर्ग की अपने अनन्त सामर्थ्य से रक्षा कीजिए ।। प्र० ५ (१) सु० १८।३

(१२४७) व्याख्या नं० ३६३ में हो चुकी है ।। प्र० ५ (१) सु० १९।१

(१२४८) सत्य, सोमपा, इन्द्र ! निश्चय तू दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोक को दबाकर वर्तमान है, सो तू सोमयाजी यजमान का बढ़ाने वाला और आकाश का पालक है ।। प्र० ५ (१) सु० १९।२

(१२४९) हे वृष्टिहेतो, वायुविशेष ! तू ही बहुत पुरानी नगरियों का फाड़ने वाला, असुर मेघ का हनन करने वाला और यज्ञशील मनुष्य का बढ़ाने वाला है, जो कि आकाश का पति है ।। प्र० ५ (१) सु० १९।३

(१२५०) व्याख्या नं० ३२९ में है ।। प्र० ५ (१) सु० २०।१

(१२५१) हे मेघ वाले इन्द्र सूर्य ! तू किरण युक्त तथापि निर्भय, मेघ के घने समूह को तोड़ कर खोल देता है और तब पृथ्वी आदि लोक मेघ से भीगे हुए तुझ को प्राप्त होते हैं ।। प्र० ५ (१) सु० २०।२

(१२५२) हे मनुष्यो ! तुम धारण आकर्षणादि विविध अद्भुत बल से ऐश्वर्यवान सूर्य वा परमेश्वर की प्रशंसाविधायक वेदमन्त्रों से सर्वतः प्रशंसा करो ।। प्र० ५ (१) सु० २०।३

दसवाँ अध्याय

(१२५३) व्याख्या नं० ५२९ में हो चुकी है ।। प्र० ५(२) सु० १।१

(१२५४) दिव्यगुणयुक्त ! सोम ! तू हमारे धन और यश के लिये साधारण वायु को हृष्ट करता है, तथा शोध्यमान तू प्राण और अपान को बल देता है और मरुतों-वायुभेदों के बल को आप्यायित करता है और इन्द्रियों को पुष्टि देता है और कहाँ तक कहा जावे—द्युलोक और पृथ्वीलोक अर्थात पृथ्वी आकाश के प्राणी अप्राणी सब पदार्थों की हृष्टि-पुष्टि करता और तद्द्वारा हमारे धन-धान्यादि बढ़ाता है ।। प्र० ५(२) सु० १।२

(१२५५) व्याख्या नं० ४५२ में हो चुकी है ।। प्र० ५(२) सु० १।३

(१२५६) यह अमृत सोम द्रोण कलशों में स्थित होने को सर्वतः जाता है, जैसे पक्षी ॥ प्र० ५(२) सु० २।१

(१२५७) मेधावी ऋत्विजों से प्रशंसित द्योतमान यह सोम हवियों के दाता यजमान के लिये रमणीय धनादि पदार्थ देता हुआ वसतीवरी नामक जलों को विलोडित करता है ॥ प्र० ५(२) सु० २।२

(१२५८) यह सोम सब वरणीय धनादि पदार्थों को विभागपूर्वक देना चाहता है, जैसे कि सेनाओं के साथ चढ़ाई पर जाता हुआ शूरवीर सेनापति ॥प्र० ५(२) सु० २।३

(१२५९) यह सोम दिव्यगुण युक्त है, सो वह रथ द्वारा जाता है जैसा कि सोमयज्ञ में आदरार्थ सोम को रथ में ले चलते हैं। शुद्धि करता हुआ यह सोम यजमानों के लिए धनैश्वर्यादि देना चाहता है और सोम पीने वालों की वाणी को प्रकट करता है ॥ प्र० ५(२) सु० २।४

(१२६०) शोध्यमान हरित वह दिव्य गुण सोम यज्ञ की कामना वाले ऋत्विजों द्वारा बल प्राप्त्यर्थ संस्कृत किया जाता है ॥ प्र० ५(२) सु० २।५

(१२६१) अंगुलि से अभिषुत यह दिव्यगुण सोम अहिंसित हुआ शत्रुओं और रोगों को अतिक्रमण करके जाता है अर्थात् दबाता है ॥ प्र० ५(२) सु० २।६

(१२६२) यह सोम धाराओं से अग्नि में हुत हुआ चटचटा शब्द करता हुआ द्युलोक तथा अन्य लोकों को छिपा हुआ विविधता से जाता है ॥ प्र० ५(२) सु० २।७

(१२६३) यज्ञ सुधारने वाला अहिंसित=किसी से न दबने वाला, यह सोम अदृश्य रूप से लोकान्तरों को अनेकधा जाता है ॥ प्र० ५(२) सु० २।८

(१२६४) व्याख्या नं० ७५८ में हो चुकी है ॥ प्र० ५(२) सु० २।९

(१२६५) यह ही वह सोम है, जो बहुत कर्म वाला उत्पन्न होते ही अन्नों=धान्यों को उत्पन्न करता हुआ अपनी धारों से शुद्ध करता है ॥ प्र० ५(२) सु० २।१०

(१२६६) वायु विशेष वृष्टि करता इन्द्र के स्थान आकाश को जाता हुआ यह सोमरस सूक्ष्मतम कर्म से पहुंचता है ॥ दृष्टान्त—जैसे शूरवीर शीघ्रगामी रथों से जाता है ॥ प्र० ५(२) सु० ३।१

(१२६७) यह सोम बड़े यज्ञ के लिए कर्म चाहता है, जिस यज्ञ में वायु आदि देवता आते हैं ॥ प्र० ५(२) सु० ३।२

(१२६८) ऋत्विज लोग बहुत अन्नों को बहुतायत से उत्पन्न करने वाले इस निचोड़ने योग्य सोम को द्रोण कलशों में निचोड़ते हैं ॥ प्र० ५(२) सु० ३।३

(१२६९) जब भरणशील व बहुत ले चलने वाले याज्ञिक लोग देवताओं के लिये देते=यज्ञ करते हैं, तब यह सोम ढका हुआ शुद्धि वाले मार्ग से अभिषव स्थान से आहवनीय स्थान को दोनों के बीच में विशेष सावधानी से ले जाया जाता है ॥ प्र० ५(२) सु० ३।४

(१२७०) वेगवाला यह सोम रसों का पति होता हुआ स्वर्ण के सी चमकीली उज्ज्वल सूर्य किरणों से ले जाया जाता है, या जाता है ॥ प्र० ५(२) सु० ३।५

(१२७१) अब सोम को बलवान होने से वृषभ के अलंकार में वर्णन करते हैं, बलों को धारण किये हुए यह सोम यूथ में के वृष के समान तीक्ष्णशृंगों को कंपाता है अर्थात् बैल के समान उन्नत अंशुओं को फैलाता है ॥ प्र० ५(२) सु० ३।६

(१२७२) दुष्ट प्राणियों को पीड़ा देता हुआ यह सोम पर्व से अतिक्रमण करके जाता हुआ नाशनीय राक्षसों में पहुंचता है ॥ प्र० ५(२) सु० ३।७

(१२७३) हरे उस "उत्तम आयुध वाले" अत्यन्त हृष्टि-पुष्टिकारक इसी सोम को दस अंगुलियां पहुंचाने को प्रेरती हैं। राक्षसों के हनन का सामर्थ्य दिखाने को 'उत्तम आयुध वाले' यह विशेषण अलङ्कारोक्ति है और आयुध शब्द से यज्ञपात्रों का भी ग्रहण है ॥ प्र० ५(२) सु० ३।८

(१२७४) यह वह अभिषुत सोम वीर्यवान और वीर्यवर्धक है, रपटने

के स्वभाव वाला है, सो बहुत बल को प्राप्त होता हुआ भेड़ के बालों से बने दशापवित्र से द्रोण कलश में रक्खा जाता है ।। प्र० ५(२) सु० ४।१

(१२७५) क्रिया शिक्षा धर्मान्वित उत्तीर्ण विद्वान=ऋत्विज की अंगुलियों से अभिषव पाषाणों से, इस हरे सोम को प्रेरित करती है ।। प्र० ५(२) सु० ४।२

(१२७६) यह वह सोम है जो व्यभिचारिणी स्त्री से समागम करते हुए व्यभिचारी पुरुष के समान "गुप्तरूप" से मनुष्य सम्बन्धिनी प्रजाओं में श्येन पक्षी-सा=बलवान प्राप्त हुआ स्थित है ।। प्र० ५(२) सु० ४।३

(१२७७) यह वह हृष्टि-पुष्टि कारक सोमरस है जो, गीला दशापवित्र को लिथड़ कर घुस जाता है और जो द्युलोक का पुत्रवत् आह्लादिक होकर दृष्टि प्रसाद करता है ।। प्र० ५ (२) सु० ४।४

(१२७८) यह वह सोम है, जो पीने के लिए अभिषुत किया हुआ हरा नीला धारण करने वाला और धैर्य का उत्पादक प्यारे स्थान=द्रोणकलश=एक प्रकार के पात्र में शब्द करता हुआ उफान मारता हुआ दशाउन भर जाता है ।। प्र० ५ (२) सु० ४।५

(१२७९) इस पूर्वोक्त सोम को अध्वर्यु ऋत्विज की दश कर्म चाहती हुई अंगुलियें शोधती हैं; जिन अंगुलियों से हृष्टि-पुष्टि के लिये शोधा जाता है ।। प्र० ५ (२) सु० ४।६

(१२८०) यह बलवान सोम कर्म के नेता लोगों-ऋत्विजों से धारण किया हुआ सबको मिलने वाला मन का पालन-पोषण करने वाला है, सो यह ऊनी दशापवित्र को विविध प्रकार से जाता है । चन्द्रमा की उत्पत्ति वेद में समष्टि मन से वर्णन की है और सोमरस का चन्द्रमा से बहुत साधर्म्य है, इसलिए यहाँ व्यष्टिगत मन का भी सोमरस को पोषक बताना युक्त है ।। प्र० ५ (२) सु० ५।१

(१२८१) यह सोम सब स्थानों में प्रवेश करता हुआ वायु आदि देवों के लिए अभिषुत हुआ दशापवित्र पर टपकता है ।। प्र० ५ (२) सु० ५।२

(१२८२) अमृतरूप देवताओं का सर्वोत्तम भोजन रोगादि शत्रुओं का घातक यह दिव्यगुणयुक्त सोम स्थान में शुभ करता है ।। प्र० ५ (२) सु० ५।३

(१२८३) यह सोम वीर्यवान वीर्यप्रद और वृष्टिकर्ता है, शब्द करता हुआ दसों अंगुलियों से निचोड़ा हुआ वृक्षों से बने काष्ठ मय द्रोणकलश नामक यज्ञ पात्रों में अभितः जाता है ।। प्र० ५ (२) सु० ५।४

(१२८४) यह गाढ़ा हर्षकारक सोम पवित्र द्युलोक में सूर्य को प्रकाशित करता है ।। प्र० ५ (२) सु० ५।५

(१२८५) अनिवार्यवीर्य, वाणी का सुधारक पालक-पोषक, सबका आच्छादन करता हुआ, यह सोमप्रकाश वाले सूर्य से पृथ्वी पर वर्षा के साथ छोड़ा जाता है ।। प्र० ५ (२) सु० ५।६

(१२८६) प्रसारित कुटिलत्वयुक्त दशापवित्र पर शोध्यमान यह सोम रोगादि शत्रुओं को बाधित करता हुआ उनका नाश करता है ।। प्र० ५ (२) सु० ६।१

(१२८७) बलकारी और सुख का जीतने वाला यह सोम इन्द्र नामक वायु के लिये अभिषुत करके दशापवित्र पर टपकाया जाता है ।। प्र० ५ (२) सु० ६।२

(१२८८) द्युलोक वा सुख का मस्तक तुल्य वृष्टि हेतु विश्व का लाभ यह सोम अभिषुत किया हुआ वसतीवरीसंज्ञक जलों में कर्म के नेता ऋत्विजों द्वारा संस्कृत किया जाता है ।। प्र० ५ (२) सु० ६।३

(१२८९) सूर्य किरणों को चाहने वाला और तेज चाहने वाला, प्रकाश करने वाला, सदा जीतने वाला और स्वयं अन्यों से न हारने वाला यह सोम शब्द करता है ।। प्र० ५ (२) सु० ६।४

(१२९०) बलवान वृष्टि कर्ता हरा शुद्ध करता हुआ यह सोम आकाश में वायु विशेष को प्राप्त होता है ।। प्र० ५ (२) सु० ६।५

(१२९१) बलवान नष्ट न करने योग्य देवों का उत्तम भोजन पाप का नाशक यह सोम शोध्यमान आकाश को जाता है ।। प्र० ५ (२) सु० ६।६

(१२६२) वीर्यवान देवकाम वह सोम देवताओं के पानार्थ अभिषुत किया हुआ राक्षसों को विशेष कर नष्ट करता हुआ पवित्र अन्तरिक्ष में जाता है ।। प्र० ५ (२) सु० ७।१

(१२६३) धारक ओज का हितकारी हरा वह सोम शब्द करता हुआ पवित्र अन्तरिक्ष वा सूर्य किरण समूह में स्थान को लक्ष्य करके जाता है ।। प्र० ५ (२) सु० ७।२

(१२६४) द्युलोक का रोचक बलवान राक्षसहन्ता वह सोम ऊनी दशापवित्र पर विविध प्रकार से जाता है ।। प्र० ५ (२) सु० ७।३

(१२६५) विद्या, शिक्षा और धर्म इन तीन पदार्थों से युक्त विद्वान ऋत्विज के उच्च यज्ञ में शोध्यमान वह सोम जलों के साथ सूर्य को प्रकाशित करता है ।। प्र० ५ (२) सु० ७।४

(१२६६) वह सोम रोगादि शत्रुघातक वृष्ण वीर्यवान वीर्य वर्धक वर्षा करने वाला अभिषव किया हुआ यजमान को धनादि लाभ कराने वाला नष्ट करने योग्य नहीं है, सो संग्राम के घोड़े के समान वेग से जाता है ।। प्र० ५ (२) सु० ७।५

(१२६७) वह सोम वायु विशेष को संस्कृत करता हुआ द्योतमान और गीला किया हुआ मेधावी अध्वर्यु से प्रेरित हुआ द्रोणकलशों के प्रति वेग से जाता है ।। प्र० ५ (२) सु० ७।६

(१२६८) पवमान सोम के प्रकरण को समाप्त करते हुए इस प्रकरण के अध्ययन का फल कहते है—जो मनुष्य ऋषियों के संग्रह किये हुए वेद के सार रूप पवमान सोम देवता सम्बन्धि सूक्त समूह को साङ्गोपाङ्ग, पढ़ता है वह मनुष्य वायु से स्वादु किये हुए और पवित्र किये हुए सब भोज्य पदार्थों को खाता है ।। प्र० ५ (२) सु० ८।१

(१२६९) जो पवमान देवता की ऋचों के ऋषियों द्वारा संगृहीत वेद के सार रूप सूक्त समुदाय का पाठ करता है, वेदवाणीरूपिणी देवता उसके लिये दुग्ध, घृत और मीठे जल भरपूर देती है ।। प्र० ५(२) सु० ८।२

(१३००) सोम प्रकरण की ऋचायें कल्याणी है, वे सुन्दर फल की देने वाली है, वे जल की वर्षाने वाली हैं, ज्ञानी ऋषियों ने यह वेद का सार इकट्ठा किया है, सो यह ब्राह्मणों में अमर धन रखा हुआ है ।। प्र० ५(२) सु० ८।३

(१३०१) दिव्यगुण युक्त पवमान देवता की ऋचायें हमारे इस लोक और परलोक को धारित करें तथा विद्वानों से संगृहीत की हुई वे ऋचायें हमारे कामों को समृद्ध करें ।। प्र० ५(२) सु० ८ ४

(१३०२) वायु आदि देवता जिस सहस्र किरण सूर्य से सर्वदा आप को शुद्ध करते हैं, उस सूर्य से पवमान देवता की ऋचायें हमको शुद्ध करें ।। प्र० ५(२) सु० ८।५

(१३०३) पवमान सम्बन्धिनी ऋचायें अविनाश को प्राप्त कराने वाली हैं । उनके अध्ययन से मनुष्य आनन्द को प्राप्त होता है, और पवित्र शुद्ध निर्मल भोज्यों का भोजन करता है तथा अमरभाव को प्राप्त हो जाता है ।। प्र० ५(२) सु० ८।६

(१३०४) जो अग्नि अपने गृह आहवनीय वेदि में सुलगाया हुआ प्रकाशता है, उस अति युवा अर्थात् प्रचण्ड विस्तृत द्यावापृथ्वी के बीच अन्तरिक्ष में विचित्र ज्वाला वाले, भली प्रकार से होम किये हुए सब ओर को फैलते हुए अग्नि को बहुत अन्न—हवि के साथ हम समीप जावें ।। प्र० ५(२) सु० ९।१

(१३०५) वह अग्नि जिसके प्रकाश से लोक में घटपटादि पदार्थ दीखते और जान पड़ते हैं वा जिससे समस्त रत्नादि उत्पन्न हुए हैं, अपने महत्व से सब रोगादि दुःखों को अभिभूत तिरस्कृत करता हुआ यज्ञशाला गृह में सर्वतः स्तुति किया जाता है, वह अग्नि स्तुति—अग्नि के वेदोक्त गुण कीर्तन रूप स्तोत्र पढ़ते हुए इन लोगों को तथा यज्ञ वाले हम लोगों को हमारे निन्दनीय पाप से बचावें—यह चाहते हैं ।। प्र० ५(२) सु० ९।२

(१३०६) अग्ने ! तू ही रोगादि दुःखों का निवारक और सुखप्रापक मित्र है । अत्यन्त वसु सूर्य किरणें मेधातत्वयुक्त अपने तेजों से तुझ अग्नि को बढ़ाते हैं, तुझ में विद्यमान तैजस सुवर्णादि रत्नधन भली प्रकार सविभाग वाले हों । तुम अग्नि के अन्तर्गत वरुण मित्र आदि देवो ! सुखों से हमारी सर्वदा रक्षा करो ।। प्र० ५(२) सु० ९।३

(१३०७) वेदपाठी वक्ता के वैदिक स्तोत्रों के साथ बल से अधिक वर्षायुक्त बादल सा वायु विशेष बहता है ॥ प्र० ५(२) सु० १०।१

(१३०८) बुद्धिमान स्तुतिकर्ता लोग जबकि वायु विशेष को वा परमात्मा को यज्ञ का साधक स्तुत करते हैं, तब यज्ञ पात्रों को निष्प्रयोजन बनाते हैं ॥ प्र० ५(२) सु० १०।२

(१३०९) यज्ञ की प्रजा रूप वायु को जब कि आकाश में पूर्ण करती हुई सूर्य किरणें वा होमकुण्डस्थ अग्नि ज्वालायें बढ़ती हैं, तब ऋत्विज ब्राह्मण लोग यज्ञ के पहुँचाने वाले मन्त्र पाठ के साथ यजन आरम्भ करते हैं। जिन मन्त्रों द्वारा मनुष्य को यज्ञ का प्रकार और उसका फल ज्ञात हुआ, वह मन्त्र यज्ञ के पहुँचाने वाले समझने चाहियें॥ प्र० ५(२) सु० १०।३

(१३१०) अभिषुवमान हरित सर्वत्र गमनशील तेज वाले सोम की आह्लादकरी धारायें अग्नि में छोड़ी जाती हैं॥ प्र० ५(२) सु० ११।१

(१३११-१३१२) सोम ! प्रशंसा करने वाले यजमान के लिये सुन्दर वीर्य को देता हुआ, अत्यन्त बलदायक, अभिषुवमान, यज्ञ में रथ से ले जाया जाता है। इसलिये अतिरथी, अति प्रकाशमान, हरितवर्ण की चमकवाला, वायु भेद जिसके सहायक हैं, उज्ज्वल किरणों के साथ विविध प्रकार से व्यापे॥ प्र० ५(२) सु० ११।२,३

(१३१३) व्याख्या नं० ५१२ में हो चुकी है॥ प्र० ५(२) सु० १२।१

(१३१४) सोम ! अहिंसित और अति सुगन्धयुक्त निश्चय शोध्यमान, दशापवित्रों से टपक, अभिषुत होने पर अन्न के साथ इन्द्रियों से मिलाते हुए, हम उत्तम रसों में वर्त्तमान तुझ हर्षकारक का सेवन करते हैं। अर्थात् सोम की हानि न करके सुरक्षित करना, अभिषुत करना, दशापवित्र नामक ऊर्णामय पवित्र पर से टपकाना और अन्न के साथ भोजन में परिणत करके उसमें बल उत्पन्न करना हर्ष का उत्पादक है॥ प्र० ५(२) सु० १२।२

(१३१५) अभिषव किया जाता हुआ देवों का हृष्टिकारक यज्ञ का स्वरूप गीला सोम आँखों का हितकारी है, सो दृष्टिप्रसादार्थ चारों ओर से फैलता है॥ प्र० ५(२) सु० १२।३

(१३१६) व्याख्या नं० ५६२ में हो चुकी है॥ प्र० ५(२)सु० १३।१

(१३१७) अब यह बताया जाता है कि सोम का होम करने पर पुनः सोम की उत्पत्ति किसके साथ, किस स्थान में, किस से, किस रूप में होती है। यज्ञ बीत चुकने पर बड़े पत्तों वाले सोम का मेघ जनक होता है और भूमि के नाभि=मध्य पर्वतों में निवास को [सोम] धारण करता है, तथा भगिनी के तुल्य जल भूमियों को अभिव्याप्त करके उच्चभाव से सब ओर जाते हैं और तब सोम पत्थरों के साथ वास करता है अर्थात् यज्ञ से मेघ बर्षता है और वह जल तथा सोम को पर्वतों में वर्षाकर वहाँ सोम औषधिराज को उपजाता है, क्योंकि सोम और अन्न-जलों को उत्पन्न करने वाला एक मेघ ही है, इसलिये सोम और जल का मेघ पिता कहा गया और सोम की बहिन=भगिनि अप कही गई। इस प्रकार सोम पर्वत देशों में वर्षाऋतु में पत्ते वाली बूटी के रूप में पत्थरों में रहता है। ढूढ़िये तो पाइयेगा॥ प्र० ५(२) सु० १३।२

(१३१८) हे सोम मेधायुक्त तू हमारी यज्ञ करने की इच्छा से आदरणीय दशापवित्र को सर्वतः प्राप्त होता है। जैसे स्नानादि से अलंकृत अश्व संग्राम को सामना करके जाता है, तद्वत तू भी शोधित और अभिषुत होकर रोगादि शत्रु विनाशार्थ पान किया हुआ और होम किया हुआ सब ओर जाता है, तथा दुखों वा पापों को विनष्ट करता हुआ हमको सुखी कर। सो तू उदकों में बसता हुआ दशापवित्र पर उतरता है॥ प्र० ५(२) सु० १३।३

(१३१९) व्याख्या नं० २६७ में हो चुकी है॥ प्र० ५(२) सु० १४।१

(१३२०) हे मनुष्य ! तू दोषरहित दानी धनदाता परमात्मा की उपासना करके स्तुति कर, क्योंकि परमेश्वर के दान कल्याणमय महैश्वर्यकारक हैं, जो परमेश्वर दान के लिए सेवक भक्त के मन को प्रेरित करता हुआ इस की कामना को नहीं मारता=पूर्ण करता है॥ प्र० ५(२) सु०१४।२

(१३२१) व्याख्या नं० २७४ में हो चुकी है॥ प्र० ५(२) सु० १५।१

(१३२२) हे धनपते ! आप ही बड़े धन के और ब्रह्माण्ड के विशेष से धारण करने वाले हैं। हे वाणी से प्रशंसनीय ! धर्मैश्वर्यवन् परमेश्वर ! उस आपको हम सोम अभिषव कर चुकने वाले स्तुत्य करते हैं॥ प्र० ५(२) सु० १५।२

(१३२३) सोम वा परमेश्वर आह्लादकारक और यज्ञ वा ज्ञान यज्ञ में बल प्रदायक होने से अति बलवान धारा वा प्रेम भक्ति की धारा चाहने वाला है सोम तू शुद्धि कर ॥ प्र० ५(२) सु १६।१

(१३२४) हे सोम वा परमेश्वर ! तू अभिषुत वा हृदय कमल में ध्यान किया हुआ अभिषुत करने वालों वा ध्यान करने वालों को हृष्टि वा आनन्द का दाता धारक सबका जेता अन्यों से अहिंसित प्रकाशमान है ॥ प्र० ५(२) सु० १६।२

(१३२५) हे परमेश्वर ! सोम अभिषव के पत्थरों (सिल बट्टों) से अभिषुत किया हुआ सोम शब्दायमान है। आप कृपा करके हमें प्राप्त हो और दीप्तियुक्त बल को इस सोम में भरें ॥ प्र० ५(२) सु० १६।३

(१३२६) व्याख्या नं० ५७१ में हो चुकी है ॥ प्र० ५(२) सु० १७।१

(१३२७) जल के निकालने वाले तेरे रस हृष्ट पुष्टि के उत्पादनार्थ वर्षक वायु भेद को बढ़ाते हैं। तब हे सोम ! आकाश के वायु आदि देव जल रूप तुझ को अमर होने के लिए अपने में समावेशित करते हैं ॥ प्र० ५(२) सु० १७।२

(१३२८) अभिषुत किये हुए सोम पावन, द्यौलोक की वर्षा की ओर झुकाने वाले, जलों को पृथ्वी की ओर गिराने वाले, सुख प्रापक होते हुए हमारे लिए धन आदि ऐश्वर्य को प्राप्त करावें ॥ प्र० ५(२) सु० १७।३

(१३२९) व्याख्या नं० ५५२में हो चुकी है ॥ प्र० ५(२) सु० १८।१

(१३३०) पाँच सखा ऋत्विज लोग जिस सिल-बट्टों से अभिषुत, अपनी कीर्त्ति वाले, इन्द्र के प्यारे कमनीय सोम को दो बार वसतीवरी नामक जलों में डुबोकर रखते हैं उसको लहरें शोधती हैं ॥ प्र० ५(२) सु० १८।२

(१३३१) औषधिराज ! यज्ञ आसन पर बैठने वाले शास्त्र धर्मयुक्त यज्ञ करने योग्य दक्षिणा वाले दुष्ट शत्रु संहारकारी ऐश्वर्यवान मनुष्य के लिये पीने को और यज्ञ करने को अभिषुत किया जाता है ॥ प्र० ५(२) सु० १८।३

(१३३२) व्याख्या नं० ४३० में हो चुकी है ॥ प्र० ५(२) सु० १९।१

(१३३३) ये अभिषुत करने वाले ऋत्विज लोग सोम रस को हर्ष प्राप्ति के लिये और बहुत अन्न के लिये अभिषुत करते हैं ॥ प्र० ५(२) सु० १९।२

(१३३४) नये उत्पन्न होते हुए हरे गीले सोम को दशापवित्र पर शोधते हैं ॥ प्र० ५ (२) सु० १९।३

(१३३५) व्याख्या नं० ४२७ में हो चुकी है ॥ प्र० ५ (२) सु० २०।१

(१३३६) जो सोम ऐश्वर्यवान पुरुष का हृदयदायक है, उस ही सोम को हम याज्ञिकों को प्रशंसोक्तियें भले प्रकार बढ़ावें। दृष्टान्त-जैसे प्यारे पुत्र को बच्चों वाली उनकी मातायें बढ़ाती हैं, तद्वत ॥ प्र० ५ (२) सु० २०।२

(१३३७) प्रशंसनीय सोम हमारे गौ आदि पशुओं के लिए जिससे सुख हो उस प्रकार वृद्धि करे, और बहुत-सी अन्न आदि भोजन सम्पदा को पूर्ण करे, तथा मेघ मण्डल को बढ़ावे ॥ प्र० ५ (१) सु० २०।३

(१३३८) व्याख्या नं० १३३ में हो चुकी है ॥ प्र० ५ (२) सु० २१।१

(१३३९) जिन यजमानों का इन्द्र मित्र है, इनका इन्धन बहुत ही है, स्तोत्र भी बहुत है, तथा बिजली वा वज्र भी विस्तीर्ण है ॥ प्र० ५ (२) सु० २१।२

(१३४०) जवान राजा इन्द्र जिनका अनुकूलवर्ती सहायक है, उनका वह वीर राजा इन्द्र अपनी सेनाओं सहित अवश्य युद्ध करता और योद्धाओं से युक्त शत्रु को नमाता है ॥ प्र० ५ (२) सु० २१।३

(१३४१) व्याख्या नं० ३८६ में हो चुकी है ॥ प्र० ५ (२) सु० २२।१

(१३४२) हे प्रिय परमात्मन ! बहुत मनुष्यों में से जो कोई ही भक्त धर्मात्मा यजमान सोमयाजी होकर आपकी परिचर्या उपासना करता है वह परमैश्वर्य्यवान हो जाता, और भारी बल को प्राप्त होता है ॥ प्र० ५ (२) सु० २२।२

(१३४३) हे प्रिय परमेश्वर ! आप हमारी प्रार्थनाओं को कब अनुकूलता से सुनोगे ? और यज्ञ के विरोधी मनुष्य को पाँव से जैसे जो लकड़ी मल कर पृथ्वी पर छत्राकार फूल आती है, उसको नष्ट कर देते हैं, ऐसे

नष्ट करेंगे। अर्थात् कृपया शीघ्र हमारी प्रार्थना सुनिये ॥ प्र० ५ (२) सू० २२।३

(१३४४) व्याख्या नं० ३४२ में हो चुकी है ॥ प्र० ५ (२) सू० २३।१

(१३४५) जो कि यज्ञ करने वाला मनुष्य पर्वत प्रदेश से देशान्तर को सोमवल्ली और समिध् आदि लाने के लिए चढ़ता है, और बड़े यज्ञ कार्य को अनुष्ठित करता है, सो वह कामना पूर्ण करने वाला वरदायक परमेश्वर जानता है और वायु आदि देवगण से इस यजमान के इष्ट को पूरा कराता है ॥ प्र० ५ (२) सू० २३।२

(१३४६) हे परमेश्वर ! हमारी सोम वाज्जियों की प्रार्थना रूप वाणियों का कृपया श्रवण कीजिये, और केश के तन्तु समान प्रतीत होने वाले, हरण करने वाले, वर्षा करने वाले रस्सी के समान पुरने वाले सीधे और तिरछे दो प्रकार के सूर्य किरणों को उपयोग में लाइये ॥ प्र० ५ (२) सू० २३।३

ग्यारवां अध्याय

षष्ठ : प्रपाठक

(१३४७) शोधक, होमकर्ता, अग्ने ! तू हमारे मध्य में यज्ञ करते हुए यजमान के लिये वायु आदि देवों का देवदूत कर्म से आह्वान करता है और यजन करता है ॥ प्र० ६ (१) सू० १।१

(१३४८) अग्नि के प्रकाश से ज्ञान बढ़ने के कारण, हे मेधाविन् ! जलों से उत्पन्न होने वाला तू आज हमारे माधुर्ययुक्त हव्य को रक्षा के लिए वायु आदि देवों के समीप पहुँचा दे ॥ प्र० ६ (१) सू० १।२

(१३४९) मैं यज्ञ कर्त्ता इस यज्ञ में इस वेदी के बीच में हितकारक द्रव्यों को हव्य बनाने वाले इसी से माधुर्यरस का स्वाद लेने वाली जिह्वा वाले अग्नि की स्तुति—प्रशंसा करता हूँ ॥ प्र० ६ (१) सू० १।३

(१३५०) रे अग्ने ! प्रशंसा किया हुआ मन्त्र से वा यजमानादि से स्थापित किया हुआ तू देवों का आह्वाता है। अति सुख-दायक रमणीय मार्ग में वायु आदि देवों को ला ॥ प्र० ६ (१) सू० १।४

(१३५१) जो कुछ सूर्य उदय होने पर (प्रातः काल) निर्दोष मित्र, अर्यमा, सविता, भग नामक आकाशस्थ वायुभेद देवविशेष उत्पन्न करे, वह आज हमें प्राप्त हो ॥ प्र० ६ (१) सू० २।१

(१३५२) वह देव हम को आलस्यादि पाप से पार करते हैं। उन के साथ वह निवास उस प्रहर में (वितर्क में) अत्यन्त सुरक्षक होवे ॥ प्र० ६ (१) सू० २।२

(१३५३) और जो पूर्वोक्त मित्र आदि देव स्वयं प्रकाशमान हैं और उन की माता (प्रकृति), ये सब रक्षित बड़े शुभ कर्मानुष्ठान के राजा समर्थ है। अर्थात् इन मित्रादि के ही सामर्थ्य से मनुष्य सब शुभ कर्मों के करने में कृतकार्य होते हैं ॥ प्र० ६ (१) सू० २।३

(१३५४) व्याख्या नं० (१६४) में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (१) सू० ३।१

(१३५५) हे परमेश्वर ! आप बड़े हैं, कोई भी आप के बराबर नहीं है, सो आप यज्ञार्थ धन न लगाने वाले लोभियों को व्याप्ति रूप ताप से पीड़ित कीजिये ॥ (दण्ड दीजिये) ॥ प्र० ६ (१) सू० ३।२

(१३५६) हे परमेश्वर ! आप अभिषुत सोमों के और आप ही अनभिषुत सोमों के ईश्वर हैं। आप प्राणिमात्र के राजा हैं॥ प्र० ६ (१) सू० ३।३

(१३५७) सच्चे मेधा तत्वों का मेधावी सोम निन्द्रा तन्द्रा आलस्यादि का निवारक चेतन करने वाला होने से जागरण-शील शोध्यमान यज्ञपात्र चमसों में सब ओर रखा जा कर रहता है, जिस सोम को सपत्नीक नितरां कामना करने वाले, यज्ञ ले चलने वाले नेता, शोभन हाथों वाले अध्वर्यु लोग संस्कृत करते (सुधारते) हैं ॥ प्र० ६ (१) सू० ४।१

(१३५८) वह सोम शोध्यमान सूर्यकिरणों में रखा हुआ दोनों द्यावा

पृथ्वी को आपूरित कर देता है। तब वह सोम फैलता है। विद्यमान जिस सोम की प्यारी और प्रीतिदायिनी धारायें अवश्य रक्षार्थ हैं, वह सोम जैसे काम करने वालों को धन देते हैं, तद्वत् यज्ञअनुष्ठानी को धान्यादि उत्पन्न करके दे। प्र० ६ (१) सु० ४।२

(१३५९) अभिषव किया हुआ और फिर दशापवित्र से शोधा हुआ और अनन्तर होमा हुआ सोम सूर्यकिरण मण्डल और मेघमण्डल में व्याप कर आप बढ़ता और अन्य प्राणादि वायु भेद इत्यादि दीप्तों को बढ़ाता, और वृष्टि आदि सर्वसम्पदों को बढ़ा कर सब जगत का उपकारक होता है, जिस के द्वारा सब की रक्षा होती है। इसलिये मनुष्यों को चाहिए कि पितृ परम्परा से जिन्हें सोमादि पदार्थों का ज्ञान है उन विद्वान लोगों द्वारा सोमयागादि का अनुष्ठान कराया करें॥ प्र० ६ (१) सु० ४।३

(१३६०) व्याख्या नं० २४२ में है॥ प्र० ६ (१) सु० ५।१

(१३६१) सूर्यादि लोक समूह ब्रह्माण्डकटाहों को अपनी-अपनी मर्यादा में खींचने वाले, वृषभ के समान मेघमण्डलादि में वृष्ट्यादि द्वारा सींचने वाले, शीघ्र उत्पत्ति स्थिति प्रलय को अनायास सहज में कर देने वाले, पृथ्वी के समान मनुष्यादि प्राणिकृत चेष्टाओं के सहनशील, राग-द्वेष रहित, संभजनीय निग्रह और अनुग्रह दोनों के कर्त्ता, बड़े भारी दानी, दोनों लोकों में रक्षा करने वाले परमात्मा की स्तुति करो॥ प्र० ६ (१) सु० ५।२

(१३६२) व्याख्या नं० २५१ में चुकी है॥ प्र० ६ (१) सु० ६।१

(१३६३) मेधावियों के समान और फूंकने वाली सूर्य की किरणों के समान तेजस्वी जिन को मेधा प्यारी है, वे मनुष्य पूजते हुए स्तोत्रों से व्यापक ध्यान किए हुए परमेश्वर को ही स्तुत करें और प्राप्त हों। "इत्" शब्दार्थ यह है कि परमेश्वर मान कर किसी अन्य की पूजा न करें॥ प्र० ६ (१) सु० ६।२

(१३६४) व्याख्या नं० ४२८ में है॥ प्र० ६ (१) सु० ७।१

(१३६५) सोम! सूर्यकिरण मण्डल के धारक, गगन मण्डल में बल से वेग करता हुआ तू किरणों के वेग युक्त दोनों द्यावापृथ्वी के मध्य में ही जल को उत्पन्न करता है॥ प्र० ६ (१) सु० ७।२

(१३६६) व्याख्या नं० ४३२ में है॥ प्र० ६ (१) सु० ७।३

(१३६७) व्याख्या नं० ४२७ में है॥ प्र० ६ (१) सु० ८।१

(१३६८) मेघ जल के लिए और बड़े उत्तम निवास के लिए वह दिव्य पान-योग्य वीर्यदायक सोम निश्चय आकाश को जाता है॥ प्र० ६ (१) सु० ८।२

(१३६९) सोम! वृष्टिकारक वायुविशेष वा राजा यज्ञ के लिए और बल के लिये तेरे रस को पीवे, और सब वायु आदि वा विद्वान भी पीवें॥ प्र० ६ (१) सु० ८।३

(१३७०) अग्नि में छोड़े जाते हुए, अत्यन्त अभिषुत, शीघ्रगामी, हर्ष-कारक सोम सूर्य की किरणों के समान दौड़ने वाले एक साथ सब ओर दौड़ जाते हैं। इन्द्र नामक वायु विशेष से अतिरिक्त कोई किसी स्थान को नहीं शुद्ध करता॥ प्र० ६ (१) सु० ९।१

(१३७१) अब सोम का मेधा (बुद्धि) जनकत्व निरूपित करते हैं—अभिषव करने वालों की सन्तान के तुल्य रपटने वाला सोम प्रथम दशापवित्र पर रपटता है, फिर मिठाई के साथ मिलाया जाता है। और मिठाई से मिला हुआ मुख के भीतर पिया जाता है, तब हर्ष की प्रेरक बुद्धि उस से प्रेरित होती है॥ प्र० ६ (१) सु० ९।२

(१३७२) सींचने वाला सोम शब्द करता है। सोम की धारायें द्रोण-कलश में जाती हैं। दिव्य धारायें सोम के स्वच्छ सोमघट रूप स्थान को भर देती हैं। सोम श्वेतवर्ण भेड़ के रोमजनित ऊनी दशापवित्र को छान कर चला जाता है। स्वच्छ वस्त्र के तुल्य दीप्यमान द्रोणकलश को भर देता है॥ प्र० ६ (१) सु० ९।३

(१३७३) व्याख्या नं० ७२ में हो चुकी है॥ प्र० ६ (१) सु० १०।१

(१३७४) जो बलिष्ठ अग्नि घर-घर में नित्य होवे, उस भली प्रकार दर्शन के हेतु अग्नि का सब से रक्षा के लिए बसने वाले गृहस्थ लोग घर के अन्तर्गत अग्न्यागार में आधान करें॥ प्र० ६ (१) सु० १०।२

(१३७५) अत्यन्त युवा अग्ने, अत्यन्त प्रदीप्त तू निरन्तर प्रदीप्त लोहे की कील के समान ज्वाला से हमारे आगे यज्ञवेदी में धधक, क्योंकि तुझ को निरन्तर वा बहुत हव्य अन्न प्राप्त हो रहे हैं ॥ प्र० ६ (१) १०।३

(१३७६) व्याख्या नं० ६३० में है ॥ प्र० ६(१) सू० ११।१

(१३७७) व्याख्या नं० ६३१ में है ॥ प्र० ६(१) सू० ११।२

(१३७८) व्याख्या नं० ६३२ में है ॥ प्र० ६(१) सू० ११।३

बारहवाँ अध्याय

(१३७९) जो हिंसा से रहित है, उस यज्ञ के समीप उत्तम प्रकार से जाते हुए, और यज्ञ में पहुँच कर यज्ञारम्भ करते हुए हम दूर और समीपवर्तियों को सुनाई करते हुए, ज्ञान स्वरूप परमात्मा के लिये स्तोत्र को उच्चारित करें ॥ प्र० ६ (२) सू० १।१

(१३८०) जो सनातन परमेश्वर वा अग्नि मरती, जाती, प्रजाओं में दानशील यज्ञ करने वाले मनुष्य के लिए प्राण को सींचता है, उस अग्नि के लिये मन्त्रोच्चारण करें ॥ प्र० ६ (२) सू० १।२

(१३८१) वह सुखदायक परमेश्वर वा अग्नि हमारे धन को और मन्त्रिवर्ग को रक्षित करे और हमारी पाप से वा वायु आदि गत सूक्ष्म कृमि आदि रोगजनक जन्तु से रक्षा करे ॥ प्र० ६ (२) सू० १।३

(१३८२) पापहन्ता वा शत्रुहन्ता अग्नि उत्पन्न हुआ है, जो प्रत्येक संग्राम में विजयप्रद है। तर्कपूर्वक आग्नेय विद्या के ज्ञाता प्राणी उपदेश्य उपदेशक भाव से प्रचार करें ॥ प्र० ६ (२) सु १।४

(१३८३) व्याख्या नं० २५ में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (२) सू० २।१

(१३८४) अग्ने! तुम को अच्छे प्रकार प्राप्त हो, और अन्न हव्यों को लाने के लिए तथा सोम पीने के लिए वायु आदि देवों को सम्मुख बुलाओ ॥ प्र० ६ (२) सू० २।२

(१३८५) भरण करने वाले अग्ने! चमक जरारहित! निरन्तर प्रकाशमान तू दीप्तिमान अविच्छिन्न तेज से अन्यों को प्रकाशित कर ॥ प्र० ६ (२) सू० २।३

(१३८६) व्याख्या नं० ५५३ में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (२) सू० ३।१

(१३८७) रस स्वरूप सोम आच्छादक दशापवित्र पर सम्बद्ध होता हुआ और फिर द्रोणकलश में स्थित होने को सरकता है। इसमें ३ दृष्टान्त हैं :

(१) जैसे पुत्र द्यावापृथ्वी के समान माता-पिता की गोद में।

(२) जैसे कामी पुरुष कामिनी स्त्री की ओर।

(३) जैसे विवाह वाला पुरुष कन्या को प्राप्त होता है ॥ प्र० ६(२) सू० ३।२

(१३८८) जो हरा सोम दशापवित्र पर सम्बद्ध होता है, वही रूपान्तर से बल का साधन हो कर बली सोम द्युलोक पृथ्वालोक को शोभ रहा है, जैसे विधाता ब्रह्माण्ड में आसीन है ॥ प्र० ६ (२) सू० ३।३

(१३८९) व्याख्या नं० ३६६ में है ॥ प्र० ६ (२) सू० ४।१

(१३९०) हे इन्द्र! राजन! केवल धनी जो यज्ञादि परोपकारों में धन नहीं लगाता, उसको आप मित्रता के लिए नहीं रखते, क्योंकि मद्यादि व्यसनों से बढ़े हुए प्रमत्त नास्तिक वे धनी मानी लोग आप की हिंसा करते हैं। किन्तु स्तुति करने वाले राजभक्त प्रजाजन को जब आप बुलाते हैं, तब उस का धनादि से सत्कार करते हैं, तब पिता के समान उससे स्तुत्य होते हैं ॥ प्र० ६ (२) सू० ४।२

(१३९१) व्याख्या नं० २४५ में हो चुकी है ॥ प्र० ६(२) सू० ५।१

(१३९२) इन्द्र! सूर्य! मयूर की पूँछ के समान अनेक वर्ण वाले भी एक श्वेतवर्ण की प्रतीति से युक्त तिरछे सीधे भेद से दो प्रकार के किरण

समूह, प्रशंसनीय मधुर अन्न हव्य सोम के पानार्थ तेजोमय रमणीय स्वरूप में तुझ को सर्वतः ले चलते हैं ॥ प्र० ६ (२) सु० ५।२

(१३९३) हे वाणी से प्रशंसनीय ! प्रथम पीने वाले वायु के समान वर्तमान इस अभिषुत और शोधित रस वाले सोम का यह आनन्द हर्ष के लिए उत्तम है, अतः शोधण कर, जिससे तेरी किरणों से छुए हुए इस सोम रस से संयुक्त सब लोग उनके गुणों से संयुक्त हो जावें ॥ प्र० ६ (२) सु० ५।३

(१३९४) व्याख्या नं० ५८७ में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (२) सु० ६।१

(१३९५) बहुत धारा वाले दर्शों से वृष्टिकर्त्ता जलों के दोग्धा प्यारे सोम को दिव्य जन्म के लिए अभिषुत करो । जो सोम जल से उत्पन्न हुआ वसतीवरी नामक जल से बढ़ता है और जो प्रकाशमान दिव्य द्रवीभूत जल रूप महान है ॥ प्र० ६ (२) सु० ६।२

(१३९६) व्याख्या नं० ४ में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (२) सु० ७।१

(१३९७) यहां पिता और माता शब्द से द्युलोक और पृथ्वी लोक का ग्रहण है । पृथ्वी के मध्य क्षण रहित वेदिस्थान में प्रकाशमान द्युलोक का हव्य पहुँचा कर पालन करने से पालक अग्नि यज्ञ की उत्तम वेदि नामक स्थान में स्थित हुआ वृत्रों का नाश करता है ॥ प्र० ६ (२) सु० ७।२

(१३९८) ज्ञानोत्पादक ! विशेष करके दृष्टि के सहायक अग्ने ! पुत्र-पौत्रादि सन्तान युक्त धन या अन्न प्राप्त करा, जो धन या अन्न आकाश में प्रकाशमान होवे ॥ प्र० ६ (२) सु० ७।३

(१३९९) व्याख्या नं० ५२६ में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (२) सु० ८।१

(१४००) भले संग्राम योग्य अश्वतुल्य तेजों को छोड़े हुए बड़े कान्तदर्शी विद्वान सूक्तों को पढ़ते हुए द्रष्टा आलस्य प्रमाद रहित पुरुष के समान शोध्यमान सोम यज्ञ में द्युलोक और पृथ्वी-लोक में प्रवेश करता है ॥ प्र० ६ (२) सु० ८।२

(१४०१) यशस्वियों में अतियशस्वी भूमि में उत्पन्न हुआ प्यारा सोम ऊँचे ऊनी दशापवित्र पर हमारे लिए शोधित किया जाता है, और वही शोध्यमान सोम अन्तरिक्ष में शब्द करता और मेघ गर्जन को उत्पन्न करता है । तू वही सोम सुखदायक पालनों से सर्वदा हम को पालता है ॥ प्र० ६ (२) सु० ८।३

(१४०२) व्याख्या नं० ३५० में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (२) सु० ९।१

(१४०३) हे परमेश्वर ! पवित्र करने वाले आप हम को प्राप्त हों । पावन आप निश्चित व्यवहार द्वारा प्राप्त धन को धारण करावें ! हे अमृत-स्वरूप ! पावन आप हम पर प्रसन्न हों ॥ प्र० ६ (२) सु० ९।२

(१४०४) हे परमेश्वर ! क्योंकि आप पवित्र हैं, इस कारण शुद्ध धन को हमारे लिए दीजिये । आप पवित्र हैं, सो दानी पुण्यात्मा पुरुष के लिए पवित्र मणि मुक्तादि रत्न दीजिए । आप शुद्ध हैं इससे दुष्ट अशुद्ध राक्षसों का नाश करते हैं । और शुद्ध आप शुद्ध अन्न को कर्म अनुसार देना चाहते हैं ॥ प्र० ६ (२) सु० ९।३

(१४०५) धन चाहने वाले हम मनुष्य सूर्यरूप से आकाश के छूने वाले दीप्तमान अग्नि के पुरुषार्थ साधक प्रशंसा के मन्त्रों को उच्चारित करते हैं ॥ प्र० ६ (२) सु० १०।१

(१४०६) वायु आदि देवों का बुलाने वाला या होमसाधक अग्नि मनुष्यों के लोकों में वास करता है जो कि हमारी वाणियों को सेवन करता है अर्थात हमारे अभीष्ट पूरे करता है, वह अग्नि द्युलोक की सृष्टि का यजन करे ॥ प्र० ६ (२) सु० १०।२

(१४०७) अग्ने ! तू सेवित देवों को बुलाने वाला या होम सम्पादक वरणीय सर्वतः फैलने वाला है, और सब यजमान तुझ अग्नि साधन से यज्ञ को विस्तृत करते हैं ॥ प्र० ६ (२) सु० १०।३

(१४०८) व्याख्या नं० ५२८ में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (२) सु० ११।१

(१४०९) शूरों का समूह बनाने वाला, सब को वीर करने वाला, सबको दबा सकने वाला, विजय कराने वाला, धनों का देने वाला, तीक्ष्ण

आयुध वाला, शीघ्रगामी बाणों के धनुष का धारक, संग्रामों में किसी को न सहने वाला, सेनाओं में शत्रुओं का तिरस्कृत करने वाला सोम अभिषुत होता है ॥ प्र० ६ (२) सू० ११।२

(१४१०) विस्तृत मार्ग वाला सोम, सोमयाजियों को दैवी विपत्ति आदि से अभय करता हुआ, द्युलोक और पृथ्वी लोक को सुखदायक संगत पवित्र करता है। तथा हम सोमयाजी मनुष्यों के लिए बड़े धन, जल, सुप्रभात, सूर्य, और किरणें देना चाहता हुआ शब्द करता है ॥ प्र० ६ (२) सू० ११।३

(१४११) व्याख्या नं० २४६ में हो चुकी ॥ प्र० ६ (२) सू० १२।१

(१४१२) हे परमात्मन ! आप सर्वज्ञ से ही निश्चय पुत्र जैसे पिता से दायभाग को मांगते हैं, वैसे हम लोग धर्मादि के साधन धन को मांगते हैं। हे परमेश्वर ! आप का यश वा अन्न बड़ा ही शरण है, आप के आनन्द हम को प्राप्त हों ॥ प्र० ६ (२) सू० १२।२

(१४१३) व्याख्या नं० ११२ में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (२) सू० १३।१

(१४१४) जलों को न गिरने देने वाली, शोभन, ऐश्वर्यदायक, भले प्रकार प्रकाशमान, पवित्र लपटों वाले अग्नि को अवश्य प्रशंसित करता हूँ, वह अग्नि अपान का प्राण वा और वही आकाश में वर्तमान जलों का सुख हमारे लिए देता है ॥ प्र० ६ (२) सू० १३।२

(१४१५) हे अग्ने ! संग्रामों में जिस मनुष्य को तू रक्षित करता है और जिस को प्राणों में तू प्राप्त होता वा रक्षा करता है, वह मनुष्य नित्य ठहरने वाले अन्नों को नियमित कर सकता है ॥ प्र० ६ (२) सू० १४।१

(१४१६) हे शत्रुओं के तिरस्कृत करने वाले अग्ने ! इस अग्नि का उपदेश जानने वाले, किसी भी पुरुष का आक्रमण करने वाला कोई नहीं, किन्तु इस का श्रवण करने योग्य कीर्तिमान बलविशेष है ॥ प्र० ६ (२) सू० १४।२

(१४१७) वह विश्व की दृष्टि का सहायक अग्नि प्राणों सहित अन्न वा बल को पार लगाने वाला हो, मेधावी ऋत्विजों से यज्ञ फल का दाता हो ॥ प्र० ६ (२) सू० १४।३

(१४१८) व्याख्या नं० ५३८ में है ॥ प्र० ६ (२) सू० १५।१

(१४१९) वायु आदि देवों को मानो चाहता हुआ सा वृष्टिकारक बहुतों से वरण किया हुआ सोम वसतीवरी नामक मातृ तुल्य जलों से भली प्रकार धारण किया जाता है। इसमें दृष्टान्त :—माताओं से बच्चा जैसे दुग्धादि दे कर धारण किया जाता है। तद्वत । द्रोणकलश में सत्कृत स्थान को संगत करता हुआ किरणों से मिलता है ॥ प्र० ६ (२) सू० १५।२

(१४२०) और गौ के बाल के समान सरस सोम औषधिआदि में प्रविष्ट हो कर आप्यायन करता है। बुद्धि सुधारने वाला सोम धारों से मिलता है तब किरणों द्युलोक और पृथ्वी लोक के नाना प्रदेशों में व्याप कर द्युलोक के मस्तक रूप सूर्य मण्डल को मेघ जल से ढक देती है। जैसे धुले उज्ज्वल वस्त्रों से आच्छन्न करते हैं, तद्वत ॥ प्र० ६ (२) सू० १५।३

(१४२१) व्याख्या नं० २३९ में है ॥ प्र० ६ (२) सू० १६।१

(१४२२) हे परमेश्वर ! तुम्हारी उत्तम मति जो वेदोपदेश रूप है, उस में हम बलवान और अस्त्रादि साधनवान होवें। हम को अभिमान के लिए मत मारो, किन्तु नम्र करके अपनी विचित्र चाहने योग्य रक्षाओं से हम को रक्षित करो, तथा हम को सुखों में निर्वाहित करो ॥ प्र० ६ (२) सू० १६।२

(१४२३) व्याख्या ५६० में है ॥ प्र० ६ (२) सू० १७।१

(१४२४) अमृत रूप सुन्दर वेद के सस्वर पाठ के साथ भोजन कराया जाता हुआ—होम किया जाता हुआ वह सोम दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोक को भर देता है, और महत्व से अत्यन्त प्रकाशमान जलों को आच्छन्न कर देता है। यज्ञ में दिव्य सोम देवता के यश से जो वेद मन्त्रों में वर्णित है, वेदज्ञ जानते हैं ॥ प्र० ६ (२) सू० १७।२

(१४२५) जिन किरणों से सोम बलों को और देवयजन योग्य अन्नों को शुद्ध करता है, वे अमृत तुल्य न हिंसनीय किरणें दोनों स्थावर जंगम

जीव योनियों को अनुकूल हों, तब ही मन्त्र ओषधिराज सोम को प्राप्त होते हैं अर्थात् मन्त्रानुकूल सोम का फल होता है ।। प्र० ६ (२) सु० १७।३

(१४२६) सोम प्रशासित हुआ जाने के लिए वायु-सामान्य को अभिव्याप्त होता है, शुद्ध किया हुआ सोम मित्र प्राण और वरुण अपान को अभिव्यापता है और बुद्धि दौड़ाने वाले देहस्थ पुरुष को प्राप्त होता है, तथा बिजुली की किरण वाले वृष्टि-कारक वायुविशेष वा सूर्य को प्राप्त होता है ।। प्र० ६ (२) सु० १८।१

(१४२७) दिव्य सोम भली प्रकार पहरने के वस्त्रों को प्राप्त कराता है, सोम सुन्दर दूध देने वाली दुधार गौओं को प्राप्त कराता है, हमारे धारणार्थ चांदी और सोने को प्राप्त कराता है, और रथ वाले घोड़ों को प्राप्त कराता है ।। प्र० ६ (२) सु० १८।२

(१४२८) सोम पाने के लिए आकाशीय धनों को सर्वतः प्राप्त् कराता है, और सब पृथ्वी सम्बन्धी धनों को भी प्राप्त कराता है, तथा जिस बल वा नीरोगता से उस आकाशीय और पार्थिव धन को हम भोग सकें, वह भी प्राप्त कराता है, और हमारे लिए आंख के समान अन्य ज्ञानेन्द्रियों के तेज को भी प्राप्त कराता है ।। प्र० ६ (२) सु० १८।३

(१४२९) हे अनादि ! ईश्वर ! अँधियारे के नाशार्थ जबकि आप जगत को उत्पन्न करते है, तब भूमि को विस्तीर्ण बनाते हैं, और तभी द्युलोकस्थ चराचर को भी थामते है ।। प्र० ६ (२) सु० १९।१

(१४३०) तभी तुम्हारा दिनकर सूर्य उत्पन्न हुआ, और तभी सूर्य के मथने वाला तुम्हारा होनादि उत्पन्न हुआ, कहाँ तक कहा जाय 'जो कुछ उत्पन्न हो चुका और जो कुछ उत्पन्न होगा, उस सब को तुम दबाए हो ।। प्र० ६ (२) सु० १९।२

(१४३१) परमेश्वर ने कच्ची ओषधियों में पके रस को प्रेरित किया, और सूर्य को द्युलोक में ऐसे चढ़ाया कि जैसे वर्ष भर के ताप को ऋतुरूप विभागों से तपे । इसलिये हे ईश्वर भक्तो ! तुम वाणी से सेवनीय परमेश्वर के लिये प्रीतिपूर्वक बड़े साम को गाओ ।। प्र० ६ (२) सु० १९।३

(१४३२) हे सर्वशक्तिमन परमेश्वर ! आप काम-पूरक का पूर्व सूक्तोक्त रीति से उत्पन्न किया, सब ओषधि वनस्पत्यादि में उस उस रूप के परिणत भारी हर्षकारक तृप्तिकारक बलवान बलदायक अपरिमित अत्यन्त दाता वा सहस्रों पुरुषों के बांटने की पर्याप्त शक्ति की बहुतायत वाला महानुभाव सोम आप के ही प्रसाद से मानो पात्र से पी रहे हों, ऐसे हमने पिया । आप इस प्रकार हम को हृष्ट और पुष्ट करते हैं, इसलिये पूर्वोक्त प्रकार स्तुत्य हैं ।। प्र० ६ (२) सु० २०।१

(१४३३) हे ईश्वर ! हर्षकारक, वृष्टिकारक, तृप्तिकारक, स्वीकरणीय, मर्दनशील, संभजनीय, शत्रु सेनाओं को तिरस्कृत करने वाले अमृत आप का सोम हम को प्राप्त हो ।। प्र० ६ (२) सु० २०।२

(१४३४) हे ईश्वर ! आप ही सच्चे वीर और दाता हैं, सो मनोरथ को सत्कर्मों में लगाइये । और आप दुष्टजन शिक्षक हैं, सो नास्तिक उपद्रवी अधर्मी को फूँक दीजिये जैसे अशुद्ध पात्र को अग्नि से तपा कर शुद्ध करते हैं ।। प्र० ६ (२) सु० २०।३

तेरहवाँ अध्याय

(१४३५) हे कामपूरक परमेश्वर वा सोम ! हमारे लिये जलों की, लहरी, वर्षा को तथा नीरोग, बहुत अन्नों को आकाश में सर्वतः भली प्रकार वर्षाओ । वर्षा की बहुतायत और उत्तमता से अन्न भी नीरोग और उत्तम तथा बहुतायत से होते हैं और मानो वर्षा रूप से आकाश से ही अन्न वर्षते हैं ।। प्र० ६।२ सु० १।१

(१४३६) हे परमेश्वर वा सोम ! उस धारा से वर्षा द्वारा हमें पवित्र करो, जिससे कि जंगली नहीं किन्तु जनसमुदाय में रहने वाली गौवें और तदुपलक्षित अन्य अश्वादि पशु हमारे घर को इसी लोक में आवें ।। प्र० ६।२ सु० १।२

(१४३७) हे परमेश्वर ! सोम ! ब्रह्म-यज्ञादि यज्ञों में उपासकों को प्राप्यतम, वा होम आदि में वायु आदि देवों के अक्षयतम जल को मूसलाधार से बर्षाओ अर्थात हमारे लिये वर्षा को सर्वतः बर्षाओ ॥ प्र० ६ (३) सु० १।३

(१४३८) विद्वान ही प्रजापति परमात्मा को, अथवा रस रूप सोम को वेद की श्रुतियों से सुनते और सुन कर जानते हैं कि वह हमारे लिये रस की उत्पत्ति के लिये अविनाशी शुद्ध आकाश मण्डल को मेघवर्षण धारा से विविध प्रकार प्राप्त है ॥ प्र० ६ (३) सु० १।४

(१४३९) पवन परमात्मा, वा सोम प्राण घातक दुष्ट जन्तुओं को नष्ट करता हुआ, और सूर्य किरणों को प्रकाशित करता हुआ वर्षाता है ॥ प्र० ६।३ सु० १।५

(१४४०) व्याख्या नं० ३५२ में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (३) सु० २।१

(१४४१) हे मनुष्यो ! इस बलवान अति सोमपान करने वाले ऐश्वर्यशाली पुरुष राजा के प्रति अभिषुत गीले सोमरसों और सोमपान पात्रों के सहित अवश्य आवो ॥ प्र० ६ (३) सु० २।२

(१४४२) हे मनुष्यो ! यदि तुम अभिषुत ताजे सोम रसों से इन्द्र को सत्कृत करते हो, तो वह बुद्धिमान इन्द्र शत्रुओं का घर्षण करने वाला सब को जानता है और उस-उस काम को तुमको पहुँचाता है ॥ प्र० ६ (३) सु० २।३

(१४४३) हे यज्ञ के अध्वर्यु ! तू इसी इन्द्र राजा के लिये सोम रूप अन्न के अभिषुत रस को दे। क्योंकि यही सब उत्साह करते हुए जीतने योग्य शत्रु की हिंसा से सर्वदा तुमको पालता है ॥ प्र० ६ (३) सु० २।४

(१४४४) हे याज्ञिको ! तुम पिंगलवर्ण और कभी-कभी रक्त वर्ण अपने बल गगन मण्डल के छूने वाले हुत सोम के लिए गान-युक्त प्रशंसा की चर्चा करो ॥ प्र० ६ (३) सु० ३।१

(१४४५) हे अध्वर्यु आदि ऋत्विजो ! तुम हाथ से छूटे बट्टों से अभिषुत सोम को वस्त्रापवित्र पर छान कर शुद्ध करो, और मधुर सोम में दुग्ध को मेरो ॥ प्र० ६ (३) सु० ३।२

(१४४६) हे ऋत्विजो ! सोम को दही से मिलाओ अथवा भोजनीय अन्न के साथ सेवन करो, अथवा राजा में जमा करो ॥ प्र० ६ (३) सु० ३।३

(१४४७) सोम शत्रुनाशक और विशेष कर चक्षु का सहायक, वायु आदि देवों के लिये आनुकूल्य से काम करने वाला है। सो गौ आदि पशुओं के लिये जिस प्रकार सुख हो, उस प्रकार से वर्षा कर ॥ प्र० ६ (३) सु० ३।४

(१४४८) सोम ! मन का निर्माण करने वाला अर्थात् मनस्वीपने का बढ़ाने वाला और मन का पालक (चन्द्रमा की उत्पत्ति समष्टि मनस्तत्व से वेद में कही है, तदानुसार सोम भी चान्द्रमस होने से अपने कार्य का वर्धक, पोषक और पालन करने वाला है), हर्ष के लिये पानार्थ राजा के लिये सर्वतः पात्रों में सेवन किया जाता है ॥ प्र० ६ (३) सु० ३।५

(१४४९) शुद्ध, शोधक, प्रकाशमान, सोम ! तू हमारे सहायक इन्द्र के साथ हमारे लिये सुन्दर वीर्य और धान्यादि धन को दे ॥ प्र० ६ (३) सु० ३।६

(१४५०) व्याख्या नं० ११५ में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (३) सु० ४।१

(१४५१-१४५२) जो मेघहन्ता इन्द्र मेघ को मारता और ९९ किलों को ढाता है, वह इन्द्र सुखस्वरूप और सुखदायक, याज्ञिक और यजनीय सम्बन्ध से मित्र इन्द्र नामक वायुविशेष हमारे लिये अश्वों या प्राणों से युक्त गौ या इन्द्रियों से युक्त औ और अन्य धान्यों से युक्त धन को बहुत दुधार गौ के समान दुहकर पूर्ण करता है ॥ प्र० ६ (३) सु० ४।२, ३

(१४५३) व्याख्या नं० ६२८ में है ॥ प्र० ६ (३) सु० ५।१

(१४५४) धारण करने वाले द्युलोक के स्तम्भ रूप सूर्य मण्डल में विरोही हुई, जाज्वल्यमान बड़ी भारी, भली प्रकार पुष्ट अन्न वा बल की वर्षा द्वारा देने वाली, स्थिर, दुष्ट जन्तुओं की नाशक, मेघ की विदारक, प्रकाश से चोरों की निवारक (जो कि घोर रात्रि को अन्धकार में पड़ते हैं) अन्धकार

की नाशक, दिन में युद्ध के सुगम और सुकर होने से शत्रुओं के नाश की सहायक, सूर्य की ज्योति उत्पन्न हुई है ॥ प्र० ६ (३) सु० ५।२

(१४५५) यह प्रशंसनीय विश्व को जीतने वाली, धन को जीतने वाली, बड़ी भारी, विश्व की प्रकाशक, बड़ी भारी भून देने वाली, ज्योतियों में उत्तम ज्योति कहाती है। सो इस अविनाशी, सब को दबाने वाली, बलदायक ज्योति को देखने के लिये सूर्य बहुतायत से फैलाता है। प्र० ६ (३) सु० ५।३

(१४५६) व्याख्या नं० २५६ में हो चुकी है ॥ प्र० ६(३) सु० ६।१

(१४५७) अनन्तवीर्य, इन्द्र, परमेश्वर ! हम को बिना जाने पाप न लगें, और हठी दुराराध्य पापी पुरुष संगति को न मिलें ! किन्तु आपकी सहायता से प्रणाम करते हुए हम भक्त निरन्तर असंख्य जन्म मरणादि दुःख-दायक कर्मों को लांघ जावें ॥ प्र० ६ (३) सु० ६।२

(१४५८) हे सत्पुरुषों के रक्षक, पालक परमेश्वर ! हमारी आज और कल्ह-कल्ह और परले दिन, इस प्रकार सब दिन रक्षा करो। और हम स्तोताओं की दिन में और रात्रि में भी रक्षा करो ॥ प्र० ६ (३) सु० ७।१

(१४५९) हे असंख्यकर्मा परमेश्वर ! आपकी असंख्य होने पर भी बायें-दाहिने (अनुकूल-प्रतिकूल) भेद से दो प्रकार की भुजायें कामनाओं को वर्षाने वाली है। जो कि दुष्ट प्राणियों के निग्रहार्थ विविध शक्ति रूप आयुध को धारण कर रही हैं। सो आप प्रलय काल में सर्वसंहारकारक और अति विक्रमी परोपकार यज्ञ वाले और अनन्त धन और सब में रमे सर्वव्यापक प्रजापति हैं ॥ प्र० ६ (३) सु० ७।२

(१४६०) स्त्री चाहते हुए और पुत्र चाहते हुए यज्ञादि परोपकार करने वाले उपासक हम आज सर्वज्ञ परमात्मा को पुकारते हैं। अर्थात् यज्ञादि परोपकार करने वालों को परमात्मा की यज्ञानुष्ठान-जनित कृपा से स्त्री पुत्र आदि सब ऐश्वर्य सुख भोग सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥ प्र० ६ (३) सु० ८।१

(१४६१) और पूर्वोक्त सर्वज्ञ परमात्मा की स्तुति के लिए हमारी प्यारियों में अति प्यारी मधुर स्वरयुक्ता गायत्री आदि सात (७) छन्दोजाति

रूप बहनों वाली भली प्रकार अभ्यास से सेवित प्रशंसनीय वाणी होवे। अर्थात् जब हम वेद सूक्तों से परमात्मा की स्तुति प्रार्थना करें, तो हमारी वाणी अतिप्रिय मधुर गायत्री आदि सात (७) छन्दों में विभक्त अच्छी प्रकार अभ्यस्त और प्रशंसनीय हो ॥ प्र० ६ (३) सु० ८।२

(१४६२) हम उपासक लोग उस सर्वोत्पादक सर्वपिता प्रकाशमान ज्योति स्वरूप परमेश्वर के उस अनिर्वचनीय वरणीय भजनीय तेज का ध्यान करते हैं, जो परमेश्वर हमारी बुद्धियों को सत्पथ में प्रेरित करे।

(२) जो सूर्य हमारी बुद्धियों को प्रेरित करता है, उस औषधि वनस्पत्यादि सब प्राणी जगत की उत्पत्ति के निमित्त भूत प्रकाशमान सूर्य के उस अनिर्वचनीय इयत्ता से जानने में न आने वाले, सेवनीय दुर्गन्धादि जनित दुष्ट जन्तु रोग कारकों के भून डालने वाले रूप को हम धारण करते हैं ॥

(३) भर्गः शब्द से अन्न का ग्रहण जानिये। सूर्य द्वारा वर्षा और यवगोधूमादि औषधि और वट पिप्पलादि वनस्पति उगते हैं, जिनसे अन्न होता है। इसलिये भी सूर्यजनित अन्न का विधिपूर्वक धारण सेवन करना इस मन्त्र का उपदेश है ॥ प्र० ६ (३) सु० १०।१

(१४६३) व्याख्या नं० १३६ में है ॥ प्र० ६ (३) सु० ११।१

(१४६४) व्याख्या नं० ६२७ में है ॥ प्र० ६ (३) सु० १२।१

(१४६५) व्याख्या नं० ११४१ में है ॥ प्र० ६ (३) सु० १३।१

(१४६६) जल से यज्ञ को स्पर्श करते हुए मनचाहे बल को प्राप्त होते, और द्रोह रहित दिव्य प्राण और अपान बढ़ते हैं ॥ प्र० ६ (३) सु० १३।२

(१४६७) जिनसे द्युलोक वर्षा करने वाला होता है ऐसे, जिनसे जलों की प्राप्ति होती है, वे दोनों देने योग्य अन्न के पालन करने वाले दोनों प्राण और अपान बड़े ब्रह्मांड को व्याप रहे हैं ॥ प्र० ६ (३) सु० १३।३

(१४६८) चारों ओर स्थित प्रकाशमान लोकलोकान्तर सूर्य और सूर्याश्रित अग्नि तथा अग्न्याश्रित चलने वाले वायु को आगे में जोड़ते हैं, तब अन्तरिक्ष में प्रकाशते हैं ॥ प्र० ६ (३) सु० १४।१

(१४६९) इस अग्नि और उसके कार्य पदार्थों में उस उस रूप को प्राप्त हुए सूर्य के रमणीय गोले में वर्तमान कामना करने योग्य विविध लाल रंग पार्श्व जिन में हैं, तो भी रक्तवर्ण प्रतीत होने वाले, न सहारे जाने वाले मनुष्यादि प्राणियों के धारक होकर बहने वाले शोषक होने से हरण करने वाले, सीधे तिरछे दो प्रकार की किरणों को पृथ्व्यादि लोक जो सूर्य के चारों ओर वर्तमान हैं, अपने में युक्त करते हैं ॥ प्र० ६ (३) सू० १४।२

(१४७०) हे मनुष्यो ! प्रज्ञानरहित रात्रि में सोये हुए प्राणि वर्ग के लिए प्रज्ञान करता हुआ और रूप रहित पदार्थ के लिये रूप करता हुआ वह सूर्य दाहक किरणों से उदय होता है ॥ प्र० ६ (३) सू० १४।३

(१४७१) हे राजन् या सूर्य ! यह सोम तेरे लिये अभिषुत किया जाता है, तेरे लिये शोधा जाता है, तू इस सोम की रक्षा कर, तू प्रसिद्ध जिस सोम को उत्पन्न करता है, तू हर्ष और सहाय के लिये उस गीले सोम को अंगीकृत कर ॥ प्र० ६ (३) सू० १५।१

(१४७२) महान रथ सा, रक्षक वह ही, सोम संग्राम स्थल में बहुत सहन-शक्तिदायक है, अतः सेवित किया जाता है। किसलिये ? उत्तर-बहुत युद्धलब्ध धनों को देने के लिये। अनन्तर सब मानुष उत्पन्न हुए भारी क्षात्र धर्मोचित युद्ध करने वाले योद्धाओं को स्वर्गप्रद संग्राम संगत होते हैं ॥ प्र० ६ (३) सू० १५।२

(१४७३) बलवान सोम वायुओं के वेग के समान शुद्धि करे, जिससे देवों के वैद्य (मरुत्) हमारे लिये शीघ्र सुन्दर बुद्धि तत्व वाला हो, जलों के समान हमारे लिये शीघ्र सुन्दर बुद्धि तत्व वाली हो, बहुत रूपों वाला सेनाओं में सहनशक्ति का देने वाला, जैसे अनेक प्रकार से उपकारक है, वैसे अनेक प्रकार का उपकार करने वाला सोम भी है ॥ प्र० ६ (३) सू० १५।३

(१४७४) व्याख्या नं० २ में है ॥ प्र० ६ (३) सू० १६।१

(१४७५) वह अग्नि हमारे यज्ञ में हव्य पदार्थों के संसर्ग से हर्षकरी, लपटों से बड़े भारी वायुवादि देवों का यजन करे, क्योंकि अग्नि ही देवदूत होने से देवों का आह्वान करता और यजन करता है ॥ प्र० ६ (३) सू० १६।२

(१४७६) यज्ञ के विधाता सुकर्मन ! प्रकाशमान ! अग्ने ! तू दर्श-पौर्णमासादि यज्ञों में निश्चय दूरमार्गों और समीपमार्गों को अनायास शीघ्र पहुँचता है ॥ प्र० ६ (३) सू० १६।३

(१४७७) होम का साधक प्रकाशमान अमर अग्नि बुद्धि से ज्ञानेन्द्रियों को प्रेरित करता हुआ आगे आकाश को जाता है ॥ प्र० ६ (३) सू० १७।१

(१४७८) बलवान अग्नि बलसाध्यकार्यों (यानादिकों) में रखा जाता है। यज्ञों में अध्वर्यु आदिकों द्वारा अतिप्रयत्न से आहवनीयादि कुण्ड-स्थानों में ले जाया जाता है। वह बुद्धितत्व युक्त अग्नि यज्ञ का साधक है ॥ प्र० ६ (३) सू० १७।२

(१४७९) अग्नि इसलिये वरण करने योग्य है कि सब प्राणियों में जीवन रूप गर्भ बन कर स्वयं स्थित है, और बुद्धि तत्व की प्रेरणा करके बल के अनेक धन को उत्पन्न कराता है ॥ प्र० ६ (३) सू० १७।३

(१४८०) हे मनुष्यो ! वर्षा करने वाले होमाग्नि का आधान "अन्याधान" की रीति से करो, और फिर सोमरूप अन्न अभिषुत होने पर द्यावा पृथ्वी का अभ्याश्रय करने वाले तपे हुए घृत का आसेचन करो ॥ प्र० ६ (३) सू० १८।१

(१४८१) जो सोम-अन्न से मिश्रित अग्नि में हुत अन्य भाग हैं, वे अपने स्थान को जानते हुए से मेघ-जलों से परस्पर जा मिलते हैं। जैसे बछड़े गौओं से जा मिलते हैं ॥ प्र० ६ (३) सू० १८।२

(१४८२) गलाफुवों के तुल्य लपटों में भक्षण करते हुए अग्नि में, मध्य-स्थान वायु में और द्युस्थान आदित्य में सुखदायक धारण करने वाले स्तम्भरूप अन्न को उपस्कृत करते हैं ॥ प्र० ६ (३) सू० १८।३

(१४८३) वह प्रसिद्ध सब भवनों में अत्यंत बड़ा ब्रह्म ही था, जिस निमित कारण से तेजस्वी प्रकाश बलवाला सूर्य उत्पन्न हुआ। सो उत्पन्न हुआ सूर्य शीघ्र मनुष्यों के शत्रु सूक्ष्म दुष्ट जन्तुओं को निरा नष्ट कर डालता है, जिस सूर्य के उदय होने के पश्चात् सब प्राणी हृष्ट होते हैं ॥ प्र० ६ (३) सू० १९।१

(१४८४) उदय होकर बढ़ता हुआ, अतिबली, दुष्ट जन्तुनाशक सूर्य बल से हानिकारक दुष्ट जन्तु के लिये भय का धारण करता है और अप्राणी तथा प्राणी ये सब पोषित वा धारित भूतमात्र भली प्रकार शोधित हुए हर्षों में उस सूर्य के लिए संगत होते हैं ॥ प्र० ६ (३) सु० १६।२

(१४८५) जबकि ये कर्मानुष्ठानी प्राणी मनुष्य पुन जन्म से दुहरे और पौत्र जन्म से तिहरे हो जाते हैं, तो भी उस सूर्य में ही सब लोग कर्म को समाप्त करते हैं । स्वादु से अति स्वादु इस रस को स्वादु रस से सूर्य मिलाता है और उत्तम मधु को मधुर रस से जुटाता है ॥ प्र० ६ (३) सु० १६।३

(१४८६) व्याख्या नं० ४५७ में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (३) सु० २०।१

(१४८७) चेताने वाले सूर्य ! कर्म वा बुद्धि तत्व के साथ, और आकर्षण बल के साथ, उदय हुआ बलवान किरणों के साथ, वृद्धि को प्राप्त हुआ पृथ्वी आदि लोकों को ढो रहा है । दुष्ट जन्तुओं को तिरस्कृत करने वाला विशेष कर वृष्टि पर अनुग्रह करने वाला यजमान की प्रशंसा करता है । उस के लिए कार्यों के साधन चाहने योग्य धनधान्य का देने वाला है । इस सच्चे देव सूर्य को सच्चा देव चन्द्रलोक वा सोम औषधिराज प्राप्त होता है ॥ प्र० ६ (३) सु० २०।२

(१४८८) सोम पान के पश्चात् तेजस्वी प्रकाशमान सूर्य तेजोबल से युद्ध से कृमि कीटादि रूप वायुगत सूक्ष्म जन्तु रूप असुर को तिरस्कृत करता है । इस सोम से बल बढ़ता और द्यावा पृथ्वी को आपूरित करता है । सोम के एक भाग को अन्तरिक्ष में धरता, और दूसरे भाग को अन्य देवों के लिये बचा देता है और चन्द्रमादि लोकों को प्रकाश पहुँचाता है ॥ प्र० ६ (३) सु० २०।३

चौदहवाँ अध्याय

सप्तमा प्रपाठकः

(१४८९) व्याख्या नं० १६८ में हो गई ॥ प्र० ७ (१) सु० १।१

(१४९०) जिस कुशास्तीर्ण यज्ञ में प्रकाशमान सूर्य किरणों पर हरित सोम अग्नि में चारों ओर से होमे जाते हैं, उस यज्ञ में हम चारों ओर से भली प्रकार इन्द्र=सूर्य की प्रशंसा करते हैं ॥ प्र० ७ (१) सु० १।२

(१४९१) बिजली युक्त मेघ वर्षक सूर्य के लिये उसकी किरणें मधुर चाखने योग्य घृतादि को दुहती हैं, जिससे समीर वा यज्ञ में सर्वतः पाता है ॥ प्र० ७ (१) सु० १।३

(१४९२) व्याख्या नं० २६१ में हो गई है ॥ प्र० ७ (१) सु० २।१

(१४९३) हे इन्द्र ! परमेश्वर ! तू सबसे पहला अनादि विद्यादि धनों का देने वाला है और तू सच्चा सब भक्तों को एश्वर्य सम्पन्न करने वाला है । बड़े बल के पुत्र बहुत धन के योग्य कार्यों को हम स्वीकार करें । यह हमारी प्रार्थना है ॥ प्र० ७ (१) सु० २।२

(१४९४) पूर्व उत्पन्न हुए अतएव पुरातन कारण रूप पीने योग्य जिस प्रशंसनीय सोम को बड़े अवगाहन द्युलोक से सामने गिरा हुआ था लता-रूप से उत्पन्न हुए उसी सोम को सूर्य को लक्ष्य करके प्रशंसित करते हैं ॥ प्र० ७ (१) सु० ३।१

(१४९५) कोई विद्वान लोग जलोत्पन्न धन=सोम को दूर से देखते=जानते हुए द्युलोक की दीप्तियों को लक्ष्य करके स्तुति करते हैं । अन्तरिक्ष के आवरण करने वाले से, सोम को सूर्य विविध प्रकार फैलाता=पूरता है ॥ प्र० ७ (१) सु० ३।२

(१४९६) सोम ! फिर जब कि तू इन दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोक को और इन सब भवनों को बल से कुण्ड में स्थित बैल के समान अभिव्याप कर विराजता है, तब स्तुति किया जाता है ॥ प्र० ७ (१) सु० ३।३

(१४९७) व्याख्या नं० २८ में हो चुकी है ॥ प्र० ७ (१) सु० ४।१

(१४९८) हे विचित्र लपटों वाले अग्ने ! तू विभाग करने वाला भेदक है, जैसे समुद्र वा नदी की लहरों में समीप ही विभाग होता है तद्वत्। वह तू हव्य देने वाले यज्ञ कर्ता के लिए शीघ्र वर्षा करता है ॥ प्र० ७ (१) सु० ४।२

(१४९९) अग्ने द्युलोकस्थ परले अन्नों में हमको पहुँचा, और अन्तरिक्षस्थ बिचले अन्नों में हमें पहुँचा तथा वरले समीपस्थ भूलोक के धन का हमें दान कर ॥ प्र० ७ (१) सु० ४।३

(१५००) व्याख्या नं० १५२ में हो चुकी है ॥ प्र० ७ (१) सु० ५।१

(१५०१) जीवात्मा कहता है कि मैं निष्पाप पूर्वले जन्म के संस्कार बल से बुद्धिमानों के समान बिना पढ़े भी वेद वाणियों को अलंकृत करता हूं, जिससे परमेश्वर अवश्य बल को मुझे धारित करें ॥ प्र० ७ (१) सु० ५।२

(१५०२) हे परमेश्वर ! जो नास्तिक आपकी स्तुति नहीं करते, और जो मन्त्रों के दृष्टा लोग स्तुति करते हैं, उन दोनों में भली प्रकार स्तुति किये हुए आप मेरी अवश्य वृद्धि कीजिए । प्र० ७ (१) सु० ५।३

(१५०३) बल से अरणियों को रगड़ कर उत्पन्न किये अग्ने ! तू सब अग्नियों के साथ हव्य अन्न को सेवन करता है । जो अग्नि वायु आदि देवों में है और जो मनुष्यों में है, उन सब के साथ हमारी वाणियों को सत्कृत्य कर ॥ प्र० ७ (१) सु० ६।१

(१५०४) पूर्वोक्त अग्नि, जिस अग्नि के हव्य वाले होता लोग हैं, वह सब जाठरादि अग्नियों के सहित बलों वा धनों से युक्त हुआ हम में हमारे पुत्र में हमारे पोते में भली प्रकार वर्तने वाला प्राप्त हो ॥ प्र० ७ (१) सु० ६।२

(१५०५) अग्ने ! तू अन्य अग्नियों सहित हमारे यश और अन्न को बढ़ाता है । और तू ही हमारे यज्ञ के लिए धन के देने के लिए देवताओं को प्रेरणा करता है ॥ प्र० ७ (१) सु० ६।३

(१५०६) वीर्ययुक्त, वीर्यवर्धक सोम ! मुख्य यज्ञार्थ कुशा काटने वाले यजमान बड़े बल के लिए और यश के लिए तुझ में बुद्धि को धारण करते हैं, वह तू वीरों के लिए हित के अर्थ बड़े बल और यश को प्रेरित कर ॥ प्र० ७ (१) सु० ७।१

(१५०७) सोम ! तू अन्न से द्यावा भूमियों के बीच में ऊपर-ऊपर कुआ सा तोड़ देता है, जैसे कुए को चलाने वाला किसी मनुष्य के पीने के स्थान को जो भरपूर हो उसको फोड़ता है, तद्वत ॥ प्र० ७ (१) सु० ७।२

(१५०८) हे अमृत सोम ! तू सच्चे सुन्दर जल के धारक अन्तरिक्ष में सुख को मनुष्य के लिये उत्पन्न करता है तथा अन्न को बाँटता और अच्छी प्रकार चलता है ॥ प्र० ७ (७) सु० ७।३

(१५०९) व्याख्या नं० ३८६ में हो चुकी है ॥ प्र० ७ (१) सु० ८।१

(१५१०) प्राण की स्तुति-प्रशंसा करने वाले मुझ मनुष्य की अवश्य सुनाई कीजिए । हे ईश्वर ! प्राणों के पालक धन को देने वाले आपसे शरणागत होकर जो कुछ कहता हूं ॥ प्र० ७ (१) सु० ८।२

(१५११) हे प्रिय ! इन्द्र ! परमेश्वर ! पूर्वकाल में भी और वर्तमान में भी आपसे अधिक अत्यन्त वीर पुरुष कोई नहीं उत्पन्न हुआ, न तो धन से, न रक्षा से और न स्तुत्यपने से अर्थात् आपही सर्वोपरि धनी, रक्षक और स्तुत्य हैं ॥ प्र० ७ (१) सु० ८।३

(१५१२) तुम्हारी उषाओं के प्रशासक संयोजक चन्द्र किरणों के प्रशंसक न मारने योग्य गौओं के पालक इन्द्र = परमेश्वर को प्रार्थित करता हूं ॥ प्र० ७ (१) सु० ९।१

(१५१३) व्याख्या नं० ५५ में हो गई है ॥ प्र० ७ (१) सु० १०।१

(१५१४) देवताओं ने उस अग्नि को यज्ञ का सचेत होता बनाया है । वह अग्नि अग्निपरिचर्या करने वाले दानी मनुष्य (यजमान) के लिये रमणीय बल को धारित करता है ॥ प्र० ७ (१) सु० १०।२

(१५१५) व्याख्या नं० ४७ में हो गई है ॥ प्र० ७ (१) सु० ११।१

(१५१६) जिस कारण मनुष्य अग्नि से किये कार्यों को करते हुए पुण्य से काँपते हैं, इसी कारण हे याज्ञिको ! तुम असंख्यदायक अग्नि की आत्मा के समान परिचर्या करो ॥ प्र० ७ (१) सु० ११।२

(१५१७) व्याख्या नं० ५१ में हो चुकी है ।। प्र० ७ (१) सु० ११।३

(१५१८) व्याख्या नं० ६२७ में हो चुकी है ।। प्र० ७ (१) सु० १२।१

(१५१९) दृष्टि का सहायक पोषक ब्रह्मा होता उद्गाता अध्वर्यु और यजमान इन ५ जनों का आगे स्थापन किया हुआ अग्नि है, उस महाप्राण वाले अग्नि को हम प्रचारित करते हैं ।। प्र० ७ (१) सु० १२।२

(१५२०) अग्ने ! उत्तम कर्मकाण्ड का साधन तू हमारे लिये शोभन वीर्यसहित तेज को प्राप्त करा, तथा धन और पुष्टि को धारण करा ।। प्र० ७ (१) सु० १२।३

(१५२१) अग्ने पावन देव ! तू सुखदायिनी दीप्ति वाली लपट से वायु आदि देवता को बुलाता और उनका यजन करता है ।। प्र० ७ (१) सु० १३।१

(१५२२) हे विचित्र चिनगारी या दीप्ति वाले घृत को, जो होमा जाता है, देवों को पहुँचाने वाले ! सुख दिखाने वाले तुझको चाहते हैं कि वायु आदि देवों को हव्य भक्षण के लिये बुला । ।। प्र० ७ (१) सु० १३।२

(१५२३) कान्त दर्शिन् अग्ने ! हव्य भक्षक दीप्ति वाले महान् तुझको हम यज्ञ में समिधाओं से सदीप्त करते हैं ।। प्र० ७ (१) सु० १३।३

(१५२४) हे वन्दनीय, प्रकाशरूप परमेश्वर ! गीती युक्त साम वा गायत्री छन्दोबद्ध मन्त्र के संपादन यज्ञ में सब कर्मों में हमको रक्षित कीजिये ।। प्र० ७ (१) सु० १४।१

(१५२५) हे ज्ञानस्वरूप ! हमारे लिये एक साथ दारिद्र के नाशक अतएव वरणीय सब संग्रामों में दुस्तर धन प्राप्त कराइये ।। प्र० ७ (१) सु० १४।२

(१५२६) ज्ञानस्वरूप परमात्मन ! हमारे लिये आजीवनार्थं अच्छी चेतना के सहित, सुखहेतु, सर्व मनुष्यों के पालक पोषक, धन को सर्वतोभाव से धारित कीजिये ।। प्र० ७ (१) सु० १४।३

(१५२७) हमारी बुद्धियाँ अग्नि को प्रेरित करें, उससे हम धन ही

धन कमा सकें जैसे संग्रामों में शीघ्रगामी तुरंग को प्रेरित करते हैं, तद्वत ।। प्र० ७ (१) सु० १५।१

(१५२८) अग्ने ! सूर्य सहित जिस तेरी की हुई रक्षा वा गति से सूर्य किरणों को हम खींच सकें उस गति वा रक्षा को हमारे लिये धनदानार्थ=धन लाभार्थ प्रेरित कर । जो लोग अग्नि से गति उत्पन्न करना चाहते हैं, वे सूर्य की किरणों में से अग्नि खींचकर सिद्ध करके अनेक धन लाभदायक कार्य कर सकते हैं ।। प्र० ७ (१) सु० १५।२

(१५२९) अग्ने ! स्थूल बहुत विस्तृत धन को प्राप्त करा और आकाश को स्वच्छ शुद्ध किरणों वाला प्रकट कर और प्राण वायु वाला बना ।। प्र० ७ (१) सु० १५।३

(१५३०) हे अग्ने ! प्राणियों के लिये प्रकाश=रोशनी को धारित कराते हुए पहुँचाते हुए तू ने जरा रहित कृत्तकादि २७ वा २८ नक्षत्रों के मण्डल और सूर्य को आकाश में चढ़ाया है ।। प्र० ७ (१) सु० १५।४

(१५३१) अग्ने तू प्रजाओं का अति प्यारा अति उत्तम यज्ञ में स्थित ज्ञानदाता वेद मन्त्रों से अग्निगुण वर्णन करने वाले यजमान के लिये अन्न को धारण करता हुआ है । सो तू चेताव ।। प्र० ७ (१) सु० १५।५

(१५३२) व्याख्या नं० २७ में हो चुकी है ।। प्र० ७ (१) सु० १६।१

(१५३३) अग्ने ! तू सुख का स्वामी है और वरणीय दान करने योग्य धन-धान्य का स्वामी है, अतः मैं सुख चाहूँ तो तेरा गुण वर्णनकर्ता होऊँ ।। प्र० ७ (१) सु० १६।२

(१५३४) अग्ने तेरी शुद्ध चमकती श्वेत वर्ण प्रभायें तेरे तेजों को ऊपर को ले जाती हैं ।। प्र० ७ (१) सु० १६।३

पन्द्रहवाँ अध्याय

(१५३५) परमेश्वर ! आपके प्रजाजनों का बन्धु कौन है ? दत्तयज्ञ कौन है ? कौन प्रसिद्ध किस में आश्रित है ? प्र० ७ (२) सु० १।१

(१५३६) हे परमेश्वर ! तू प्रजाजनों का बन्धु, समान नाम का चेतन होने से मित्रों से स्तुति किये जाने योग्य है ॥ प्र० ७ (२) सु० १।२

(१५३७) हे परमेश्वर ! हमारे हित के लिये प्राण और अपान देवताओं को संगत करो, अन्य वायु आदि देवों को भी संगत करो, सत्य फल वाले बड़े अपने घर रूप जगत को संगत करते हो ॥ प्र० ७ (२) सु० १।३

(१५३८) वर्णनीय, नमने योग्य वा हव्य अन्न देने योग्य, अंधियारों को तिरस्कृत करता हुआ, ज्ञान द्वारा वा प्रकाश द्वारा मार्गदर्शक, कामनाओं का वर्षाने वाला वा होम से वृष्टि का हेतु, ज्ञान स्वरूप परमेश्वर वा भौतिक अग्नि भली प्रकार ध्यान किया जाता वा यज्ञकुण्ड में सुलगाया जाता है ॥ प्र० ७ (२) सु० २।१

(१५३९) कामनाओं का वर्षक वा वृष्टि का हेतु निश्चय, पृथिव्यादि लोकों का आधार होने से वाहन, वा वाय्वादि देवों का वोढा, प्राण के समान वर्तमान परमेश्वर वा भौतिक अग्नि भली प्रकार हृदय वा यज्ञवेदी में प्रकाशित किया जाता है ॥ प्र० ७ (२) सु० २।२

(१५४०) हे कामनाओं के पूरक वा जलों के वर्षक ! ज्ञान स्वरूप, प्रकाशमान ! पावक ! भक्ति से नम्र आर्द्र चित्त वा घृतादि के सेवक हम योगी वा याजिक जन बहुतायत से प्रकाशमान कामनाओं वा जलों के पूरक तुझ परमेश्वर वा अग्नि को ध्यान करें वा सुलगावें ॥ प्र० ७ (२) सु० २।३

(१५४१) हे प्रकाशमान ! परमेश्वर ! भौतिक अग्ने ! प्रकाशमान

तेरी बड़ी शुद्ध निर्मल किरणें उत्कृष्ट भाव से वर्तती वा ऊपर को जाती हैं ॥ प्र० ७ (२) सु० ३।१

(१५४२) हे परमेश्वर वा पावक ! मुझ स्तोता की स्नेह भक्ति पूर्ण अन्तःकरण की वृत्तियें वा घृत भरे चमस जुहू वा स्रुच् को जिन से होम किया जाता है, तुझ को प्राप्त हों। सो तू हम उपासकों वा अग्निहोत्रियों के होमयोग्य अन्तःकरणों वा घृतादि द्रव्यों को स्वीकृत कर ॥ प्र० ७ (२) सु० ३।२

(१५४३) हर्षदायक कर्मों के फलदायक वा देवों के दूत प्रत्येक ऋतु में यजनीय विचित्र प्रकाशों वाले विविध प्रकाश के धनी ईश्वर वा अग्नि की स्तुति करता हूँ। वह अग्नि अवश्य स्वीकृत करे ॥ प्र० ७ (२) सु० ३।३

(१५४४) व्याख्या नं० ३६ में हो चुकी है ॥ प्र० ७ (२) सु० ४।१

(१५४५) हे अग्नि ! वा पावक ! तुझ ही अत्यन्त समीपी बन्धु को वृद्धि और यश के लिए निश्चय हम प्राप्त होते हैं, सो तू सब दान न करने वाले राक्षस से हम को बचा और कामादि वा शत्रु राजाओं से संग्रामों में हम को रक्षित कर ॥ प्र० ७ (२) सु० ४।२

(१५४६) सूर्य भ्रमण कर्ता प्रकाशमान दहकता हुआ प्राणों का निधान भूत, बल की प्राप्ति के लिये औषधादि का उत्पादक उदित हो दीखता है, और ज्ञान का फैलाने वाला बड़ी दीप्ति (रोशनी) से प्रकाशता है तथा अरुणोदय काल के पीछे श्वेत वर्ण प्रायः रात्रि को दूर फेंकता हुआ प्राप्त होता है ॥ प्र० ७ (२) सु० ५।१

(१५४७) जब कि पृथिव्यादि की अपेक्षा बहुत बड़े पालक पितृरूप सूर्य से उत्पद्यमान स्त्रीरूप उषा को उत्पन्न करता हुआ अग्नि काली अंधियारी चलती जाती हुई रात्रि को तिरस्कृत करता है, तब गमन स्वभाव अग्नि द्युलोक के बसाने वाले, आच्छादित करने वाले अपने तेजों से सूर्य के प्रकाश को ऊपर थामता हुआ चमकता है ॥ प्र० ७ (२) सु० ५।२

(१५४८) शोभन तेज स्वरूप सूर्यरूप अग्नि शोभनरूपिणी उषा के साथ मिला हुआ उदय होता है। सो यह जार के समान रात्रि को बुड्ढी करने

(१५६२) वह प्रकाश-शील आठ (८) ऋतुओं में एक वसु क्रान्त-दर्शन वा बुद्धितत्व युक्त अग्नि वेद वाणी से प्रशंसनीय है, सो हे बहुमुख ! बहुत लपटों वाले ! हमारे लिये धन युक्त पदार्थों को दीजिये ॥ प्र० ७ (२) सु० ११।२

(१५६३) हे तीक्ष्ण ज्वाला रूपी दाढ़ों वाले ! प्रकाशमान ! अग्ने ! दुष्ट जन्तुओं को दिन में और उषाकालोपलक्षित रात्रियों में भी तू निवृत कर और अपने तेज से भस्म कर ॥ सु० ११।३

(१५६४) व्याख्या नं० ८७ में है ॥ प्र० ७ (२) सु० १२।१

(१५६५) घृत की आहुति वाले, अग्नि की मित्र के समान यजमान लोग स्तोत्रों से प्रशंसा करते हैं ॥ प्र० ७ (२) सु० १२।२

(१५६६) अति प्रशंसनीय अग्नि की "हम प्रशंसा करते हैं", जो यज्ञ में उद्यत हव्यों को आकाश में देवों के लिये पहुँचावे=भेजे ॥ प्र० ७(२) सु० १२।३

(१५६७) पलाशादि की समिध से सुलगे हुए प्रदीप्त अग्नि को वेद वचन मन्त्र से वर्णन करता हूं और आप शुद्ध तथा औरों के शुद्ध करने वाले आगे यज्ञ में निश्चल स्थिर स्थापित बुद्धितत्व वाले देवों के बुलाने वाले, बहुतों से वरण किये जाने योग्य, किसी से द्रोह न करने वाले सब के अनुकूलवर्ती, क्रान्तदर्शी अग्नि को, हम सुखों के साथ चाहते हैं ॥ प्र० ७ (२) सु० १३।१

(१५६८) अग्नि ! देवता और मनुष्य और अन्य सब समय २ पर सुखदायी अमर तुझ को हव्य ले जाने वाला दूत बनाते हैं, तथा जागने और जगाने वाले काष्ठादि में व्यापे हुए रक्षा करने वाले प्रशंसनीय प्रजापालक अग्नि की हव्य अन्न से उपासना करते हैं ॥ प्र० ७ (२) सु० १३।२

(१५६९) अग्ने ! देवों का दूत तू दोनों देवताओं वा मनुष्यों को विशेष कर भूषित करता हुआ द्युलोक और पृथ्वीलोक को भली प्रकार जाता है। जिस कारण अनुकूलवर्ती हम सुन्दर मति वाले कर्म अनुष्ठान का तेरे लिये

सेवन करते हैं, इस कारण आहवनीयादि वा भूलोक आदि तीन स्थानों वाला तू हमारे लिये सुखदायी हो ॥ प्र० ७ (२) सु० १३।३

(१५७०) व्याख्या नं० १३ में हो चुकी है ॥ प्र० ७ (२) सु० १४।१

(१५७१) जिस अग्नि का तीन जोड़ों व गांठों वाला बिना ढका खुला कुशास्तरण रहता है, और जल यथास्थान रखे रहते हैं, वह अग्नि सेवनीय अवश्य है। अर्थात् अग्निहोत्र के समय कुशमुष्टि खोल कर खुले में बिछानी चाहिये, जो अन्य समय बंधी रखी जाती है, जिसमें ३ पर्व वा गांठ होती है, और जल भी प्रणीता पात्रादि ठीक स्थान में रखना चाहिये ॥ प्र० ७ (२) सु० १४।२

(१५७२) न सताई हुई रक्षाओं से वर्धक देव अग्नि का स्वरूप सूर्य के समान आंखों का सहायक शोभन उत्तम उपनेत्र होता है। जब अग्नि के गुण भली प्रकार ज्ञात हो जावें, तो रक्षा पूर्वक उससे ऐसे उपनेत्र (दूरबीन और सूक्ष्मवीन आदि) बन सकते हैं कि जो सूर्य के समान आंख की सहायता करें, जैसे सूर्य की सहायता से मनुष्य दूर और सूक्ष्म पदार्थों को देखता है ॥ प्र० ७ (२) सु० १४।३

सोलहवाँ अध्याय

(१५७३) व्याख्या नं० २५६ में हो चुकी है ॥ प्र० ७ (३) सु० १।१

(१५७४) सर्व देहव्यापी हर्ष के निमित्त अभिषुत सोम के वीर्य-वर्धकत्व और बल को परमेश्वर बढ़ाता है, जब वर्तमान में उस परमेश्वर की बड़ाई को मनुष्य लोग पूर्ववत् स्तुत करते हैं ॥ प्र० ७ (३) सु० १।२

(१५७५) हे इन्द्र ! और अग्ने ! स्तोत्र वाले होता आदि, और स्तोत्र जानने वाले सामगान में चतुर उद्गाता आदि स्तोता जन तुम दोनों का यजन करते हैं और मैं यजमान भी अन्नाद्य के लिए तुम्हारा सर्वथा अतिशय यजन करता हूं ॥ प्र० ७ (३) सु० २।१

(१५७६) इन्द्र, मध्यस्थान देव ! और अग्ने, पृथ्वी स्थान देव ! तुम दोनों अपने एक अभिन्न मिले हुए दाहादि कर्म से उपक्षय करने वाले हमारे शत्रु जिनके पालक हैं, उन नव्वे (९०) पुरियों को कम्पमान कर देते हो। जिस प्रकार इस देह में १० प्राण, १० इन्द्रियाँ, ६ रस, ४ अन्तःकरण, ये तीस पुरी ३ सत्व रज तम गुणों के भेद से भिन्न होकर (९०) नव्वे हैं, इसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड में भी ६ ऋतु (हिम, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्) १० प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त धनञ्जय, १० प्रसिद्ध इन्द्रियाँ और चार मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार रूप अन्तःकरण के कारण पदार्थ सर्वत्र फैले हैं। वे भी गुणों के भेद से ९० प्रकार के हो जाते हैं। ये ९० पुरी जब हमारे अनुकूल हों तब मित्रपुरी और जब विरुद्ध वा प्रतिकूल हों, तब शत्रुपुरी कहाते हैं। इन्द्र और अग्नि के यजन करने से ये दोनों उन ९० पुरियों के प्रतिकूल अंश वा प्रभाव को अपने दाह प्रकाश आदि मिश्रित कर्म से नष्ट कर डालते हैं ॥ प्र० ७ (३) सु० २।२

(१५७७) हे इन्द्र और अग्ने ! सोम आदि को धारण करने वा पीने वाले होता अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा आदि ऋत्विज लोग कर्म फल के मार्गों को लक्ष्य करके हमारे द्वारा किये जाते हुए यज्ञकर्म के चारों ओर, समीप, बहुतायत से तुम को प्राप्त होते हैं ॥ प्र० ७ (३) सु० २।३

(१५७८) हे इन्द्र ! अग्ने ! तुम दोनों के बल और अन्न साथ रहने वाले हैं और वर्षा की धाराओं का प्रेरकत्व भी तुम दोनों में स्थित है ॥ प्र० ७ (३) सु० २।४

(१५७९) व्याख्या नं० २५३ में हो चुकी है ॥ प्र० ७ (३) सु० ३।१

(१५८०) हे दिव्य ! परमेश्वर ! तू प्राण वा घोड़ों का भरपूर करने वाला है, और इन्द्रियों वा गौवों का बहुत करने वाला है अर्थात् तेरे प्रसाद से प्राण और इन्द्रियाँ अच्छी प्रकार मिलते और वर्तते हैं वा घोड़े गौ आदि उपयोगी धन धान्यादि की कमी नहीं रहती, सो तू ज्योतिस्वरूप और कुएँ के समान गम्भीर है, तेरे दिये दान को कोई निश्चय नहीं लूट सकता—नष्ट नहीं कर सकता। अतः जो-जो मांगता हूँ, वह-वह भरपूर कर दे ॥ प्र० ७ (३) सु० ३।२

(१५८१) व्याख्या नं० २४० में हो चुकी है ॥ प्र० ७ (३) सु० ४।१

(१५८२) मघवन ! इन्द्र ! परमेश्वर ! आप बहुत सैकड़ों और सहस्रों गौ धनादि के समूहों को दानकर्ता यजमान के लिए देते हैं, सो विविध उत्तम वचनों वाले और साम गानादि द्वारा आपकी स्तुति गाते हुए हम रक्षा के लिए कामादि शत्रुओं के पुरों को तोड़ने वाले तुम परमेश्वर को साक्षात करें ॥ प्र० ७ (३) सु० ४।२

(१५८३) व्याख्या नं० ४० में हो चुकी है ॥ प्र० ७ (३) सु० ५।१

(१५८४) साक्षात करने योग्य ! प्रजापते ! परमात्मन ! जिन्होंने अच्छे दान किये हैं, वे भाग्यवान देवों को चाहने वाले जन रथ के ले चलने वाले घोड़े के समान कर्मफल के पहुँचाने वाले तुम को स्तोत्रों से स्तुत करते हैं, क्योंकि तू ज्ञान यज्ञानुष्ठानियों के पुत्र और पौत्र दोनों में धन धान्यादि को देता है ॥

परमात्मा की भली प्रकार उपासना प्रार्थना करने वाले भाग्यशाली जनों के पुत्र पौत्रादि सन्तति पर्यन्त को धन धान्यादि की कमी नहीं रहती, इसलिए वह कर्मफलदाता सदा स्तुति के योग्य है ॥ प्र० ७ (३) सु० ५।२

(१५८५) हे वरणीय परमेश्वर ! मेरे इस पुकारने को सुन कर स्वीकार करो। और आज मुझे सुख दो, रक्षा चाहता हुआ मैं तुम्हारी सर्वतः स्तुति करता हूँ ॥ प्र० ७ (३) सु० ६।१

(१५८६) हे कामनापूरक ! परमेश्वर ! तुम अपनी अकथनीय अलौकिक रक्षा से हम भक्तों के लिए सर्वतः बहुत आनन्द देते हो, सो स्तुति प्रार्थना करने वालों के लिए साधारण पुरुष की समझ में आने वाली रक्षा वा कृपा से सुख भोग की सामग्री भरपूर करो ॥ प्र० ७ (३) सु० ७।१

(१५८७) व्याख्या नं० २४६ में हो चुकी है। प्र० ७ (३) सु० ८।१

(१५८८) परमेश्वर ने महत्व से द्युलोक और पृथ्वी लोक के बीच में अपने अनन्त बल को फैलाया हुआ है। परमेश्वर ने सूर्यलोक को प्रकाशित किया है। परमेश्वर में ही सब भुवन नियम से घूम रहे हैं। उसी ईश्वर में अभिषुयमान सोम वर्तमान है ॥ प्र० ७ (३) सु० ८।२

(१५८९) हे विश्वस्रष्टा ! परमेश्वर ! जगत की वृद्धि करते हुए आप, अपने आप आधान किए हुए, विस्तृत अग्निकुण्ड में हव्य से अपने आप यजन करते हैं। साधारण अल्प अज्ञानी मनुष्य इस विषय में सर्वतः भूलते हैं, तो भूलो, परन्तु हम में यज्ञवाला पुरुष पण्डित जानने वाला और आप के यज्ञ को देखकर स्वयं यज्ञ करने वाला होवे ॥ प्र० ७ (३) सू० ९।१

(१५९०) व्याख्या नं० ४६२ में हो चुकी है ॥ प्र० ७ (३) सू० १०।१

(१५९१) जिस प्रकार रमणीय सूर्य का गोला रथ के समान पूर्वदिशा से क्रमपूर्वक अपनी किरण रूप शस्त्रास्त्रों सहित मानो रोग शोक अन्धकारादि शत्रुओं के नाशार्थ और पृथ्वी आदि लोकों के धारण आकर्षणादि के लिए जाता है, इसी प्रकार राजा को भी दिग्विजयार्थ दुष्ट शत्रुओं के निवारण और धर्मात्माओं के धारण पालन-पोषण के लिए वज्रादि शस्त्रास्त्रों सहित गमन करना चाहिए, जिससे हर्ष दिलाने वाले जो बढ़ाने वाले स्तुति वचनों द्वारा प्रोत्साहित राजा के शस्त्रास्त्र संग्रामों में व्यर्थ न जाएं ॥ प्र० ७ (३) सू० १०।२

(१५९२) सोम ! तू उस व्यापारियों के धन को लब्ध करता है। प्रसिद्ध है कि यज्ञ को धारने वाली माता के समान पोषण करने वाली सूर्य की किरणों से अपने घर-घर में चारों ओर से भली प्रकार शुद्धि करता है। जिस यज्ञ में कर्म के धारण करने वाले यजमान लोग आराम करते हैं वह सामवेद गान जैसे दूर से सुनाई देता है, इसी प्रकार दूर से तेरी किरणें भी शुद्धि करती हैं। तू तीनों लोकों को धारण करने वाली प्रकाशमान किरणों से अन्न को धारित कराता है, तू प्रकाशमान हुआ अन्न को धारित कराता है ॥ प्र० ७ (३) सू० १०।३

(१५९३) हे सर्वजगत पोषक ! पूषन, परमेश्वर ! हमारी रक्षा के लिए गौ देने वाली और घोड़े देने वाली और अन्न वा दल देने वाली बुद्धि को कीजिए ॥ प्र० ७ (३) सू० ११।१

(१५९४) हे सत्य बल से बलिष्ठो ! मरुतो, ऋत्विजो ! स्तुति से तुम्हारी सेवा करने वाले, स्तुति के मन्त्रोच्चारण में जिस को पसीना आ गया।

उस स्तोता यजमान के काम को लब्ध कराओ ॥ प्र० ७ (३) सू० १२।१

(१५९५) जो अमर ईश्वर के पुत्र हैं, वे हमारी वाणियों को सुनें, और हमारे लिए सुन्दर सुखदायक हों ॥ प्र० ७ (३) सू० १३।१

(१५९६) हे प्रकाशमान ! शुद्ध पवित्र दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोक ! तुम दोनों की उपप्रशंसा के लिए बाहुल्य से उपप्रशंसा को, हम सर्वतः उत्कर्ष से सम्पादन करते हैं ॥ प्र० ७ (३) सू० १४।१

(१५९७) हे द्यौ ! हे पृथ्वी ! तुम दोनों एक दूसरे को अपनी देह पिण्ड से पवित्र करती हुई अपने बल से विराजमान हो, तथा सदा यज्ञ को ले चलती हो ॥ प्र० ७ (३) सू० १४।२

(१५९८) महती द्यावापृथ्वी प्राण को साधती है। और अन्न को तिराती है और भरती है और यज्ञ को सर्वतः आश्रय करती है ॥ प्र० ७(३) सू० १४।३

(१५९९) व्याख्या नं० १८३ में हो चुकी है ॥ प्र० ७ (३) सू० १५।१

(१६००) हे शूरवीर ! धनों के पति ! राजन् वा परमेश्वर ! जिस स्तुतिरूप वाणियों से वहन किये हुए तेरी स्तुति की जाती है, उस तेरी विभूति प्यारी और सच्ची होवे अर्थात् लोक में परमेश्वर की विभूति विश्वास में आवे ॥ प्र० ७ (३) सू० १५।२

(१६०१) हे बहुकर्मन ! इन्द्र ! राजन वा परमेश्वर ! आप इस संग्राम में वा कामक्रोधादि शत्रुओं के संग्राम में हमारे ऊपर रहें, जिससे संग्राम के सम्बन्धी कार्यों में मैं और आप सम्मति कर सकें अर्थात् राजा की सम्मति से तदनुकूल योद्धा लड़ें और ईश्वर पक्ष में परमेश्वर की सम्मति वेद द्वारा लेकर कामादि शत्रु गण का सामना करें ॥ प्र० ७ (३) सू० १५।३

(१६०२) व्याख्या नं० ११७ में हो चुकी है ॥ प्र० ७ (३) सू० १६।१

(१६०३) यज्ञकुण्ड रूप गर्त के विसर्जन करने पर आकाश में निषिक्त किये हुए रस को मेघ सर्वतः बर्षाते हैं ॥ प्र० ७ (३) सू० १६।२

(१६०४) ऊँचे चक्र वाले, चारों ओर से नमे हुए नीचे किनारों के

अलपद यज्ञकुण्ड वा महावीर पात्र को नम्रता से जल से धोते हैं ॥ प्र० ७ (३) सु० १८।३

(१६०५) परमेश्वर ! अतिबलवान तेरी मित्रता में हम किसी से न डरें, न थकें, तेरा कामना पूरक का बहुत सर्वतः स्तुति योग्य कर्म है। हम समीपस्थ मनुष्य को देखें ॥ प्र० ७ (३) सु० १७।१

(१६०६) हे मनुष्य ! वृष्टिकर्ता इन्द्र देव वा परमात्मा ! सीधी अनुकूल करवट को वर्तमान है और पानयोग्य सोम माक्षिक मिठाई शहद से सने हुए संस्कृत तैयार हैं। इस इन्द्र वा परमेश्वर का दान नहीं मारता, किन्तु सुखदायक ही होता है, दौड़ आ और सोम रस को पी ॥ प्र० ७ (३) सु० १७।२

(१६०७) व्याख्या नं० २५० में हो चुकी है ॥ प्र० ७ (३) सु० १८।१

(१६०८) वह परमेश्वर इन्द्र बहुत औषधियों ने अपना बल बनाया है। वह इसका बड़प्पन सत्य है विद्वानों के राज्य में अग्निष्टोमादि यज्ञों में उस बल की स्तुति करता हूं। परमेश्वर को असंख्य ऋषियों ने अपना बल बनाया है, इसलिए उस आत्मिक बल की प्रशंसा, स्तुति प्रार्थना प्रत्येक यज्ञ में करनी चाहिए ॥ प्र० ७ (३) सु० १८।२

(१६०९) जिस परमेश्वर का यह सब कार्यगण वेदविद्या रूप कोष का रक्षक भृत्य का सेवक वा भक्त और प्रापक है, उस स्वामी नियता वाणी के पिता परमेश्वर में छिपा हुआ भी वह वेद कोष का धन शुभ भक्त के लिए अवश्य प्रकट किया जाता है ॥ प्र० ७ (३) सु० १९।१

(१६१०) फुरतीले बुद्धिमान ऋत्विज मधुक्षीरादि वाले जल वर्षाने वाले अर्चनीय वा यजनीय परमेश्वर वा इन्द्र को पूजते वा यजन करते हैं, और चाहते हैं कि हमारे लिए धन विस्तृत हो, वीर्यवर्धक बल विस्तृत हो, हमारे लिये अभिषुयमान सोमरस विस्तृत हों ॥ प्र० ७ (३) सु० १९।२

(१६११) व्याख्या नं० ५७४ में हो चुकी है ॥ प्र० ७ (३) सु० २०।१

(१६१२) हरने ले चलने वाली किरणों वा आत्माओं के स्वामिन !

गीले सोम ! वा परमेश्वर ! देव ! अत्यन्त प्रकाशमान नरों के हितकारी सो आप हमारे लिए प्रकाशार्थ हों। जैसे मित्र के लिए मित्र होता है ॥ प्र० ७ (३) सु० २०।२

(१६१३) हे सोम वा परमेश्वर ! तू सनातन पुरानी मित्रता को कर, और देवविरोधी किसी भक्षक राक्षस को हम से दूर कर, बाधकों को तिरस्कृत करता हुआ तू हटा, और भीतरबाहर दो भेद रखने वाले कपटी को वर्जित कर ॥ प्र० ७ (३) सु० २०।३

(१६१४) व्याख्या नं० ५६४ में हो चुकी है ॥ प्र० ७ (३) सु० २१।१

(१६१५) भारी वृष्टि जैसे अन्न उत्पन्न करती है, तद्वत सोम भी वर्षा द्वारा अन्न को उत्पन्न करता है, शुद्धिकारक है, सर्वत्र जीर्णता को नष्ट कर यौवन उत्पन्न करता है, फुर्ती को फैलाता है। इस प्रकार के गुणों से सोम की प्रशंसा वा कीर्ति करना चाहिए ॥ प्र० ७ (३) सु० २१।२

(१६१६) नव ग्रहों में सबसे अग्रगामी राजा प्रकाशमान जलमय सोम चन्द्रलोक वर्णित किया जाता है। तिथियों का बनाने वाला है, क्योंकि चन्द्रमा की कलाओं के घटने-बढ़ने के अधीन सब तिथि हैं। लोकों में परमेश्वर ने रखा है, जल का टपकाने वाला है। हरने वाला है, उत्तम दर्शनीय है, इसी से लोक में भी दर्शनीय मुखों को चन्द्रमा की उपमा दी जाती है। गीली किरणों वाला होने से बलवान है। सूर्य की ज्योति जिस का रमणीय रथ वा मार्ग है। धनों को वर्षाता है, रहने योग्य है ॥ प्र० ७ (३) सु० २१।३

सत्रहवाँ अध्याय

अष्टमः प्रपाठकः

(१६१७) बल के पुत्र अग्ने ! सब आहवनीयादि अग्नियों के साथ इस यज्ञ को और इस वेदपाठ को सङ्गत वा स्वीकृत कर और अन्न को धारित करा ॥ प्र० ८ (१) सु० १।१

(१६१८) अग्ने ! यद्यपि सनातन विस्तृत यज्ञ से, हम प्रत्येक देवता का यजन करते हैं, परन्तु हव्य को तुझ में ही होमा जाता है अर्थात् अग्नि देवता में ही होम करके सब देवों का यजन होता है ॥ प्र० ८ (१) सू० १।२

(१६१९) प्रजापालक होम का साधक दीप्त वरणीय अग्नि हमारा प्यारा हो, तथा हम याज्ञिक लोग भी उत्तम अग्नि के आधान करने वाले परस्पर प्यार करने वाले हों ॥ प्र० ८ (१) सू० १।३

(१६२०) मनुष्योपलक्षित प्राणिमात्र के लिये तुम्हारे लिये सब से ऊपर विराजमान इन्द्र देव को हम याज्ञिक लोग अग्नि दूत द्वारा बुलाते हैं, जिससे हमारा असाधारण वह इन्द्र हो जावे ॥ प्र० ८ (१) सू० २।१

(१६२१) हे एक साथ दान करने वाले ! वृष्टि करने वाले ! इन्द्र ! अप्रवृष्य वह तू हमारे इस अन्न को हम याज्ञिकों के लिये उघाड़ ॥ प्र० ८ (१) सू० २।२

(१६२२) शक्तिमान जिस को रोकने को कोई बोल नहीं सकता वृष्टि करने वाले इन्द्र मनुष्यों और तदुपलक्षित अन्य प्राणियों को बल वा विद्युत रूप से प्राप्त होता है। जैसे उत्तम गति वाला सांड गौवों के यूथों को प्राप्त होता है, तद्वत ॥ प्र० ८ (१) सू० २।३

(१६२३) व्याख्या मं० ४१ में हो चुकी है ॥ प्र० ८ (१) सू० ३।१

(१६२४) हे परमेश्वर ! वा अग्ने ! तू अनिवार्य अनेक साथ साथ वर्तमान पालन के साधनों से हमारे पुत्र पौत्र को पालित करता है। दैवी कोपों और आसुरी कुटलताओं को हम से वर्जाता है ॥ प्र० ८ (१) सू० ३।२

(१६२५) हे यज्ञ ! तेरा सर्वत्र विख्यात नाम क्या ही कहा जावे ? वह तो वर्णन से बाहर है। जो कि तू कहता है कि मैं किरणों में प्रविष्ट हूं। इस किरणगत रूप को हम याज्ञिकों से मत छिपा, जो कि तू दुष्ट शत्रु समान नाना रोगों के साथ संग्राम में विलक्षण रूप वाला होता है ॥ प्र० ८ (१) सू० ४।१

(१३२६) इस कारण हे किरणव्याप्त यज्ञ ! तेरे प्रशंसनीय गुणों को जानता हुआ मैं हव्यों का स्वामी यजमान आज यज्ञ के दिन हव्य पदार्थ को प्रशंसापूर्वक होमता हूं। उस प्रसिद्ध बलवान इस पृथ्वी के दूर रहते हुए तुझ यज्ञ को निर्बल वा कृश मैं प्रशंसा करता हूँ ॥ प्र० ८ (१) सू० ४।२

(१६२७) हे सूर्यकिरणों में व्याप्त । यज्ञ ! तेरे मुख में "वषट्कार-पूर्विका" आहुति करता हूं। उस वषट्पूर्वक मेरे घृत आदि को तू स्वीकृत कर। मेरी सुन्दर स्तुतियुक्त वाणियाँ तुझ यज्ञ को बढ़ावें। तू कल्याणों भलाइयों से सर्वदा हमारी रक्षा कर ॥ प्र० ८ (१) सू० ४।३

(१६२८) दिव्यगुण युक्त पवन ! देव यजनों में मुख्य मधुर हव्य को तेरे लिये पहुँचाता हूं। वीर्यवान स्पृहणीय तू सोमपानार्थ वेगरूपी अश्व से आ ॥ प्र० ८ (१) सू० ५।१

(१६२९) हे वायु ! तू और बिजली, दोनों इन सोम रसों के पान के योग्य हो। सोम तुम दोनों को प्राप्त होते हैं। निश्चय जैसे नीचे स्थान को जल साथ जाते हैं ॥ प्र० ८ (१) सू० ५।२

(१६३०) हे वायु ! तू और बिजली दोनों बल के दो पति दो बलवान अपने नियुत्वत संज्ञक वेगरूप अश्व वाले दोनों एक ही वेगरूप रथ पर चढ़ कर हमारी रक्षार्थ सोमपानार्थ आओ ॥ प्र० ८ (१) सू० ५।३

(१६३१) रात्रि के पश्चात् प्रातःकाल में अभिषुत सोम बलों को व्यापता है। जब कि सूर्य की प्रेरणादि क्रियायें हरे सोम को जाने को प्रेरित करती हैं ॥ प्र० ८ (१) सू० ६।१

(१६३२) इस सोम के उस रस को हम शोधते हैं, जो रस हृष्टि-पुष्टि कारक इन्द्र से अत्यन्त पिया जाता है। और सूर्य किरणें और विद्वान ऋत्विज लोग जिस रस को निश्चय पूर्वकाल में और अब भी मुखों से पीते हैं ॥ प्र० ८ (१) सू० ६।२

(१६३३) शोधे हुए उस सोम रस को पुराणी सनातनी गीत रूप देव वाणी से चारों ओर बैठे ऋत्विज स्तुत वा प्रशंसित करते हैं। और वायु, सूर्य पूषा, अर्यमा आदि देवताओं के नामों को धारती हुई ऋत्विजों के

हाथों की अंगुलियाँ समर्थ करती है ॥ प्र० ८ (१) सु० ६।३

(१६३४) व्याख्या नं० १७ में है ॥ प्र० ८ (१) सु० ७।१

(१६३५) बल वेग से विस्तृत और उत्कृष्ट मति वाला, वृष्टिकारक हमारा पुत्र तुल्य अरणियों में उत्पादित वही होम किया हुआ अग्नि हमारे लिये सुमुख होवे ॥ प्र० ८(१) सु० ७।२

(१६३६) सर्वत्र गमन वाला, वह होम किया हुआ अग्नि, समीपस्थ और दूरस्थ भी पापी दुष्ट शत्रु मनुष्यादि प्राणी से हम को सदैव नितरां रक्षा करता है ॥ प्र० ८ (१) सु० ७।३

(१६३७) व्याख्या नं० ३११ में है ॥ प्र० ८ (१) सु० ८।१

(१६३८) विद्युत वा वायु विशेष ! द्युलोक और पृथ्वी तेरे वेगवान बल के अनुकूल चलती है, जैसे दो मातायें बच्चे का अनुगमन करती हैं। जिस कारण मेघ को तू मार गिराता है, उस कारण तेरे कोप के सामने सब स्पर्धा करने वाली मेघसेनायें शिथिल पड़ जाती हैं॥ प्र० ८ (१) सु० ८।२

(१६३९) व्याख्या नं० १२१ में हो चुकी है॥ प्र० ८ (१) सु० ९।१

(१६४०) जब कि इन्द्र सोमरस के हर्ष में प्रकाशमान आकाश को उतरता है, तब मेघसैन्य को भिन्न करता है ॥ प्र० ८ (१) सु० ९।२

(१६४१) इन्द्र अङ्गाराकार सूर्यादि पिण्डों से छिपी हुई किरणों को प्रकट करता हुआ उद्गत करता है और मेघ की सेना को नीचे गिराता है ॥ प्र० ८ (१) सु० ९।३

(१६४२) व्याख्या नं० १७० में की है ॥ प्र० ८ (१) सु० १०।१

(१६४३) युद्धकुशल जिसके सामने कोई न चढ़े, सोम पीने वाले, होते हुए, अतएव शत्रुओं से अजित, सेना के नेता, जिसका कर्म रोका न जा सके, ऐसे राजा का आह्वान करो ॥ प्र० ८ (१) सु० १०।२

(१६४४) हे ऋचा में वर्णित स्तुति के अनुरूप ! राजन ! हमारे लिये धनों को लाकर बहुत दो, तथा शत्रुओं से लाये रत्नादि धन में हमें रक्षित करो ॥ प्र० ८ (१) सु० १०।३

(१६४५) हे इन्द्र ! वा राजन ! वा भौतिकेन्द्र देव ! तेरा वह प्रसिद्ध भारी तुझ ईश्वर से शोभित, वा तुझ राजा के चिह्न, वा तुझ इन्द्र देव के दिये बल और कर्म वा पुरुषार्थ को और तेरे उत्तम ग्रहण साधन शस्त्रास्त्रादि को धारणवती बुद्धि पैनाती है ॥ प्र० ८ (१) सु० ११।१

(१६४६) हे इन्द्र वा राजन ! वा भौतिकेन्द्र देव ! तेरे पुरुषार्थ और यश को द्युलोक और पृथ्वी लोक बढ़ाता है। तुझ को नदी समुद्रादि के जल और पर्वत प्रसन्न करते हैं ॥ प्र० ८ (१) सु० ११।२

(१६४७) हे इन्द्र ! विष्णु नामक, मित्र संज्ञक और वरुणरूप देव जो वायुभेद है, महान प्राणियों के निवास का हेतु तुझ इन्द्र की प्रशंसा करता है। मरुद्गणों का बल भी तेरे पीछे तृप्ति करता है। प्र० ८ (१) सु० ११।३

(१६४८) व्याख्या नं० ११ में हो चुकी है ॥ प्र० ८ (१) सु० १२।१

(१६४९) हे अग्ने ! हमारे लिये गौवें ढूंढने को बहुत धन को भली प्रकार परोसते पहुँचाते हो, सो तुम बाहुल्य करने वाले हमारे लिये भी बाहुल्य करो ॥ प्र० ८ (१) सु० १२।२

(१६५०) हे अग्ने ! हम को संग्राम के बीच में मत छोड़ें, जैसे भार ले चलने वाला भार को निर्दिष्ट स्थान से बीच में ही नहीं छोड़ देता, तद्वत । शत्रु समूह को भली प्रकार जीत कर धन को भली प्रकार जीत ॥ प्र० ८ (१) सु० १२।३

(१६५१) व्याख्या नं० १२७ में हो चुकी है ॥ प्र० ८ (१) सु० १३।१

(१६५२) इन्द्र=विद्युत रूप वृष्टिदेव गर्जने से जगत को कम्पाने वाले मेघ मण्डल के उच्च भाग रूप शिर को वृष्टिकारक बहुत धार वाले प्रहार से अनेक प्रकार भी छिन्न-भिन्न करता है ॥ प्र० ८ (१) सु० १३।२

(१६५३) इन्द्रदेव अपने बल से दोनों लोक द्यु और पृथ्वी को मसलता है, जैसे चमड़े को मसलते हैं, यह इस इन्द्र का बल चमक रहा है ॥ प्र० ८ (१) सु० १३।३

(१६५४) सुन्दर ज्ञानवती धनवती रमणीय सूनृता सच्ची वाणी प्रवृत हुई, यह अध्याहार शेष है ॥ प्र० ८ (१) सू० १४।१

(१६५५) हे प्रत्येक वस्तु में समान रूप से वर्त्तमान ! वर्षाकारक सूर्य ! इन सुखदायक धुरे में जुड़ने योग्य घोड़ों के समान सीधी और तिरछी किरणों को व्याप कर, प्राप्त हो के ये दोनों प्रकार की किरणें पास जाती हैं। सीधी तिरछी के भेद से दो प्रकार की किरणें सूर्य से संगत हैं, उन दोनों से सूर्य की धूप हमें प्राप्त होती रहे, यह भाव है ॥ प्र० ८ (१) सू० १४।२

(१६५६) हे मनुष्यो ! दश अंगुलियों से चलाता हुआ सा, सूर्य इन्द्र जल भरे आकाश के बीच में स्थित है, सो तुम शिर ढकने के छत्रों को रच लो ॥ प्र० ८ (१) सू० १४।३

अठारहवाँ अध्याय

(१६५७) व्याख्या नं० १२६ में हो चुकी है ॥ प्र० ८ (२) सू० १।१

(१६५८) सूर्य की सीधी-तिरछी दो प्रकार की किरणें जो सूर्य के घोड़े हैं, सूर्य को हमारे किये यज्ञ तक पहुँचाती हैं, जो कि वेद मन्त्रों में वैसा वर्णन है, अतः उन मन्त्रों को यज्ञ में उस समय पढ़ा जाता है और सूर्य उन वेदवाणियों का संविभागपूर्वक सेवक अनुकूलवर्ती है ॥ प्र० ८ (२) सू० १।२

(१६५९) अभिषुत सोम को पीने वाला, मेघ के मारने गिराने वाला असंख्य प्रकार रक्षा करने वाला इन्द्र इससे दूर ही न जावे, किन्तु समीप आवे, और नियम में रखे ॥ प्र० ८ (२) सू० १।३

(१६६०) व्याख्या नं० १६७ में हो चुकी है ॥ प्र० ८ (२) सू० २।१

(१६६१) हे परमेश्वर (वृष्टिकर) ! इन्द्र ! तू बड़प्पन से सोम के भोजन को सर्वतः व्याप कर वर्तमान है, जो सोम तेरे उदरों में है ॥ प्र० ८ (२) सू० २।२

(१६६२) हे इन्द्र ! तेरी कुक्षिरूपा पेट के लिए सोमरस पर्याप्त हो ! हे मेघनाशक ! सोम तीनों लोकों के लिये पर्याप्त हो ॥ प्र० ८ (२) सू० २।३

(१६६३) व्याख्या नं० १५ में देखें ॥ प्र० ८ (२) सू० ३।१

(१६६४) गुणों में बड़ा जो तोला नहीं जा सकता, धुवाँ जिसकी ध्वजा है, बहुत आह्लादकारक वह अग्नि बुद्धि और बल के लिये हम को प्रेरित करे ॥ प्र० ८ (२) सू० ३।२

(१६६५) यद्यपि जड़ अग्नि में श्रवण नहीं हो सकता, परन्तु वैदिक गुण वर्णन (स्तुति) के समान अग्नि की अनुकूलता होना ही श्रवण समझना चाहिए ॥ प्र० ८ (२) सू० ३।३

(१६६६) व्याख्या नं० ११५ में हो चुकी है ॥ प्र० ८ (२) सू० ४।१

(१६६७) ८ वसुओं में एक इन्द्र (सूर्य) इन्द्रियों को जगाने की शक्ति वाले बल के दान को नहीं रोकता, जबकि वेद मन्त्रोक्त स्तुतियों को स्वीकार करे। जबकि सूर्य हमारी चाही बातों के अनुकूलवर्ती हो, तो वह सब इन्द्रियों की शक्तिरूप बल प्रदान में कमी नहीं करता ॥ प्र० ८ (२) सू० ४।२

(१५६८) बहुत हिंसा करने वाले अयाज्ञिक पुरुष के गौओं भरे वाड़ा को दुष्ट शत्रु विनाशक इन्द्र निश्चय प्रकर्ष से जावे और प्रजा वा बुद्धियों को रोक देवे। जो पौराणिक मानते हैं कि १४ इन्द्र के समय तक एक इन्द्राणी रहती है, उनको इस मन्त्र के शचीभिः इस बहुवचन से विरोध जाता है ॥ प्र० ८ (२) सू० ४।३

(१६६९) व्याख्या नं० २२२ में हो चुकी है ॥ प्र० ८ (२) सू० ५।१

(१६७०) जो किसी से मारा नहीं जा सकता, जो सब लोक लोकान्तरों का रक्षक है, उस व्यापक ईश्वर ने तीन लोकों को विक्रान्त किया हुआ है। इस कारण अग्निहोत्रादि धर्म कर्मों को वेद द्वारा पोषण करा रहा है ॥ प्र० ८ (२) सू० ५।२

(१६७१) हे मनुष्यो ! व्यापक अदृश्य भी परमेश्वर के कर्मों को देखो, जिन कर्मों की सहायता से मनुष्य धर्मकर्मों को अनुष्ठान की रीति से करता है और वह विष्णु जीवात्मा का योग्य हितकारी मित्र है ॥ प्र० ८ (२) सू० ५।३

(१६७२) विद्वान ज्ञानी लोग विष्णु व्यापक अदृश्य परमात्मा के भी उस अति सूक्ष्मतम स्वरूप को सदा देखते हैं, अनुभव करते हैं, जैसे पसारी हुई आँख आकाश में सब कुछ देखने योग्य दृश्य को देखती है ॥ प्र० ८ (२) सू० ५।४

(१६७३) जो विष्णु का सूक्ष्मतम स्वरूप है उसको ऋतंभरा प्रज्ञा वाले विशेष करके स्तुतिपूर्वक भजन में तत्पर स्तुति के शब्द और अर्थ ज्ञान में प्रमाद न करके जागने वाले योगी जन दूसरों के लिए प्रकाश करते हैं, उपदेश द्वारा जताते है ॥ प्र० ८ (२) सू० ५।५

(१६७४) परमेश्वर ने जिस कारण पृथ्वी के ऊपर उच्च प्रदेश में भी विशेष करके व्याप्त किया हुआ है, इस कारण परमेश्वराऽधिष्ठिता से पृथ्वी आदि लोक-लोकान्तर हमारी रक्षा करें ॥ प्र० ८ (२) सू० ५।६

(१६७५) व्याख्या नं २८४ में देखें ॥ प्र० ८ (२) सू० ६।१

(१६७६) हे इन्द्र ! ये वेदोक्त कर्मकाण्डी स्तोता आदि ऋत्विज लोग धान्यादि धन चाहते हुए तेरे लिए सोम अभिषुत हो जाने पर ही साथ बैठते हैं, जैसे शहद के निमित्त मक्खियाँ, तुझ इन्द्र आश्रय में अपनी कामना को समर्पित कर देते है जैसे रथ में पाँव रखते है ॥ प्र० ८ (२) सू० ६।२

(१६७७) हे मनुष्यो ! वृष्टिकारक वायुभेद के लिये सनातन मनन योग्य वेद मन्त्र को बोलो, इससे उसकी स्तुति होती है, सत्यवेद की सनातन बृहतीछन्द ऋचाओं को स्तुत करो—पढ़ो । इससे तुम में भी स्तुति करने वाले की धारणावती बुद्धियें इन्द्र से रची जाती है ॥ प्र० ८ (२) सू० ७।१

(१६७८) वृष्टि का हेतु वायुदेव बहुत धान्यादि धनों को भली प्रकार प्राप्त करावे, और सूर्य के प्रकाश को भली प्रकार प्राप्त करावे । पवित्र निर्मल वीर्यकारक पदार्थ भली प्रकार प्राप्त करावें । दुग्ध घृतादि गौ के पदार्थों सहित सोम रस इन्द्र देव को भली प्रकार हृष्ट-पुष्ट करते हैं ॥ प्र० ८ (२) सू० ७।२

(१६७९) व्याख्या नं० १३३१ में देखें ॥ प्र० ८ (२) सू० ८।१

(१६८०) हे विद्वानो ! मित्रो ! बहुत दीप्तिमान बलदायक सुगन्ध-

युक्त, बलदायक अन्नयुक्त उस सोम को तुम और हम सब पीवें, संभजन करें ॥ प्र० ८ (२) सू० ८।२

(१६८१) व्याख्या नं० ५५२ में हो चुकी है ॥ प्र० ८ (२) सू० ८।३

(१६८२) व्याख्या नं० २८० में हो चुकी है ॥ प्र० ८ (२) सू० ९।१

(१६८३) हे हरणशील व्याप्ति वाले इन्द्र परमेश्वर ! जो लोग प्यारे धनों को दान करते हैं, उन धनवान यजमानों को दुष्ट शत्रु विनाशक यज्ञों में प्रेरित करो, और हम तुम्हारे प्रणीत वेद से विद्वानों के सत्संगपूर्वक उनके साथ सब पापों को पार हो जावें ॥ प्र० ८ (२) सू० ९।२

(१६८४) व्याख्या नं० ३८५ में देखें ॥ प्र० ८ (२) सू० १०।१

(१६८५) हे सूर्य किरणादि तेजों को स्थापक ! परमेश्वर ! तुम्हारी सनातन वेदोक्त स्तुति को कोई नहीं पाता, न तो बल से और न तेज से ॥ प्र० ८ (२) सू० १०।२

(१६८६) यश वा अन्न चाहने वाले हम बलों वा अन्नों के पालक वा स्वामी, निरन्तर होने वाले यज्ञों से हम को बहुत बढ़ाने वाले उस परमेश्वर इन्द्र को पुकारते हैं ॥ प्र० ८ (२) सू० १०।३

(१६८७) व्याख्या नं० १०९ में देखें ॥ प्र० ८ (२) सू० ११।१

(१६८८) हे भली प्रकार से भरण करने वाले ब्राह्मण! विद्वन ! तू इस सोम रस के साध्य यज्ञ के ले जाने वाले, बड़े दाता विचित्र प्रकाशमान, सनातन इस अग्नि को वा परमेश्वर को यज्ञ के लिए प्रकर्ष से स्तुत कर ॥ प्र० ८ (२) सू० ११।२

(१६८९) व्याख्या नं० ५१३ में देखिये ॥ प्र० ८ (२) सू० १२।१

(१६९०) बल चाहने वाले सांड घोड़े के समान वीर्यवान हर्षकारक वह सोम रस, मेधावी ब्राह्मण ऋत्विजों से, सूक्ष्म मेषरोम से बने दशापवित्रों को तिरछा करता हुआ छाना जाता है ॥ प्र० ८ (२) सू० १२।२

(१६९१) व्याख्या नं० २७२ में हो चुकी है ॥ प्र० ८ (२) सू० १३।१

(१६९२) इस परमेश्वर के प्रज्ञानों में हृदय दुःखदायक मार्ग रोकने वाला लुटेरा चोर भी सीधा हो जाता है । सर्वशक्तिमान परमेश्वर ! तू

हमारे इस स्तोत्र को स्वीकृत करता हुआ विचित्र बुद्धि वा कर्म से प्राप्त हो ॥ प्र० ८ (२) सु० १३।२

(१६६३) आकाश के प्रकाशक बिजली और अग्नि ! बलों वा संग्रामों में शत्रु को हरा सकते हो और पराजित करते हो, इस बात को तुम्हारा बल वीर्य उत्कृष्टता से बतलाता है ॥ प्र० ८ (२) सु० १४।१

(१६६४) व्याख्या नं० १५७६ में देखें ॥ प्र० ८ (२) सु० १४।२

(१६६५) व्याख्या नं० १५७६ में देखें ॥ प्र० ८ (२) सु० १४।३

(१६६६) व्याख्या नं० २६७ में देखें ॥ प्र० ८ (२) सु० १५।१

(१६६७) जैसे जंगली हाथी मदमाता निरंकुश स्वेच्छाचारी मद चुवाता घूमता है, उसे कोई निगृहीत नहीं करता, इसी प्रकार बल से अति बली इन्द्र जो वायु विशेष वर्षा करता हुआ स्वतन्त्र घूमता है, हम चाहते है कि हमारी सोमयज्ञ में प्राप्त होकर वह सोमाहुति ग्रहण करे ॥ प्र० ८ (२) सु० १५।२

(१६६८) जो उद्‌गीर्ण बल वाला मेघरूपी शत्रुओं से न पार पाया हुआ मेघों से युद्ध के लिए सन्नद्ध और दृढ़ होता है, वह यज्ञभाग-ग्राही इन्द्र यदि स्तुति प्रशंसा करने वाले की पुकार को सुने अर्थात् स्तुति के अनुकूलवर्त्ती हो जावे तो नहीं जावे, किन्तु आवे ॥ प्र० ८ (२) सु० १५।३

(१६६९) शुक्र (वीर्य) वाले गीले वा तर धोये हुए सोम सब वेद वचनों को अनुकूल करके अग्नि में छोड़े जाते है ॥ प्र० ८ (२) सु० १६।१

(१७००) सोम प्रकाशमान अन्तरिक्ष से सब ओर भूमि से ऊपर पर्वतों के शिखर पर वर्षते हैं, मेघ के साथ ॥ प्र० ८ (२) सु० १६।२

(१७०१) वेगवान श्वेत वर्ण शुभ्र उज्ज्वल शोध्यमान सोम सब हानिकारकों को नाश करते हुए अग्नि में छोड़े—होमे जाते हैं ॥ प्र० ८ (२) सु० १६।३

(१७०२) दुष्टों के बाधक, पाप को नाशक, समान जयशील, न हारने वाले, अन्न वा बल के अत्यन्त देने वाले, इन्द्र और अग्नि को होम वा तदर्थ आह्वान करता हूं ॥ प्र० ८ (२) सु० १७।१

(१७०३) व्याख्या नं० १५७३ में हो चुकी है ॥ प्र० ८(२) सु० १७।२

(१७०४) व्याख्या नं० १५७४ में हो चुकी है ॥ प्र० ८ (२) सु० १७।३

(१७०५) बल से मथ कर उत्पन्न किये हुए हे अग्ने ! रमणीय दर्शनीय तेरे प्रति हव्यरूप अन्न वाले हम यजमान वेद मन्त्रों को वेदी के समीप बैठकर उच्चारण करते हैं ॥ प्र० ८ (२) सु० १८।१

(१७०६) हे पावक ! स्वर्णतुल्य तेज वाले प्रदीप्त तेरे सुख को हम यजमान लोग भोगें, जैसे सन्तप्त लोग छाया के पास जाते हैं ॥ प्र० ८ (२) सु० १८।२

(१७०७) पावक ! तू आगे आये हुए दुष्ट जन्तु वा अन्य जो हो उस को भग्न और भस्म कर देता है। जो तू बलों के नाशक उद्‌गीर्णबल धनुर्धारी सा, और तीक्ष्णशृङ्ग वाले बैल सा वर्तमान है, कि जिसके सामने कोई ठहर नहीं सकता ॥ प्र० ८ (२) सु० १८।३

(१७०८) यज्ञवान सब के नेता सच्चे तेज के स्वामी निरन्तर गर्म अग्नि को हम चाहते हैं ॥ प्र० ८(२) सु० १९।१

(१७०९) जो अग्नि इस आकाश को तिरता हुआ सब ओर फैलता है, और बल से वश करने वाला, बसन्तादि ऋतुओं को उत्तम बनाता है अर्थात् उस उस ऋतु में अन्याधान करने से अग्नि उस उस ऋतु को सुधारता है ॥ प्र० ८(२) सु० १९।२

(१७१०) पूर्वकालस्थ और भविष्यत् प्राणी अज्ञानियों का चाहा हुआ सम्यक प्रकाशमान अद्वितीय अग्नि प्यारे तीनों लोकों में विराजता है ॥ प्र० ८(२) सु० १९।३

उन्नीसहवाँ अध्याय

(१७११) क्रान्तकर्मा अग्नि पुराणें जन्म से—सनातन स्वरूप से अपने तेजः स्वरूप को शोभित करता हुआ ब्राह्मण ऋत्विज से बढ़ाया जाता है ॥ प्र० ८(३) सु० १।१

(१७१२) बल को न गिराने वाले बलरक्षक बलवर्धक बलवान वृद्धिकारक लपटों वा तेजों वाले अग्नि को इस शोभन और हिंसारहित यज्ञ में बुलाता—आवाहन करता हूं ॥ प्र० ८(३) सु० १।२

(१७१३) हे अग्नि ! वह तू मित्रों से सत्कार पाने योग्य शुद्ध तेज से हमारे यज्ञ में अन्य देवों वायु आदि के सहित विराजमान होता है ॥ प्र० ८(३) सु० १।३

(१७१४) हे मेघ वाले ! सोम ! तेरे वेग दुष्ट प्राणी को नष्ट करते हुए उठते हैं, जो स्पर्धा करने वाली शत्रु सेना हम से द्वेषपूर्वक बाधा करती है, उनको बाधा करके हटा ॥ प्र० ८(३) सु० २।१

(१७१५) इस तेरे सेवन से आप्यायित बलवान निर्भय हृदय से निरा शत्रुसंहारी मैं रथ फंसने वाले संग्राम में और धन जहाँ निहित हो वहाँ, तेरी प्रशंसा करता हूं ॥ प्र० ८(३) सु० २।२

(१७१६) इस हमारे वर्त्ताव में आने वाले सोम के कर्म दुर्बुद्धि दुष्ट मनुष्य से धर्षणा नहीं किए जा सकते ; अतः जो दुर्बुद्धि उस सोम को द्वेष करता है, उसको बाधता है ॥ प्र० ८(३) सु० २।३

(१७१७) उस हर्षकारक हर्ष को वर्षाने वाले हरे बलवान सोम को प्रवाहों के निमित्त वर्षा करने वाले वायु विशेष के लिये होम द्वारा भेजते हैं ॥ प्र० ८(३) सु० २।४

(१७१८) व्याख्या नं० २४६ में है ॥ प्र० ८(३) सु० ३।१

(१७१९) सूर्य मेघ का भक्षक हिंसक है, चराचर के बल का भंग करने

वाला है, ग्राम-नगरादि और देहों को पुराना करने वाला विदीर्ण करने वाला है, आकाश मण्डल में मेघस्थ जलों का प्रेरक है। सीधी तिरछी दो प्रकार की किरणों रूपी घोड़ों के रथ का बैठने वाला है, सो इन्द्र अपने सर्वतोव्यापी उपताप वा गर्मी में दृढ़ पदार्थों को भी भग्न कर देता है ॥ प्र० ८(३) सु० ३।२

(१७२०) सूर्य जैसे गहरे समुद्रों को पुष्ट करता भरता है, वैसे ही यज्ञ को पुष्ट करता है। अच्छा गोपालक जैसे गौवों को पुष्ट करता है, वैसे सूर्य भूमियों का पोषण करता है। जैसे गौवें तृणादि भक्ष वा चोट को प्राप्त होती हैं, वैसे सूर्य किरणें यज्ञ से भाग लेती हैं; और जैसे छोटी नदियें गहरे जलाशय को प्राप्त होती हैं, वैसे सूर्य किरणगत सोमादि औषधियों के रस आकाश समुद्र को व्यापते हैं ॥ प्र० ८(३) सु० ३।३

(१७२१) व्याख्या नं० २५२ में हो चुकी है ॥ प्र० ८(३) सु० ४।१

(१७२२) हे यश वाले कर्मकर्त्ता ! इन्द्रियाधिष्ठातः जीवात्मन् ! सोम अभिषुत करके सोमभाग करने वाले यजमान के लिये धन के देने को तुझे सोमरस हृष्ट करें। इस यजमान के अधिषवण फलकों वा चमसों में अभिषुत किये हुए सोम रस को तू पीता है, और उस सोमरसोत्पन्न बड़े बल को धारता है ॥ प्र० ८(३) सु० ४।२

(१७२३) व्याख्या नं० २४७ में हो चुकी है ॥ प्र० ८(३) सु० ५।१

(१७२४) हे मनुष्यमात्र के हितकारी ! बसाने वाले, परमेश्वर ! तेरे उत्पन्न किये अन्न गेहूं आदि हमको कभी दुःख न दें, न मारें। तेरी की हुई रक्षायें दुःख न दें, और सब विद्याविधान हम मनुष्यों के लिये सर्वतः दीजिये ॥ प्र० ८(३) सु० ५।२

(१७२५) वह प्रकट होती हुई, मनुष्यों को सुमार्ग पर ले चलने वाली फलों को जनने वाली, अपनी बहिन रात्रि के अन्त में अन्धकार को निवारती और प्रकाश को फैलाती हुई, सूर्य वा द्युलोक की पुत्री के तुल्य उषा दीख रही है ॥ प्र० ८(३) सु० ६।१

(१७२६) प्राप्तवेला, बिजली सी चमत्कार वाली, अरुण वर्ण से उदय

होने वाली, किरणों की जननी, हितकारिणी, प्राण अपान की सखी है ॥ प्र० ८(३) सु० ६।२

(१७२७) हे उषा ! तू और भी प्राण अपानों की सहचरी है, और किरणों की जननी है, और विद्यादि धन की स्वामिनी है ॥ प्र० ८(३) सु० ६।३

(१७२८) व्याख्या नं० ११८ में हो चुकी है ॥ प्र० ८(३) सु० ७।१

(१७२९) जो, जिसकी माता समुद्र है वे, धनों के मन से तिराने वाले, कर्म से धन को लभाने वाले, प्राण अपान वा सूर्य चन्द्रमा दो देवता है उनकी प्रशंसा करता हूं ॥ प्र० ८(३) सु० ७।२

(१७३०) तुम दोनों प्राण अपानों का स्मरणीय वेग जिस कारण गर्म आकाश में ऊपर पक्षी गणों के साथ जाता है, अतः तुम्हारे महत्व मन्त्रों द्वारा कहे जाते हैं ॥ प्र० ८(३) सु० ७।३

(१७३१) हे हव्याग्नियुक्ते ! उषा ! प्रातः उठ कर तेरा सेवन और याग करने वाले हम लोगों के लिये आदरणीय उस धन को ला, जिससे हम पुत्र और पौत्र का धारण करें ॥ प्र० ८ (३) सु० ८।१

(१७३२) उषाकाल में उत्तम सुन्दर गौवें वा किरणें हों, उत्तम घोड़े वा प्राण हों, सुन्दर प्रकाश हो, प्यारी वाणी को मनुष्य, पशु-पक्षी आदि बोल रहे हों, उषा का यश हो रहा हो, ऐसे उषा वेला हो, जिससे धन धान्यादि सुख वृद्धिपूर्वक, अन्धकार का निवारण नित्य हुआ करे ॥ प्र० ८(३) सु० ८।२

(१७३३) हे हव्य अन्न पाई हुई ! प्रातर्वेला ! तू अपनी लाल किरणों को निश्चय जोत, फिर हमारे लिये सब सौभाग्यों को पहुँचा ॥ प्र० ८(३) सु० ८(३)

(१७३४) व्यापनशील वातपित्तादि दोषों के नाशक, समान मन रखने वाले प्राण अपान ! दोनों इन्द्रिय सामर्थ्य सहित तेजोयुक्त परिवर्त्ती अपने गमनागमन को हम युक्ताऽहार विहार वालों से अनुकूल वर्त्ताओ ॥ प्र० ८(३) सु० ९।१

(१७३५) प्रभात समय जाग उठने वाले मनुष्य इस लोक में सुखदायी, दोष शमन करने वाले, तेजस्वी मार्ग वाले, 'प्राण अपान वा प्राण उदान वायु

देवों को सोमादि उत्तम ओषधि रस पानार्थ आवाहन करके सेवन करें ॥ प्र० ८(३) सु० ९।२

(१७३६) हे अश्विनौ देवौ ! जो तुम दोनों द्युलोक से आरम्भ करके मनुष्यादि प्राणिवर्ग के लिये प्रकाश को इस प्रकार हमारे अनुभव में आई रीति से करते हो, वे तुम दोनों प्रशंसनीय बलदायक अन्नरस को हमारे लिए लाते हो ॥ प्र० ८(३) सु० ९।३

[अश्विनौ=दिन रात्रि,=सूर्य चन्द्रमा,=द्युलोक, पृथ्वी लोक]

(१७३७) व्याख्या नं० ४२५ में देखिये ॥ प्र० ८(३) सु० १०।१

(१७३८) अग्नि ही प्रजा के लिये बलयुक्त अन्नादि देती है, सब को देखने का सामर्थ्य देने वाली अग्नि (अग्नि) सुन्दर सर्वतोव्याप्त वरणीय तेज को प्राप्त कराती है । शोभन सोम से प्रसन्न की हुई अग्नि धनादि ऐश्वर्य के लिये ऋत्विजादिकों को अन्न ला कर देती है ॥ प्र० ८(३) सु १०।२

(१७३९) वह अग्नि, जो वसु है, जिसका वाणियां समागम करती हैं, शीघ्रगामी घोड़े वा प्राण समागम करते हैं, सुकुल शोभन जन्म वाले विद्वान समागम करते हैं उसको मैं प्रशंसित करता हूं, वह ऋत्विजादि को अन्न प्राप्त कराता है ॥ प्र० ८(३) सु० १०।३

(१७४०) व्याख्या नं० ४२१ में हो चुकी है ॥ प्र० ८(३) सु० ११।१

(१७४१) सुन्दर प्राप्ति वाली ! रमणीय स्वरूप वाली, अत्यन्त बलवती, सच्चे यश वाली, व्यापक, प्यारे शब्द वाली, द्युलोक वा सूर्य की पुत्री, उषा देवी ! जो पूर्व अन्धकार का नाश करती थी, वही तू अब भी अन्धकार की निवारक है ॥

प्रभातवेला की स्तुति के बहाने मनुष्यों और स्त्रियों को परमात्मा का उपदेश है कि जो लोग उषा काल में उठते हैं, वे बड़े धन-धान्यादि ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं, और जिन घरों में उषा के तुल्य गुणवती स्त्रियें होती है, वहां भी धन-धान्यादि की वृद्धि होती है । जैसे उषा का सुन्दर दर्शनीय जन्म सब को आह्लाद उत्पन्न कराता है, जैसे उषा काल में सब मनुष्य प्यारा शब्द करते हैं, जैसे उषा सब ओर विस्तृत होती है, और जैसे प्रकाशमान है, वैसे ही उत्तम स्त्रियों को भी बनना चाहिए ॥ प्र० ८(३) सु० ११।२

(१७४२) द्युलोक वा सूर्य की बेटी, उषा ! जो तू धनादि धारण करती हुई अब से पहले अन्धकार को हटाती थी, वही तू आज भी हमारे अन्धकार को मिटा ॥ प्र० ८(३) सु० ११।३

(१७४३) व्याख्या न० ४१८ में हो चुकी है ॥ प्र० ८(३) सु० १२।१

(१७४४) दोषों के उपक्षय करने वाली, तेज युक्त मार्ग वाली, सुन्दर सुख देने वाली, वर्षा से नदियों के प्रवाह चलाने वाली, मधुर मनोहारी, सूर्यचन्द्रो, वा प्राण उदानो, व प्राण अपानो ! तुम दोनों मुझे प्राप्त होवो, और मुझ यजमान के आवाहन को सुनो=स्वीकार करो । मैं यजमान सब अपनी विरोधी प्रजाओं को पार कर के तिरस्कृत कर सकूँ ॥ प्र० ८(३) सु० १२।२

(१७४५) रमणीय पदार्थों को धारण करते हुए सूर्यचन्द्रो वा प्राण अपानो ! तुम दोनों हम यजमानों को प्राप्त होवो । भयोत्पादको ! तेजयुक्त मार्ग वालो ! यज्ञ का सेवन करते हुए बलवानो ! आठ (८) वसुओं के अन्तर्गतो ! मनोहरी ! मेरे आवाहन को स्वीकार करो ॥ प्र० ८(३) सु० १२।३

(१७४६) व्याख्या न० ७३ में हो चुकी है ॥ प्र० ८(३) सु० १३।१

(१७४७) होम को सिद्ध करने वाला अग्नि वायु आदि देवों को यजन करने के लिए प्रदीप्त किया जाता=जगाया जाता है; प्रातःकाल में मन को प्रसन्न करने वाला मनभावना अग्नि लपट रूप से उठता है, प्रदीप्त अग्नि का प्रकाशमान बल (ज्वाला रूपी) दीखता है, सो यह बड़ा देव (अग्नि) अन्धकार से जगत को छुड़ाता है ॥ प्र० ८(३) सु० १३।२

(१७४८) जबकि यह अग्नि समूहात्मक जगत के रस्सीरूप से व्यापार के (बाँधने) रोकने वाले अन्धकार को निगलता है, खा जाता है, प्रकाश फैला देता है, शुद्ध अग्नि शुद्ध किरणों से प्रकट होता है, तभी दक्षिण हाथ से दक्षिणा के समान दान की हुई घृत की धारा बल चाहती हुई युक्त की जाती है=छोड़ी जाती है । ऊपर फैली हुई इस धारा को ऊपर को उठती हुई अग्नि जुहू नामक पात्रों से पीती है ॥ प्र० ८(३) सु० १३।३

(१७४९) ग्रहणक्षत्रादि ज्योतियों में यह उषा रूप ज्योति श्रेष्ठ उदय

होती है, व्याप्ति से, यह विचित्र प्रज्ञान उत्पन्न होता है, जैसे सूर्य से उत्पन्न गर्भ वाली भूमि प्रसव को प्राप्त हुई ओषधि आदि के जनने को गर्भाशय को रिक्त करती है, ऐसे ही रात्रि भी उषा के उत्पादनार्थ स्थान को रिक्त करती है ॥ प्र० ८(३) सु० १४।१

(१७५०) जब चमकते हुए सूर्य व दिन को उत्पन्न करने वाली चमकती हुई उषा आती है, तो रात्रि उस आती हुई उषा के स्थानों को अपने शेष आधे प्रहर में खाली कर देती है । इस प्रकार सूर्य के उदय अस्त के समय पीछे २ ये रात्रि और उषा घूमती रहती हैं । जब एक देश में दिन होता है तो उससे पश्चिम में उषा, और उषा के पश्चिम में रात्रि, इसी प्रकार आगे पीछे चक्र चलता रहता है । सूर्य को उषा का वत्स (पुत्र व बछड़ा) इसलिए कहा है कि गौ के पीछे बछड़े के समान आगे २ उषा और उसके पीछे-पीछे सूर्य चलता जान पड़ता है ॥ प्र० ८ (३) सु० १४।२

(१७५१) रात्रि वा उषा दोनों बहिनों का एक सा अनन्त मार्ग है । उस मार्ग को परमेश्वर की आज्ञा पालने वाली एक-एक पृथक्-पृथक् दोनों चलती हैं । मन को समान रखने वाली एक का रूप अन्धकार और दूसरी का प्रकाश, इस प्रकार परस्पर विरुद्ध रूप वाली, भली प्रकार से सींचने वाली रात्रि और उषा दोनों न तो लड़ती हैं और न ठहरती हैं, किन्तु निरन्तर चलती रहती हैं ॥ प्र० ८(३) सु० १४।३

(१७५२) प्रातः समयों का मूलरूप अग्नि प्रज्वलित हो कर चमकता है, यज्ञ करने वाले मेधावी ब्राह्मणों की देवकामा वाणी (वेद मन्त्र) उच्चारित होती है, सम्मुख आने वाले रम्य गति वाले प्राण और उदान वायु निश्चय पुष्टिकारक वृद्धिकारक यज्ञ को इस यज्ञदेश में भली प्रकार प्राप्त होते हैं ॥ प्र० ८(३) सु० १५।१

(१७५३) इस यज्ञ में प्रशंसित प्राण उदान वा सूर्यचन्द्र यज्ञ संस्कार से संस्कृत पुरुष को नहीं मारते, किन्तु रक्षा करते हैं । निश्चय समीप में अति शीघ्रगामी वे दोनों अश्विनों के दिन निकलते ही अपने रक्षण के साथ अत्यन्त आने वाले हैं, और; अन्धे के प्रति ज्ञानादि देने के लिए सुख को अत्यन्त ढुवाने वाले हैं ॥ प्र० ८(३) सु० १५।२

(१७५४) दोनों अश्विनो अब यज्ञ समय में नहीं किन्तु सायंकाल में, प्रातःकाल में, दिन के मध्याह्न काल में और कहाँ तक कहें सूर्य के उदय में, दिन भर और रात्रि में भी हमें प्राप्त हों । सोमादिपान विस्तृत है ॥ प्र० ८(३) सू० १५।३

(१७५५) चलने वाली अरुण वर्णा प्रकाशमाना, प्रकाश की जननी ही ये उक्त लक्षणों वाली उषा देवियाँ प्रकाश को सूर्य से खींचती हैं, और अन्तरिक्ष के पूर्व की ओर वाले अर्ध भाग में सूर्य को प्रकट करती हैं, पश्चिमार्ध में पृथ्वी की अपनी छाया का अन्धेरा रहता है । जैसे विजयी योद्धा लोग तलवार आदि शस्त्रों को सैकल करके पैनाते हुए हों, वैसे शस्त्र से चमकती हुई उषायें नित्य घूमती हैं ॥ प्र० ८(३) सू० १६।१

(१७५६) रक्तवर्ण वाली उषा की दीप्तियाँ स्वाभाविक रीति से उदय हो जाती हैं । और सुगमता से जुतने वाली शुभ्र उज्ज्वल गौवों के समान किरणों को जोतती हैं । और पूर्व के समान नियमानुसार उषा देवियाँ ज्ञानों को उत्पन्न कर देती हैं । उषःकाल में ही सब प्राणी स्वाभाविक नियम से ज्ञान को प्राप्त होते हैं । फिर अरुण वर्ण की वे चमकती उषा की किरणें प्रकाशमान सूर्य का आश्रय करती हैं अर्थात् सूर्य के साथ मिलकर एक हो जाती हैं ॥ प्र० ८(३) सू० १६।२

(१७५७) सुकर्मी सुदानी सोमाभिषवी यजमान के लिए सब ही अन्नादि को पहुँचाती हुई ज्ञान प्रकाश से नेता का काम करने वाली उषायें निवेश कराने वाले अपने तेजों से एक ही उद्योग से दूरस्थों को भी संस्कृत करती हैं ॥ प्र० ८(३) सू० १६।३

(१७५८) अग्नि होमार्थ प्रदीप्त किया गया और पृथ्वी से सूर्य उदय हुआ । आह्लादनी बड़ी उषा ने तेज से अन्धेरा मिटाया, और प्राण अपानों ने रथ को यात्रार्थ जोता । इतने ही दिव्य जगत् के प्रेरक सविता देव ने भिन्न २ जगत् को प्रवृत्त किया । कैसा चमत्कार है, देखिए और लाभ उठाइए ॥ प्र० ८(३) सू० १७।१

(१७५९) हे प्राणोदानो वा सूर्यचन्द्रो वा द्युलोक भूमिलोको ! जबकि

वर्षा करने वाले रमणीय रथ को तुम जोतते हो, तब हमारे बाहुबल को मधुर घृत वा जल से सींचते हो, बढ़ाते हो । हमारे ब्रह्मवर्चस तेज को सेनाओं में पुष्ट करो । शूरों के भागधेय धनों को पावें ॥ प्र० ८ (३) सू० १७।२

(१७६०) अनुकूल चलने वाला तीन पहिए का मधुर चाल का शीघ्रगामी घोड़ों का तीन जुवों वाला धनयुक्त सर्वसौभाग्य सम्पन्न अश्विनो का रथ चले, और हमारे दुपाये मनुष्यवर्ग में और चौपाये गौ आदि पशुवर्ग में सुख को लावे । अश्विनौ पद से प्राण और उदान वायुओं के ग्रहण करने में नाभि के तीन चक्र उसके तीन पहिये समझो । इडा, पिङ्गला और सुषुम्णा ३ नाड़ी ३ जुवे जानो । यदि सूर्य चन्द्र का ग्रहण करें, तो शीतकाल, ग्रीष्म काल, वर्षा काल भेद से दो-दो ऋतु के तीन मौसिमों को तीन चक्र गिनो, और दक्षिण उत्तर मध्यम गति भेद से ३ जुवे समझने चाहियें ॥ प्र० ८ (३) सू० १७।३

(१७६१) अगले मन्त्र में हरिपद देखने के प्रकरण से,—हे सोम ! सङ्गरहित तेरी धारायें अतुल अन्न को देती हैं, जैसे वर्षायें आकाश से अच्छी प्रकार होती हैं ॥ प्र० ८ (३) सू० १८।१

(१७६२) हरा सोम रस सब प्यारे कवितायुक्त वेद वचनों को सामने करता हुआ स्रुवादि होम पात्रों को चमकाता हुआ धूमरूप से सब ओर फैलता है ॥ प्र० ८ (३) सू० १८।२

(१७६३) सुकर्मा सोम ऋत्विज मनुष्यों से अत्यन्त शोधा जाता हुआ वसतीवरी संज्ञक जलों में रहता है । प्रकाशमान तेजस्वी सहित सा मदपूरित है और बिखरे पक्षी सा बसी है ॥ प्र० ८ (३) सू० १८।३

(१७६४) सोम ! अभिषुत किया जाता हुआ तू हमारे लिये आकाश के और पृथ्वी के सब धन अधिकता से ला दे ॥ प्र० ८ (३) सू० १८।४

बीसवाँ अध्याय

नवमो प्रपाठकः

(१७६५) वृष्टिकारक बलवान देवों को तुष्टि देने वाले अभिषुत इस सोम की धारें गगनमण्डल को सींचती हैं ॥ प्र० ६ (१) सू० १।१

(१७६६) बुद्धिमान विद्वान कर्मकर्ता अध्वर्यु आदि ब्राह्मण लोग वेद मन्त्रों से वर्णन करते हुए अभिषुयमाण ज्योति प्रशंसनीय रपटने चलने वाले सोम को शोधते हैं ॥ प्र० ६ (१) सू० १।२

(१७६७) हे पुष्कल धन ! प्रशंसनीय सोम ! अभिषुत किये जाते हुए तेरे तेज भली प्रकार सहन योग्य हैं । अतः आकाश को रस से पूर्ण कर दे ॥ प्र० ६ (१) सू० १।३

(१७६८) व्याख्या नं० ४३८ में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (१) सू० २।१

(१७६९) हे बलपते ! इन्द्र ! भली प्रकार वश करके बोलने वाले की सी वेदोक्त वाणियाँ तुझ को ही जाती हैं अर्थात् इन्द्र सूक्तों की प्रशंसा तुझ में ही चरितार्थ होती है ॥ प्र० ६ (१) सू० २।२

(१७७०) व्याख्या नं० ४५३ में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (१) सू० २।३

(१७७१) व्याख्या नं० ३५४ में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (१) सू० ३।१

(१७७२) आत्मिक बल वाले महात्मा का वर्णन करते हैं :—हे महाबल ! अतएव बहुपुरुषार्थयुक्त ! बाग्बलवन ! भाषण शक्तिमन ! बुद्धिमान ! तू सारे बड़प्पन से सर्वतः विस्तार को प्राप्त होता है ॥ प्र० ६ (१) सू० ३।२

(१७७३) बड़प्पन से बड़े जिस पूर्व कथोक्त महाबलादि लक्षण वाले तेरे दोनों हाथ पृथ्वी भर पर जाने वाले तेजस्वी शस्त्रास्त्र समूह को सर्वतः ग्रहण करते हैं, सो तू सर्वत्र विस्तार को प्राप्त होती है ॥ प्र० ६ (१) सू० ३।३

(१७७४) जो अग्नि निरन्तर चलने वाला क्रान्तदर्शी आकाशीय अश्व सा और बहुत रूप वाला, प्रकाशमान सूर्य सा है, वह मनुष्यों के मनभावी यज्ञ भूमि को प्रकाशमान करे ॥ प्र० ६ (१) सू० ४।१

(१७७५) दो अरणियों से उत्पन्न होने से द्विजन्मा, वा एक बार मन्थन से और दूसरी बार आधान पवमान इष्टि आदि संस्कार से जन्म होने कारण से द्विजन्मा, अथवा—द्युलोक भूलोक से उत्पत्ति के कारण से द्विजन्मा, अग्नि तीन प्रकाशमान पृथिव्यादि तीन लोकों वा गार्हपत्यादि ३ अपने भेदों को और सब लोकान्तरों को प्रकाशता हुआ, देवों का आवाहन करने वाला, उनका अत्यन्त यजन करने वाली अग्नि, चारों ओर प्रोक्षणी पात्रादिस्थ जलों के सहवर्ती यज्ञदेश में स्थित हो—स्थापित किया जावे ॥ प्र० ६ (१) सू० ४।२

(१७७६) जो यह द्विजन्मा है 'वह होम साधक अग्नि यश की इच्छा से सब वर्णीय श्रेष्ठ पदार्थों को धारण करता है । जो यजमान पुरुष इस अग्नि के लिये हव्य देता है, वह सुन्दर पुत्र वाला होता है ॥ प्र० ६ (१) सू० ४।३

(१७७७) व्याख्या ४२४ में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (१) सू० ५।१

(१७७८) फिर अग्ने ! तू भद्रपुरुष, चतुर और परोपकारी यजमान के सच्चे, बड़े, यश का नेता हो जाता है ॥ प्र० ६ (१) सू० ५।२

(१७७९) सूर्य सा ज्योति वाला तू हमारे इन मन्त्रों से वा हव्यों से अपने सब तेजों से हमारे लिए मन भावना और अनुकूल सम्मुख हो ॥ प्र० ६ (१) सू० ५।३

(१७८०) व्याख्या नं० ४० में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (१) सू० ६।१

(१७८१) अग्ने ! तू ही हव्य पहुँचाने वाला देवताओं का दूत, यज्ञों का नेता है । सो तू हम से सेवित हुआ प्राणोदानों, वा सूर्यचन्द्रों, वा द्युलोक पृथ्वी लोकों, वा दिन रात्रियों और उषा देवी के साथ मिला हुआ हम यजमानों में सुन्दर वीर्ययुक्त बड़े भारी अन्न वा यश को धारण करा ॥ प्र० ६ (१) सू० ६।२

(१७८२) व्याख्या नं० ३३५ में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (१) सू० ७।१

(१७८३) जो बल से शक्तिमान रक्तवर्ण उत्तम पक्ष वाला (सहायवान), विशाल देह वाला, शूरवीर, पुराना अनुभवी, दुर्ग वा किले से बाहर निर्भय रहने वाला हो, वह राजा जो प्रतिज्ञा करे वह सच हो, झूठ न हो। और चाहने योग्य धन को जीतेगा और देवेगा ॥ प्र० ९ (१) सु० ७।२

(१७८४) जो दिव्य बलशाली शूर लोग किये जाते हुए कर्म के महत्व से (पुरुषार्थ से) न कि प्रारब्ध के भरोसे उन्नति को प्राप्त करते है, और जिन शूरों से बलवान सेनापति वा राजा दुष्ट शत्रुगण के हननार्थ बाणादि वृष्टि करता है, इन्हीं वीरों से वीर्ययुक्त पौरुषों को सत्य व्यवहार में ग्रहण करता है ॥ प्र० ९ (१) सु० ७।३

(१७८५) व्याख्या नं० १७४ में हो चुकी है ॥ प्र० ९ (१) सु० ८।१

(१७८६) मित्र अर्यमा वरुण इन नामों वाले वायुभेद मरुत, दशापवित्र से शोधे हुए (१) द्रोणकलश (२) आधवनीय (३) पूतभृत इन तीन स्थानों में रखे जाने वाले ताजे अभिषुत सोम को पीते हैं॥ प्र० ९ (१) सु० ८।२

(१७८७) इन्द्र देव इस अभिषुत इन्द्रियों को शक्ति देने वाले सोम के सेवन को चाहता है, जैसे होता नाम वाला ऋत्विज प्रातः सेवन में सोम सेवन चाहता है ॥ प्र० ९ (१) सु० ८।२

(१७८८) व्याख्या नं० २७६ में हो चुकी है ॥ प्र० ९ (१) सु० ९।१

(१७८९) सूर्य के दृष्टान्त से राजा की प्रशंसा करते हैं— सूर्य ! तू सचमुच यश से बड़ा है, सचमुच ही देव सूर्य ! तू अन्य लोकों से बड़ा है, बड़ा होने से तू पृथ्वी आदि लोकों का पुरोहित है, असुरों का नाशक है, किसी से न नष्ट की जाने वाली सर्वत्र फैली ज्योति है ॥ प्र० ९ (१) सु० ९।२

(१७९०) व्याख्या नं १५० में हो चुकी है ॥ प्र० ९ (१) सु० १०।१

(१७९१) जो इन्द्र वा परमेश्वर मेघ वा पाप का अत्यन्त नाशक असंख्य कर्मों वाला है, वह दो प्रकार का जाना जाता है। वृत्रनाशादि उग्र कर्मों से उग्र, और जगद्रक्षादि शान्तकर्मों से शान्त। व्यापक किरणों से हमारे अभिषुत सोम को प्राप्त हो। ईश्वरपक्ष में—हम में से स्तुतिकर्ता भजन उपासक को व्यापक गुणों से प्राप्त हो ॥ प्र० ९ (१) सु० १०।२

(१६६२) मेघहन्ता तू ही इन अभिषूयमाण सोमों का पीने वाला है॥ ईश्वरपक्ष में—पापनाशक ! तू ही इन हमारे संस्कार किये हुए सौम्य चित्त के भावों का ग्राहक है। शेष पूर्व मन्त्र के समान है ॥ प्र० ९ (१) सु० १०।३

(१७९३) व्याख्या नं० ३२८ में है ॥ प्र० ९ (१) सु० ११।१

(१७९४) विद्वान ब्राह्मण बहुत विस्तृत बड़े परमेश्वर वा राजा के लिये सुन्दर प्रशस्ति को वेद द्वारा प्रकट करता है। बुद्धिमान जन उस परमेश्वर वा राजा के नियमों को नहीं तोड़ते ॥ प्र० ९ (१) सु० ११।२

(१७९५) हे मनुष्य ! तुरगादि बल वाले राजा वा सबको प्राप्त होने वाली है व्याप्ति जिसकी उस परमेश्वर के लिये, सब भाइयों को भली प्रकार सुशीलतादि सदाचार से बढ़ा। क्योंकि सब के राजा जिस का क्रोध किसी से न सहारा जाए वा न हटाया जावे, उस राजा वा ईश्वर को निश्चय करके प्रशंसा रूप वेद वचन शत्रुओं के तिरस्कार करने को धारित करते हैं अर्थात् तदानुकूलतया प्रवृत्त होते हैं ॥ प्र० ९ (१) सु० ११।३

(१७९६) व्याख्या नं० ३१० में हो चुकी है ॥ प्र० ९ (१) सु० १२।१

(१७९७) हे सर्वधनपते ! परमेश्वर ! इन्द्र ! मैं प्रतिदिन यज्ञादि परोपकार करने वाले, कहीं भी मिलने वाले जन के लिए, धनों को सर्वतः देऊँ ही। ऐसी बुद्धि कर दो, क्योंकि आप के अतिरिक्त कोई हमारा उत्तम बन्धु नहीं है और पालक भी नहीं है ॥ प्र० ९ (१) सु० १२।२

(१७९८) हे परमेश्वर ! इन्द्र ! जल भरे मेघ की ध्वनि गर्जना को सुनवाइये, अर्थात् भली प्रकार वर्षा कराइये। और आप की स्तुति करते हुए मेधावी ब्राह्मण की मति को चेताइये। इन हम से की हुई सेवाओं को बुद्धिस्थ सहायक होते हुए कीजिए ॥ प्र० ९(१) सु० १३।१

(१७९९) हे परमेश्वर ! मैं सेवक दुष्टों के नाशक तुम्हारी वेदोक्त दण्डाज्ञाओं को सह भी नहीं सकता, और योगिगम्य वा मेघसहायक आप की उत्तम स्तुति को नहीं जानता। किन्तु तुम्हारे असाधारण यश वाले नाम को अनेक प्रकार से कीर्तन करता हूं। वेद न पढ़े हुए प्राणियों को परमेश्वर के नाम स्मरण का माहात्म्य इस में कहा गया है ॥ प्र० ९ (१) सु० १३।२

(१८००) हे सर्वशक्तिमान ! इन्द्र ! परमेश्वर ! मनुष्य लोकों में तेरे उत्पादन बहुत हों, क्योंकि तुझ को विद्वान उपासक बहुत स्तुतिपूर्वक भजता है, पुकारता है । हम से समीप में वर्तमान तू देरी न कर, शीघ्र हमारी पुकार सुन ।। प्र० ९ (१) सु० १३।२

(१८०१) इन परमेश्वर वा राजा के लिए अर्थात् उसकी प्रसन्नतार्थ नगरों, सवारियों और बल सेना आदि को संस्कृत करो । वह पापियों का नाशक लोकों का उत्पादक वा वर्धक संग्रामों में कामादि वा पर वीरों के सामीप्य में भी मिले हुए शत्रुबल पर हमारा प्रेरक हम को चेताता है । जिस से अन्य दुष्टों की बुरी प्रत्यञ्चायें धनुषों पर चढ़ी हुई भी नष्ट हो जायें ।। प्र० ९ (१) सु० १४।१

(१८०२) हे परमेश्वर ! वा राजन ! वा वायुविशेष ! तू नीचे को प्रवाहित होने वाली नदी, नदों वा नहरों को उत्पन्न करने वाला है, क्योंकि मेघ को हनन करने व वर्षाने वाला है । इससे जलोपजीवी जगत वा प्रजावर्ग का पालन करता है । शत्रुरहित तू प्रकट होता है । उक्तगुण विशिष्ट तुझ को हम उपासित करते हैं ।। प्र० ९ (१) सु० १४।२

(१८०३) हे परमेश्वर ! वा राजन ! वा वायुविशेष ! जो हम को मारना चाहता है, उस हमारे शत्रु के लिये अस्त्र को फैंकने वाला है तू । हमारी सब कामना करने वाली अदाता शत्रुभूत प्रजायें नष्ट हों और बुद्धियाँ अच्छी हों । जो तेरी दात है, वह धन को देने वाली हो । अन्य समान है ।। प्र० ९ (१) सु० १४।३

(१८०४) हे हरणशील किरण रूप, वा बाण रूप, वा व्याप्तिरूप, वा प्राणरूप, अश्वों वाले इन्द्र ! तुझ धनी का स्तुति करने वाला उपासक धनवान होगा, क्योंकि तुझ से धनवान ऐश्वर्यवान का किसी अन्य का भी स्तोता अवश्य धनी हो जाता है, तब तेरे स्तोताओं का तो कहना ही क्या है ।। प्र० ९ (१) सु० १५।१

(१८०५) व्याख्या नं० ३२५ में हो चुकी है ।। प्र० ९ (१) सु० १५।२

(१८०६) हे इन्द्र ! तू हिंसक दुष्ट प्राणी के लिए हम को मत छोड़ ।

और मत तिरस्कार करते हुए के लिये छोड़, किन्तु हे बुद्धिभाण्डागार ! बुद्धियों से हमको शिक्षा दे ।। प्र० ९ (१) सु० १५।३

(१८०७) व्याख्या नं० ३४८ में हो चुकी है ।। प्र० ९ (१) सु० १६।१

(१८०८) यहाँ यज्ञदेश में इन अभिषवग्रावों की ओर भेड़िया भेड़ी को जैसे पीसता है । अतः हे स्वर्ग में बसाने वाले इन्द्र ! परमेश्वर ! सुख-दायी स्थान के राजा आपके सुख को प्राप्त करावे । सोमयाजी स्वर्ग पाते हैं, यह भाव है ।। प्र० ९ (१) सु० १६।२

(१८०९) हे इन्द्र ! सोमरस वाला सोमाऽभिषव साधन बड़ा शब्द करता हुआ अभिषव शब्द से तुझ को यहाँ यज्ञ में बुलावे । शेष पूर्ववत् ।। प्र० ९ (१) सु० १६।३

(१८१०) सोमरस ! अतिशय मधुर रस मक्षिकादि मिश्रित तू हर्ष उत्पन्न करता हुआ वायुविशेष वा राजा वा सूर्य के लिए शुद्धि कर ।। प्र० ९ (१) सु० १७।१

(१८११) अभिषुत किये हुए बुद्धितत्व-युक्त बुद्धिवर्धक वीर्यवान वीर्यवर्धक वे सोम इन्द्रनामक वायुविशेष को उत्पन्न करते व बढ़ाते हैं ।। प्र० ९ (१) सु० १७।२

(१८१२) रथों के समान वेगवान् यजमान के बल को चाहते हुए सोम देवों के भक्षणार्थ अग्नि में छोड़े=होमे जाते हैं ।। प्र० ९ (१) सु० १७।३

(१८१३) व्याख्या नं० ४६५ में हो चुकी है ।। प्र० ९(१) सु० १८।१

(१८१४) श्वेत! उज्ज्वल ! बुद्धितत्व के जगाने वाले अग्ने ! हम यजमान लोग, अत्यन्त यजनीय—दहकने वाले अङ्गारों वालों में बड़े तुझ को मननशील ब्राह्मण ऋत्विजों के साथ मन्त्रों से हवन करते हैं । बैठने वाली प्रजायें मनुष्यों के होता—सर्वतः गतिमान द्युलोक वा सूर्य के समान चमकीले केशों सी किरणों वाले—वर्षा करने वाले जिस अग्नि को स्वर्गादि अभिमत फल प्राप्ति के लिये बाहुल्य से रक्षा करें ।। प्र० ९ (१) सु० १८।२

(१८१५) यह अग्नि ही विशेष प्रकाश वाले बल से प्रकाशमान हुआ बहुत ही द्रोह करने वाले प्राणियों को पार करने वाला है, जैसे फरसा शत्रुओं को पार करने वाला होता है, तद्वत। जिस अग्नि के संयम होते ही, दृढ़ भी जो स्थिर पदार्थ हो वह भी पानी सा घुल पड़ेगा, नष्ट होता हुआ। शत्रुओं के निःशेष करके तिरस्कार करता हुआ अग्नि उपरत होता है, नहीं हटता, धनुर्धारी शत्रु के अभिभव करने वाला सा चलता है ॥ प्र० ९ (१) सू० १८।३

इक्कीसवाँ अध्याय

(१८१६) अग्ने! तेरा हव्य अन्न कीर्तनीय है। विशेष प्रकाशरूप धन वाले अग्ने! वृष्टि सहायक! तेरी ज्वालायें बहुत प्रकाशवती हैं। हे प्रौढ़ दीप्ते! बल के सहित वर्तमान प्रशंसनीय अन्न को देने वाले यजमान के लिये तू धारण करता=देता है ॥ प्र० ९ (२) सू० १।१

(१८१७) शोधक किरणों वाला, निर्मल श्वेत किरणों वाला, पूरे तेज वाला अग्नि लपट से ऊपर को जाती है और मातृतुल्य दो अरणियों वा द्युलोक भूलोकों में पुत्र के समान विचरती हुई उपगत यजमानों की रक्षा करती और दोनों द्यावाभूमी को भरती है=हव्य से द्युलोक और वर्षा से भूलोक को ॥ प्र० ९ (२) सू० १।२

(१८१८) बल के न गिराने वाले! रक्षक! ज्ञान=प्रकाश के उत्पन्न करने और फैलाने वाले अग्ने! उत्तम स्तुति मन्त्रों के साथ अंगुलियों से आधान किया हुआ=स्थापित किया हुआ तू प्रदीप्त हो, अनेक देशोत्पन्न होने से अनेक रूपों वाले, विचित्र रक्षा वाले, कमनीय जन्म वाले यजमान लोग तुझ में हव्यों को होमें ॥ प्र० ९ (२) सू० १।३

(१८१९) देव! अग्ने! ऐश्वर्य करता हुआ तू अपने जायमान तेजों से हमारे धनधान्यादि को बढ़ा। वह तू दर्शनीय रूप के मध्य में अपना

ऐश्वर्य करता है, और दर्शनीय कमनीय यज्ञ को सम्पृक्त करता=फल से संयुक्त करता है ॥ प्र० ९ (२) सू० १।४

(१८२०) हिंसा रहित यज्ञ के संस्कार करने वाले बहुत चेताने वाले, बड़े धन-धान्यादि के ऐश्वर्य करने वाले, कमनीय पदार्थ के दाता अग्नि की प्रशंसा करता हूँ। वह तू अग्ने! ऐश्वर्यशाली बड़े अन्न को तथा भजनीय धन को धारण करता है ॥ प्र० ९ (२) सू० १।५

(१८२१) अग्ने! यजमान लोग, यज्ञ वाले, बड़े वा अर्चनीय, मन को दिखाने वाले तुझ अग्नि को सुख प्राप्ति के लिये आगे आधान की रीति से रखते हैं वा आहवनीय रूप से पूर्व दिशा में आधान करते हैं। सुनने वाले हैं कान जिसके उस अति विस्तार्यमाण हवि पहुँचाने वाला होने से देवों के सम्बन्धी तुझ को मन्त्रपूर्वक मनुष्यों के जोड़े पत्नी और यजमान मिलकर आधान करते हैं ॥ प्र० ९ (२) सू० १।६

(१८२२) व्याख्या नं० १०८ में है ॥ प्र० ९ (२) सू० २।१

(१८२३) हे सोम से हूयमान अग्ने! तेरा द्रवीभूत सोमधूम में परिणत कमनीय वसन्तादि ऋतु का उपजा हुआ, प्रदीप्त करता हुआ, सोमार्थ जुहू आदि पात्रों में ग्रहण किया जाता है। तू विस्तृत उषाओं का प्यारा है। रात्रि के घटपटादि वस्तुओं पर प्रकाश करता है ॥ प्र० ९ (२) सू० २।२

(१८२४) यवादि ओषधियां उस अपने ऋतु समयी गर्भ को धारण करती है। अग्नि को माता रूप जल उत्पन्न करते हैं, ऐसे ही उसको ही वन की वनस्पतियां भी सब दिनों गर्भ में धारण करती और जनती भी हैं ॥ प्र० ९ (२) सू० ३।१

(१८२५) यज्ञों में अग्रणी होने वाली अग्नि, देवों के लिये, हमारे दिये हव्य से अधिकाधिक सेवन करती है। बलवीर्यवान अग्नि आकाश में विराजती है और भैंस के समान=जैसे भैंस तृणादि पाकर अनेक प्रकार के दुग्ध घृतादि पदार्थ उत्पन्न करती है, वैसे अग्नि हव्य पाकर देवों के निमित्त अनेक प्रकार के अन्नादि उत्पन्न करती है ॥ प्र० ९ (२) सू० ४।१

(१८२६) जो मनुष्य आलसी निद्रालु बहुत सोने वाले पुरुषार्थ रहित

हैं, उनको न तो ऋग्वेदादि की ऋचायें ज्ञान प्राप्त कराती हैं, न सोमादि ओषधियाँ काम देती हैं, परन्तु जो निरालस्य पुरुषार्थी जागरूक पुरुष हैं, उनको वेद फलीभूत होते हैं और सोमादि ओषधिगण हितार्थ सामने हाथ जोड़े रहते हैं कि हम तुम्हारी ही हैं ॥ प्र० ६ (२) सू० ५।१

(१८२७) भाव यह है कि पूर्व मन्त्र में जो जागरणशील होने की महिमा कही थी, अब इस मन्त्र में यह बताया है कि जो जागरणशील रहना चाहते हैं और ज्ञान तथा कर्म से अपना और संसार का भला करना चाहते हैं, उनको अग्नि तत्त्व का बाहुल्य से सेवन करना और प्रयोग समझ कर करना चाहिये। क्योंकि अग्नि ही प्रकाश का हेतु, अन्धकार आलस्य नपुंसकता = पुरुषार्थहीनता का नाशक इत्यादि विशेषण विशिष्ट होने से सर्व होमादि और ओषध प्रयोग तथा शिल्प कलाकौशल में प्रयुक्त होकर मनुष्यों को जागरण का फल देता है ॥ प्र० ६ (२) सू० ६।१

(१८२८) पहले से विराजमान मित्रों को नमस्कार करता हूं, साथ २ आकर बैठे मित्रों को भी नमस्कार। अलंकृत पदों की प्रशस्त वाणी का प्रयोग करता हूं ॥ प्र० ६ (२) सू० ७।१

(१८२९) अनेक पदों वाली मनोहर श्रवणप्रिय वाणी को बोलता व प्रयुक्त करता हूं, अनेक प्रकार के रागों में गायत्री छन्द के, त्रिष्टुप छन्द के और जगती छन्द के सामों को गाता हूं ॥ प्र० ६ (२) सू० ७।२

(१८३०) सब रूपों को धारण करने वाले गायत्री त्रिष्टुप् जगती छन्दों को देवों ने निवास स्थान कर लिया है ॥ प्र० ६ (२) सू० ७।३

(१८३१) अग्नि ज्योति रूप है, काष्ठादि रूप नहीं। ज्योति अग्नि रूप है तद्भिन्न नहीं। अन्तरिक्षस्थान देवगणान्तर्गत वायुविशेष वा विद्युद्विशेष इन्द्र एक प्रकार का प्रकाश है। वह ज्योति इन्द्र कहाता है। सूर्यलोक प्रत्यक्ष ज्योतिरूप है। वह ज्योति सूर्य कहाता है ॥ प्र० ६ (२) सू० ८।१

(१८३२) अग्निहोत्र नित्य करने का फल— अग्नि! बारम्बार दुग्ध घृतादि रस के साथ हम को अभिमुख करके आवे। अश्व, यव, गोधूमादि

आयु के रक्षक वा प्राणों के रक्षक के साथ बारम्बार प्राप्त होवें। बारम्बार हम यजमानों को पाप रोगादि शत्रु से बचावें ॥ प्र० ६ (२) सू० ८।२

(१८३३) अग्नि! तू रमणीय धन के साथ हमारे पास लौट आ, और सबसे उपरि वर्त्तमान अपनी विश्वव्यापिनी घृतादि की धार से पुष्ट हो ॥ प्र० ६ (२) सू० ८।३

(१८३४) व्याख्या नं० १२२ में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (२) सू० ९।१

(१८३५) हे बुद्धि के स्वामी! इन्द्र! यदि मैं जितेन्द्रिय वाणी का पति हो जाऊँ, तो इस उपस्थित बुद्धिमान जिज्ञासु को शिक्षा दूं, और दान की इच्छा करूँ ॥ प्र० ६ (२) सू० ९।२

(१८३६) हे परमेश्वर! आपकी वेदवाणी रूपिणी गौ सच्ची वृद्धि करने वाली सोमयाजी यजमान के लिये गौ घोड़े इत्यादि धन को दुहती = भरपूर करती है ॥ प्र० ६ (२) सू० ९।३

(१८३७) जल निश्चय सुखदायक है। वे हम को रस के लिये और बड़े रमणीय दर्शन के लिये धारण करें ॥ प्र० ६ (२) सू० १०।१

(१८३८) प्रभु! जलों का जो अति सुखदायी रस है, हम को उस रस का सेवन कराओ। जैसे पुत्र की भलाई चाहती हुई मातायें पुत्रों को दुग्ध का सेवन कराती हैं ॥ प्र० ६ (२) सू० १०।२

(१८३९) जलो! जिस अशुद्धि आदि पाप के नाशार्थ तुमको, हम पूर्णतया प्राप्त करते हैं, उस अशुद्धि आदि नाश के लिये प्रसन्न तृप्त करो। और हम विधिपूर्वक जल का सेवन करने वालों को उत्पन्न करो, सन्तानों से बढ़ाओ ॥ प्र० ६ (२) सू० १०।३

(१८४०) व्याख्या नं० १८४ में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (२) सू० ११।१

(१८४१) और हे वायो! तू हमारा पालक और सहायक अतः मित्र हितकर है, वह तू हम को जीवन के लिये समर्थ कर ॥ प्र० ६ (२) सू० ११।२

(१८४२) वायो ! जो यह छिपी जगह में रखा हुआ तेरे घर= फेफड़ों में जीवन है, उस जीवन को हम को धारण करा ॥ प्र० ६ (२) सू० ११।३

(१८४३) बलवान, सब को रूपवान करने वाला सुन्दर ज्वाला रूप परों वाला, प्रत्येक ऋतु में सूर्य की किरणों को वस्त्र के समान परिधान करता हुआ, तेजोमय अपने तेज से भरपूर, उत्पत्ति के स्थान अरणि रूप बिल को पुष्ट करता हुआ, वाहक पावक अग्नि अपने आप यज्ञ को सर्वतः लक्ष्य करके उत्पन्न होता है ॥ प्र० ६ (२) सू० १२।१

(१८४४) जो जलों में बीजरूप आश्रित है और जो पृथ्वी में आधिपत्य से उत्पन्न होता है, वह अनेक (२४) रूपों वाला, तेजस्वी, वर्षा करने वाली बिजली का वीर्य सोम अन्तरिक्ष में अपने महत्व को फैलाता हुआ अग्नि में हुत होता हुआ शब्द करता है ॥ प्र० ६ (२) सू० १२।२

(१८४५) यह यज्ञ वा अग्नि अपने साथ जुड़े हुए सहस्रों किरण जालों को सब ओर पहरे हुए सूर्य के प्रकाश को धारण करता है। सहस्रों का दाता सैकड़ों का दाता कहाँ तक कहें अपरिमित फलों का दाता अन्तरिक्षस्थ मेघ मण्डलादि का धर्त्ता जगत की प्रजाओं का पालक है ॥ प्र० ६ (२) सू० १२।३

(१८४६) व्याख्या नं० ३२० में हो चुकी है ॥ प्र० ६ (२) सू० १३।१

(१८४७) द्युलोक में ऊपर सूर्य स्थित है, जो सात रंग के विचित्र इसके शस्त्र अस्त्रवत प्रहार के साधन किरणों को धारण कर रहा है और संसार को दिखाने के लिये सुन्दर सुखद व्यापने वाले स्वरूप को धारण कर रहा है तथा नम्र प्यारे जलों को उत्पन्न करता है, वर्षा द्वारा जैसे अन्तरिक्ष में है वैसे ॥ प्र० ६ (२) सू० १३।२

(१८४८) सूर्य अपनी कक्षा में वेग से दौड़ने घूमने वाला, विधारक, अन्तरिक्ष में गीध की सी दूर तक देखने वाली दृष्टि से दिखाता हुआ, उज्ज्वल ज्योति से चमकता हुआ, जिस कारण से तीसरे द्युलोक में अन्तरिक्ष को चारों ओर करके घूमता है, इस कारण से लोक में हितकारी कामों को करता रहता है ॥ प्र० ६ (२) सू० १३।३

बाईसवाँ अध्याय

इन्द्र के जय साधनों का सामर्थ्य

(१८४९) मध्य स्थान देवगणान्तर्गत इन्द्र सब देवों का राजा है, वह राजसी शक्ति वाला है, मनुष्यों में भी जिन २ में उसके गुण होते हैं, वे सब भी इन्द्रतत्व की प्रधान सहायता और प्रसाद से होते हैं। इन्हीं गुणों से राजा, राजा का सेनापति और शूरवीर राजपुरुष इन्द्रपदवाच्य होता है, जहाँ तक उसमें इन्द्रत्व हो उतने अंश में यह बात चरितार्थ होती है। इन्द्र के गुण यह हैं :—शीघ्रकारी, फुर्तीला, तीक्ष्ण, सांड के समान डरावना, प्रहार करने में चतुर, मनुष्यों के मध्य में सोम वाला, विधिपूर्वक शत्रु पर प्रहार करने वाला, आलस्य प्रमाद रहित, अद्वितीय शूरवीर, असंख्य सेनाओं को एक साथ जीतने वाला ॥ प्र० ६ (३) सू० १।१

(१८५०) हे युद्ध करने वाले नायको ! तुम भली प्रकार विधिपूर्वक प्रहार करने में चतुर, आलस्य वर्जित, जयशील, युद्ध करने वाले, न हटने वाले, दूसरों को धमका सकने वाले, बाण हाथ में लेने वाले, बाण वृष्टि करने वाले, इन्द्र के सहाय्य से सामने आये शत्रुसैन्य को जीतो, और उसको अभिभूत= तिरस्कृत करो ॥ प्र० ६ (३) सू० १।२

(१८५१) वह इन्द्र (राजा) बाण हाथ में रखने वाले भटों सहित, वह खंग धारियों सहित, वशकर्त्ता भटों सहित, समूह से संसर्ग करने वाले, वह युद्ध करने वाला इन्द्र, संसर्ग भक्तों को जीतने वाला, सोम पान करने वाला, बाहुबल वाला, धनुष को उद्यत रखने वाला, शत्रुओं पर फेंकी हुई शक्ति इत्यादिकों से फेंक करने वाला है। इस प्रकार के इन्द्र राजा के साहाय से जय करो ॥ प्र० ६ (३) सू० १।३

(१८५२) हे बलों के पति ! इन्द्र ! राजन् ! आप संग्राम सम्बन्धी रथ से शत्रु पर चढ़िये । राक्षसों के हन्ता, शत्रुओं के बाधक, शत्रु सेनाओं को नष्ट करते हुए उग्रता से मारिये, और युद्ध द्वारा जीतते हुए हम रथी वा महारथियों के रथों के रक्षक हूजिये ॥ प्र० ६ (३) सू० २।१

(१८५३) हे इन्द्र ! राजन ! बल का जानने वाला पूर्ण हृष्ट पुष्टाङ्ग, उत्तम कक्षा का वीर, शत्रुओं के तिरस्कार का सामर्थ्य रखने वाला, बलवान वा अन्नादि सामग्री साथ रखने वाला, शत्रुओं पर प्रभाव डालने वाला, जल को उगलने वाला, अपनी सब ओर वीरों को रखने वाला, ओजस्वी, इन्द्रियों के सामर्थ्य को पाने वाला, तू विजयी रथ पर सवार हो ॥ प्र० ६ (३) सू० २।२

(१८५४) हे समान वायु के वीरो ! मित्रो ! योद्धाओ ! तुम पहाड़ों के तोड़ने वाले, इन्द्रियों की शक्ति से सम्पन्न, वज्रादि हाथ में धारण करने वाले, जय करते हुए सामने आते शत्रुबल को बल से अत्यन्त नष्ट करते हुए इस इन्द्र राजा के अनुसार हो कर वीरता दिखाओ । अनुकूल हो कर दौड़ो ॥ प्र० ६(३) सू० २।३

युद्ध विद्या का उपदेश

(१८५५) पर्वतकुन्दों में बल से सम्मुख घुस जाता हुआ शत्रुओं पर दया न करने वाला वीर, अत्यन्त क्रोध वाला, शत्रु जिस से न लड़ सकें ऐसा सेनापति हमारी सेनाओं को संग्राम में रक्षित करे ॥ प्र० ६(३) सू० ३।१

(१८५६) सामने मारती हुई, विजय करती हुई, इन धर्मात्मा देवों की सेनाओं का सेनापति (नायक) आगे जावे । समूह का पति बृहस्पति संज्ञक दाहिनी ओर जावे । संगमनीय यज्ञ संज्ञक सेनानी उत्तर में आवे । सेना का प्रेरक सोम संज्ञक पीछे की ओर जावे । मरने से न डरने वाले मरुद्गण शूरवीर आगे जावें ॥

जैसे आकाश में अन्धकार मेघ आदि दुष्ट असुरों के विनाशार्थ इन्द्र देव सेना के सहित युद्ध करता है, उस में मरुत =वायुविशेष और सोम बृहस्पति

तथा इन्द्र उचित स्थान पर युद्ध करते हैं, वैसे ही मनुष्यों के युद्धों में भी व्यूह-रचना करके विधिवद्ध युद्ध होना चाहिए ॥ प्र० ६(३) सू० ३।२

(१८५७) ऐश्वर्यवान कामनापूरक वा बाणवर्षक वा मेघवर्षक वरणीय राजा का और सूर्यवत् प्रकाशमान तेजस्वी वीरों व मरणार्थ उद्यत वीर योद्धाओं का बल उग्र होवे । बड़े मन वाले, भुवनों को भगा देने वाले, युद्ध विद्या प्रकाशक जीतते हुओं का जयघोष उठे ॥ प्र० ६(३) सू० ३।३

(१८५८) हे धनवन ! मेरे वीर प्राणियों के तलवार आदि शस्त्रों को हर्षपूर्वक उद्यत कराव, उन के चित्तों को हर्ष से उभार । हे दुष्ट दस्यु नाशन ! घोड़ों के वेगों को हर्ष से उभार । जीतते हुए संग्रामस्थ रथों के घोष ऊपर को उठें ॥ प्र० ६(३) सू० ४।१

(१८५९) इन्द्र राजा हम धार्मिक पुरुषों की शत्रुसैन्य में ध्वजायें पहुँचने पर रक्षक हो । जो हमारे बाण हैं, वे जीतें । हमारे वीर अगुवा होवें और देवता संग्रामों में हमारी रक्षा करें ॥ प्र० ६(३) सू ४।२

(१८६०) हे मरुतो ! वीरो ! यह जो शत्रुओं की सेना बल से स्पर्धा करती हुई हमारे सम्मुख आ रही है, उसको काम बन्द करने वाले अन्धकार से ढक दो, जैसे इन शत्रुओं में एक दूसरे से नहीं जान पावे ॥ प्र० ६(३) सू० ४।३

(१८६१) भय ! तू इन हमारे उपस्थित शत्रुओं के चित्तों को मुग्ध करता हुआ इन की देहों को जकड़ कर पकड़ ले । हृदयों को शोकों से निरा फूंक दे, दूर भगा, व्याप जा, शत्रु लोग गहरे अन्धकार से संयुक्त हों ॥ प्र० ६(३) सू० ५।१

(१८६२) हे वीर पुरुषो ! उत्कृष्टता से जाओ और जीतो शत्रुओं को, सेनापति तुम को सुख देवे । जिस प्रकार दूसरों से न दबने वाले होओ, उस प्रकार तुम्हारी भुजायें उग्र होवें ॥ प्र० ६(३) सू० ५।२

(१८६३) धनुर्वेदज्ञ ब्रह्मा से तीक्ष्ण किये हुए हिंसा में अकुण्ठित बाण ! तू फेंका वा चलाया हुआ शत्रुओं पर गिर, शत्रुओं को प्राप्त हो, उन के

हमारी अन्य वैदिक पुस्तकें

१. यज्ञ प्रसाद अर्थात् महायज्ञ तथा देवयज्ञ पर संग्रहीत विचार। ईश्वर स्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण और हवन मन्त्रों की विधि आदि, सरल भाषानुवाद, शब्द संग्रह आदि सहित—
बढ़िया रायल पेपर पृष्ठ १०८—
मूल्य—श्रद्धा पूर्वक नित्यपाठ, यह पुस्तक अब समाप्त है फिर छपने वाली है।

२. वैदिक मुक्ति पथ अर्थात् प्रभु से मिलने का मार्ग। जितने भी मुक्ति के साधन हैं उनका वर्णन करते हुए इस पुस्तक में यह सिद्ध किया गया है कि सन्ध्या ही मुक्ति का सबसे सरल और उत्तम मार्ग है वे सब साधन सन्ध्या में पूर्ण किये जाते हैं। मन्त्रों का पदच्छेद, पदार्थ, अनुष्ठान, भावना आदि सब आवश्यक बातों की जानकारी करनी हो तो आप इस पुस्तक को पढ़ें।

बढ़िया रायल पेपर पृष्ठ १००—मूल्य केवल ५० पैसे अगले दान। महाशय मुल्क राज भाहरी अध्यापक १५ अप्रैल ६६ को लिखते हैं:—
वेदी जी

आपकी पुस्तक को मैंने पढ़ा है। मेरा विचार था कि पढ़कर उसे किसी दूसरे को दे दूँगा, परन्तु पढ़ने पर पता चला कि यह तो सदा अपने पास रखने वाली है और इसके स्वाध्याय से काफी लाभ पहुँच सकता है। यह अपने प्रकार की एक अनूठी पुस्तक है। जान पड़ता है कि आपका स्वाध्याय जितना अधिक पुराना है उससे भी अधिक आपने इसके तैयार करने में परिश्रम भी किया है। धन्यवाद॥

छपने वाली है:—

१. अथर्ववेद प्रकाश ⎤ इन दोनों ग्रन्थों में विशेषता यह है कि जिन जिन
२. यजुर्वेद प्रकाश ⎦ विषयों का इन वेदों में वर्णन आया हुआ है उन विषयों के अनुसार सारे मन्त्रों को एकत्र करके उनके भावार्थ किये गये हैं। यह पुस्तकें प्रत्येक सद्गृहस्थ नर नारी के लिये परम उपयोगी है।]

पुस्तकें मिलने का पता:—
वेदी प्रकाशन ट्रस्ट
१७ बी/२४ देवनगर, दिल्ली।